सद्विचार कहीं से भी मिलें, सच्चे हृदय से ग्रहण करने चाहिये

(ऋग्वेद 1-89-1)

ब्रह्म सत्यम् ॐ सर्वाधार

"समता अपार शक्ति"

प्रकाश पुञ्ज

श्री सद्गुरू देव महात्मा मंगत राम जी महाराज

के

सद् उपदेशों का अनमोल संग्रह

एक परमेश्वर आधार हो, दूजा भाव त्याग।

"मंगत" मिले परम गत, मिल साध संगत रंग लाग॥

प्रथम संस्करण :फरवरी 1988
द्वितीय संस्करण: अक्टूबर 2004

प्राप्ति स्थान :-

समता योगाश्रम,

छछरोली रोड़, जगाधरी, हरियाणा

समता योगाश्रम,

रिंग रोड़ (रेलवे पुल) नारायणा, नई दिल्ली - 110028

समता योग आश्रम

अनसल पालम विहार फार्म न०-47

गाँव सलाह पुर, तह० वसंत बिहार, दिल्ली 110061

(सैक्टर-21, हुडा के सामने)

मुद्रक : सचदेवा प्रिंटिंग प्रेस, 24, सेवा नगर मार्केट, नई दिल्ली – 110003

फोन: 011-24623160

प्राक्कथन

इन्द्रियों के सुखों की अभिलाषा में जीव दिन रात भटकता रहता है। संसार के क्षणिक सुखों में शाश्वत शान्ति का कोई रास्ता न पाकर खेद युक्त होता है। मन में सुख प्राप्ति की तपन बनी रहती है। संसार की जितनी भोग सामग्री एकत्र करता है और क्षणिक सुख के लिये उनका उपभोग करता है, उतना ही अधिक दुःखों और क्लशों में फंसता चला जाता है। नाना प्रकार के भोगों को भोग कर भी उसे लेशमात्र भी तृप्ति नहीं हो पाती। ऐसी दशा में उसके मन में यह इच्छा प्रबल हो उठती है कि उसे शाश्वत आनन्द और मानसिक ठण्डक कैसे प्राप्त हो? इस हेतु वह समयानुसार समाज में अनेक प्रकार के प्रचलित उपायों का सहारा लेता है। मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों, अन्य पूजा स्थानों एवं तीर्थ स्थानों का भ्रमण करता है। दान-पुण्य, हवन-कीर्तन करता है। इतना ही नहीं, अन्य कई प्रकार के घृणित आडम्बरों का सहारा लेता है। जब सभी ओर से निराशा ही मिलती है, मन को कहीं शान्ति नहीं मिलती तब अन्त में वह सन्तों, महात्माओं और सत्पुरुषों की शरण में जाता है। सौभाग्य से यदि ऐसे सत्पुरुष की शरण मिल जाये जिसने प्रभु साक्षात्कार कर स्वयं ठण्डक प्राप्त की हो, तो उसकी भटकन समाप्त हो जाती है। उसे प्रभु नाम का सहारा मिल जाता है। गुरु नानक देव जी ने निर्णय दिया है, **"नानक दुखिया सब संसार, सुखिया वही जो नाम आधार"।** इसी प्रकार सत्गुरुदेव महात्मा मंगतराम जी ने फरमाया है, **"संसार दुख रूप है, मानसिक ठण्डक तथा शाश्वत आनन्द प्राप्त करने के लिये करतार से जुड़ना आवश्यक है"।** यह ज्ञानी और सत् जिज्ञासु को सत्संग से जुड़ने का संकेत है। व्यक्ति जब सन्तों की शरण में जाता है, उनके चरणों में बैठता है, उनके सउपदेशों को श्रवण कर उनका मनन चिन्तन करता है और निदिध्यासन द्वारा उन्हें अपने जीवन में उतारता है, तो उसे सत्य और असत्य का यथार्थ ज्ञान मिलता है। यही सत्संग और उसका महत्व है। इसकी महानता सभी ग्रन्थों और शास्त्रों में वर्णन की गई है ।

भरम रूप संसार में सत् संगत नौका जान।
"मंगत" नित पधारिये सुनिये निर्मल ज्ञान ।।
(मंगत राम जी)

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
" तुलसी" संगत साध की, कटे कोटि अपराध।।
(तुलसी दास जी)

"कबीरा" संगत साध की, हरे और की व्याध।
संगत बुरी असाध की आठों पहर उपाध ।।
(कबीर दास जी)

साध संग में चान्दना, सकल अन्धेरा और।
सहजो दुर्लभ पाइये, सत्संग में ठौर।।
(सहजोबाह)

संगत कीजे सन्त की, जिनका पूरा मन।
बिन तोले ही देत है, नाम सरीखा धन ।।

सही अर्थों में सत्संग उसे कहते हैं, जिसमें ईश्वर महिमा का विचार हो। संसार क्या है? किस प्रकार जीव शरीर को धारण करके सुख-दुख पाता रहता है। और अन्त में इस हरे भरे संसार को छोड़कर चल देता है। यह क्या अनोखा खेल बना हुआ है? जीव की वास्तविकता का जिस जगह पता लगे, ऐसा विचार जहाँ हो उसे सत्संग कहते हैं। सत्पुरुषों की समीपता एवं उनके चरणों में बैठकर और उनके सत् उपदेशों को श्रवण करके सत्संग का लाभ उठाया जा सकता है। उनके प्रत्येक वचन को प्रभु आज्ञा मानकर उन पर दृढ़ विश्वास धारण कर उन्हें अपने क्रियात्मिक जीवन में ढालना यह ही सत्संग का लाभ है। जीवन के लिये अमृत बूटी के समान है। निर्मल जीवन का सार है। परम गति को प्राप्त कराने वाला है।

गुरुदेव आजीवन मानव के उत्थान एवं पतित को पावन बनाने के लिये सत्संगों का प्रवाह चलाते रहे। जीव के गहन से गहन रहस्य को बड़ी सरलता एवं मधुरता से जनता जनार्दन को समझाकर कृतार्थ करते रहे। जीव को सांसारिक आडम्बरों एवं अज्ञान से मुक्त करने हेतु संगत समतावाद की नीव

डाली। शुद्ध आचरण और सदाचारी जीवन की ओर बढ़ने के लिये परम आवश्यक पग है। पाँच जीवन उद्धारक नियम "सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत् सिमरण को हृदयंगम करके अपने जीवन में उतारने का आहान किया। जो परम शान्ति और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये परम आवश्यक है। भौतिक सुखों को तिलांजली देकर अथवा मर्यादानुकूल भोगकर ही आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश पाया जा सकता है, और प्रभु साक्षात्कार कर ठण्डक प्राप्त की जा सकती है। गुरुदेव अब शारीरिक रूप से हमारे बीच में नहीं है, अब उनके उपदेश और ज्ञानमयी अमर वाणी ही हम संसारियों का गुरू रूप में पथ प्रदर्शन कर रही है। "प्रकाश पुञ्ज' नाम की यह पुस्तक गुरुदेव के उपदेशों का संग्रह प्रिय पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत है। गुरुदेव ने घोषणा की है कि जिस मानुष में सत्संग का प्रेम नहीं, जिस कौम में सत्संग का भाव नहीं, कभी भी तरक्की नहीं कर सकती, ख्वाहे और जितनी भी कोशिश करे। सबसे पहले तरक्की का मीनार सत्संग ही है। कोशिश करके हर एक को सेवा का लाभ उठाना चाहिये। सब देश और धर्म की तरक्की और जिन्दगी सत्संग से ही है। अपरम अपार महिमा है, धारण करके असली यश को प्राप्त करना चाहिये ।

समता सत्संगों के संचालन के लिये गुरुदेव के आदेश :- "समय की पाबन्दी अति अनिवार्य है। सत्संग निर्धारित समय पर महामन्त्र और मंगलाचरण से आरम्भ किया जाना चाहिये और सत्संग प्रोग्राम के उपरान्त आरती और समता मंगल पढ़ने पर निर्धारित समय पर ही सत्संग की सम्पूर्णता समझनी चाहिये। इसके पश्चात् कोई प्रोग्राम अरदास - भजन कीर्तन आदि नहीं होना चाहिये। इससे एक प्रकार का स्वांग खड़ा हो जाता है। और सत्संग में सुना हुआ रस भी अन्तःकरण में नहीं रहेगा। यदि चाहें तो सत्संग के बाद आपस में सुने हुये प्रसंगों पर गौर करना काफी है। सब प्रेमियों को पूर्ण दृढ़ता इन विचारों की होनी चाहिये।"

प्रकाशक
"संगत समता वाद" (पजि०)

ॐ

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यम् निरंकार

अजन्मा अद्वैत पुरखा सर्व व्यापक

कल्याण मूरत परमेश्वराय नमस्तं ।।

मंगलाचरण

नारायण पद बंदिये, ताप तपन होये दूर।
नमो नमो नित चरण को, जो सरब आधार हज़ूर ।।
हिरदे सिमरो नाम को, नित चरणी करो दण्डौत।
सत् शरधा से पूजिये, रख सत्गुरु की ओट ।।
दुविधा मिटे मंगल होये, जो चरन कंवल चित धार।
रिद्ध सिद्ध आवे घर माहीं, पावें जय जय कार ।।
साचा ठाकुर सरब समराथा, अपरम शक्त अपार।
'मंगत' कीजे बन्दना, नित चरणी बलिहार ।।
सत मारग सोझी मिली, तन मन भया निहाल।
गवन मिटी संसार की, सतगुरु मिले दयाल ।।
बार बार करूँ बन्दना, सतगुरु चरनी माईं।
'मंगत' सतगुरु भेंट से, फेर गरभ नहीं आईं ।।
बार बार करूँ बन्दना, सतगुरु चरनी माईं।
'मंगत' सतगुरु भेंट से, फेर गरभ नहीं आईं ।।

सदुपदेश

एक ईश्वर को कुल दुनिया का आधार मानना और नित आनन्द स्वरूप जानना और हर एक के अन्दर उसका प्रकाश देखना, तमाम कर्मों के फल की वासना ईश्वर निमित्त त्याग करना, हर वक्त दीन भाव को धारण करना, सब जीवों का हितकारी होना, मन वचन कर्म से सबका भला चाहना, अपने शरीर का मद त्याग करना, हर एक गुणी पुरुष का सत्कार करना, हर वक्त अपने जीवन उद्धार की खातिर यत्न धारण करना, नाशवान शरीर से जीवित में ही उपरस हो जाना और आत्म आनन्द में हर वक्त मग्न रहना यह धारणा ही असली धर्म है। इसको प्राप्त करके जीव सम भाव ब्रह्म शब्द में लीन हो जाता है, जो संसार का मूल है और आनन्द धाम है।

(ग्रन्थ "श्री समता विलास" से)

श्री सदगुरुदेव महात्मा मंगतराम जी महाराज

- संक्षिप्त जीवन परिचय –

पूज्यपाद श्री सत्गुरु महात्मा मंगतराम जी वर्तमान युग के जन्मसिद्ध सत्पुरुष हुए हैं। आपका जन्म मंगलवार दिनांक 9 मग्घर, सम्वत् 1960 तदानुसार 24 नवम्बर, 1903 को शुभ स्थान गंगोठियाँ ब्राह्मणां, जिला रावलपिण्डी (पाकिस्तान) के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ। आप बाल ब्रह्मचारी, पूर्ण योगी, परम त्यागी एवं ब्रह्मनिष्ठ आत्मदर्शी महापुरुष थे। आप में 'स्थितप्रज्ञ' के समस्त लक्षण पूर्णरूपेण विद्यमान थे। 13 वर्ष की स्वल्पायु में आत्म साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् आप सांसारिक प्राणियों का उद्धार करते रहे। देश और काल के अनुसार जहाँ कहीं भी आपने धर्म की मर्यादा को भंग होते देखा तथा सामाजिक नियमों के पालन में त्रुटि पाई, वहाँ पर ही धर्म की मर्यादा की स्थापना की और सदाचारी जीवन बिताने का उपदेश देकर सामाजिक ढांचे को विश्रंखल होने से बचाने का प्रयत्न करते रहे।

आप अपनी मधुर वाणी और निर्मल विचारों के द्वारा हर एक को प्रभावित कर लेते थे और सरल एवं सुबोध भाषा में आध्यात्मिकता के गम्भीर विषयों को सहज ही समझा दिया करते थे। आपने समता के उद्देश्य का जगह-जगह पर प्रचार किया और यह सिद्ध कर दिया कि समता सिद्धान्त को अपनाकर ही मानव संकुचित विचारधारा, साम्प्रदायिकता तथा जाति-पांति के बन्धनों से ऊपर उठ सकता है।

आपने सांसारिक प्राणियों को सत्शान्ति की प्राप्ति के निमित्त समता के पाँच मुख्य साधनों (1) सादगी (2) सत्य (3) सेवा (4) सत्संग और (5) सत् सिमरण को अपने निजी जीवन में ढालने का उपदेश दिया। सत् पर आधारित होने के नाते आपके सभी उपदेश विश्व कल्याण की भावना को अपने में संजोये हुए हैं। आपने भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का दौरा करके जहाँ रूढ़िवादिता एवं अन्धविश्वास का खण्डन किया वहाँ सत् के जिज्ञासुओं के समता का पावन सन्देश देकर उन्हें परमार्थ पथ पर आरूढ़ किया। आपकी वाणी का संग्रह ग्रन्थ "श्री समता प्रकाश" और वचनों का संग्रह ग्रन्थ "श्री समता विलास" प्रकाशित हो चुके हैं। आप 4 फरवरी, 1954 को गुरु नगरी अमृतसर में अपने नश्वर शरीर का त्याग करके परमसत्ता में विलीन हो गये।

श्री सद्गुरूदेव मंगतराम जी महाराज

विषय-सूची

1. प्राक्कथन
2. महामन्त्र, मंगलाचरण
3. श्री सद्गुरुदेव जी का संक्षिप्त जीवन परिचय

सत्संग :- **पृष्ठ संख्या**

4. (1) दिसम्बर, 1939 :तृष्णा से मुक्ति ही पवित्र जीवन 1
5. (2) दिसम्बर, 1941 :वासना का अभाव ही ईश्वर की प्राप्ति 6
6. (3) मार्च , 1943 :जीव की वास्तविक चाहना 11
7. (4) नवम्बर, 1943 :लोक सेवा - दुर्लभ सेवा 17
8. (5) नवम्बर, 1946: वास्तविक धर्म कठिन मार्ग 24
9. (6) दिसम्बर, 1946 :धर्म मार्ग में स्त्री पुरुष का सहयोग 29
10. (7) अगस्त, 1947 :ईश्वर आज्ञा ही शान्ति दाता 34
11. (8) नवम्बर, 1948 :सत्कर्मों से सांसारिक सफलता 40
12. (9) सितम्बर, 1949: माया-मद का त्याग ही प्रभु उपलब्धि 45
13. (10) अक्टूबर, 1949: प्रभु भक्ति ही मन की शान्ति 50
14. (11) जनवरी, 1950: कर्त्ता सो भोक्ता 57
15. (12) मई 1950: महापुरुष भी गुरु परायण 65
16. (13) 1950: प्रभु भक्ति ही मानव जीवन की सफलता 75
17. (14) जुलाई, 1950: पवित्र जीवन 80
18. (15) जनवरी, 1951: प्रभु चरणों से निर्भयता की प्राप्ति 88
19. (16) मार्च, 1951 : जीवन की सफलता-सत् नियमों का पालन 94
20. (17) अप्रैल, 1951: ममता का नाश प्रभु सिमरण से 100
21. (18) मई 1951 : सफल सांसारिक जीवन में प्रभु परायणता 109

22. (19) सितम्बर, 1951: जैसा कर्म तैसा फल 116
23. (20) नवम्बर 1951 :सच्चा धर्म स्वरुप और लक्ष्ण 124
24. (21) सितम्बर, 1951: भेख अहंकार का सूचक है, उद्धार का नहीं 129
25. (22) जनवरी, 1952 :जीवन की सफलता प्रभु नाम सिमरण में 134
26. (23) अगस्त, 1952 : विकारों से मुक्ति-कर्त्तव्य पालन में,
शरीर पूजा में नहीं 141
27. (24) अगस्त, 1952: जीवन की सफलता ईश्वर भक्ति से 150
28. (25) अगस्त, 1952: ईश्वर प्राप्ति की कुंजी प्रभु भक्ति 157
(26) अगस्त, 1952: शरीर क्या ? 167
29. (27) नम्बर, 1952: शुद्ध आचरण सच्चा सुख दाता 178
30. (28) दिसम्बर, 1952: कर्तापन अभिमान त्याग से ही
जीवन में शान्ति 184
31. (29) जनवरी, 1953 :मन के दोष सब दूर भये।
जब नाम प्रभु का गाये॥ 191
32. (30) अक्टूबर, 1953 : सुखों को बाँटने में शान्ति 196
33. आरती 200
34. समता मंगल 201

तृष्णा से मुक्ति ही पवित्र जीवन

वाणी

जो आये चले अन्त पछताये, गुनी ज्ञानी बहु लेख लखाये।
साचा लेखा जिस जन लख पाया, जग आवन तिस सफल कराया।
भव सिन्धु यह दुस्तर भारी, बिना जतन नहीं होये निस्तारी।
पारगरामी जिस ठाकुर ध्याया, साचा जतन तिस जन ने पाया।
मन में मन की करे निगरानी, सिमर दयाल चित धीर पछानी।
छिन छिन मन के अवगुण धोवे, सत धोबी की कार को जोवे।
साचा महरम साचा स्वामी, मुकन्द सरूप भज अन्तर्यामी।
बख्शनहार सो ही दातार, हो भिखारी तिसके द्वार।
साचा करम धरम प्रभु देवे, तब यह जीव परम सुख लेवे।
और थाओं ना कोई देखा, जाँ से मिले धरम की भीखा।
हूँ कूकर तेरे दर आया, भगत वत्सल तू नाम धराया।
हमरे औगुण नहीं चित धरना, होवो दयाल प्रभ कारण करना।
सब जग तेरी ओट सम्भाले, नित रख्यक तूं दीनदयाले।
नित नित नाम करो बख्शीशा, खड़ा भिखारी दर तोरे जगदीशा।
तेरी महिमा का अन्त ना पाई, भाँत भाँत कर उस्तत गाई।
जेता ध्याया प्रभु तेरा धाम, रंचक सार नहीं लखा मुकाम।
तूं सच जाने सच तेरी कार, तेरे चरनी नित हूँ बलिहार।
पतितपावन तूं अन्तर्यामी, दियो भरोसा तूं सरब का स्वामी।
पल पल माँगूं साचा यह लेख, साची भक्ति प्रभ दीजो भेख।
गुन ज्ञान कछु ना धरूं, ना मन में तप योग।
'मंगत' होवे दयाल प्रभ, जब पूरन भाग संजोग।।

प्रवचन

जीव शरीर रूपी संसार को धारण करके हर समय तृष्णा की अग्नि में जलता रहता है। जब तक तृष्णा का रोग लगा है शान्ति का कुछ पता नहीं लग सकता। यह पाँच तात्विक शरीर तृष्णा का सागर है। जितनी तृष्णा | अधिक है उतना ही कष्ट अधिक है। जितनी तृष्णा कम है उतना ही सुख है। तृष्णा एक कष्ट है जिससे छूटने के वास्ते ही साधन किये जाते हैं। ज्यों-ज्यों साधना से दृढ़ता प्राप्त होती है त्यों-त्यों तृष्णा के रोग से मुक्ति मिलती जाती है। देखो मनुष्य की जिन्दगी की कोई सीमा नहीं। इसलिए प्रभु की इबादत बन्दगी करनी निहायत जरूरी है। बगैर भजन स्मरण के इस अमोलक समय को खोकर जीव कई जन्म धारण करता है। जितने भी ईश्वर के प्यारे संसार में प्रगट हुए हैं वह सदा रहने वाली खुशी को प्राप्त करके हमेशा के लिए तृप्त हुए और संसारी लोगों की बेहतरी की खातिर यत्न-प्रयत्न करते रहे। वह भाग्यशाली लोग होते हैं जिनको असली आनन्द प्राप्त होता है। उस आनन्द को पाकर फिर उन्हें संसार में किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा नहीं रहती। उनका जीवन ही पूर्ण हुआ है और ऐसे महापुरुषों का जीवन दुर्लभ है। वे ही रहनुमा या गुरु की पदवी के हकदार हुए हैं। संसारी लोगों ने कई मज़हब और फिरके चला रखे हैं, मगर ईश्वर के प्यारों का एक ही रास्ता होता है। वे किसी मज़हब से सम्बन्ध नहीं रखते बल्कि सबके लिए एक जैसा और सच्चा आदेश लेकर आते हैं। उन्होंने यथार्थ को जाना है। ऐसे महात्मा सब संसारियों के वास्ते सूर्य की भाँति रोशनी फैलाते हैं। तुम लोग भाग्यशाली हो जो सत्संग में शामिल हुए हो। कृपा करके अपने जीवन को पवित्र बनाओ। अपने आदर्श के सही रक्षक बनो। पाप, कपट और दुराचारी जीवन से तब ही छुटकारा प्राप्त कर सकोगे जब तुम लोग रोजाना सत्संग में एकत्र होकर अपने जीवन को निर्मल करने का यत्न करोगे। अगर रोजाना सत्संग न कर सको तो साप्ताहिक सत्संग अवश्य होना चाहिए और महापुरुषों की पुस्तकों से शुभ विचार हासिल करो ताकि सही धर्म-ईमान को जान सको। ईश्वर सत् बुद्धि देवें।

वैराग्य वाणी

तृष्णा तुल नहीं कष्ट है मीता, सन्तोष तुल धन नाई ।
दया बराबर नहीं अमीरी, तुल धरम नहीं सुख थाई ।।
सत के तुल नहीं तप है मीता, प्रेम तुल नहीं ध्याना ।
तुल सत्संग नहीं और उपाए, जो देवे जीव कल्याना ।।
जीवन जग यह अत ही करड़ा, सभी जीव भरमायें ।
'मंगत' जिन जन सार पछानी, सो जन शान्त समायें ।।

प्रश्नोत्तर

एक प्रेमी : महाराज जी ! जीव की संसार के सुखों में क्यों ज्यादा रुचि बनी रहती है। सत्संग और अच्छे कर्मों के करने के वास्ते उत्साह नहीं पैदा होता। क्या यह भी प्रारब्ध कर्मों की वजह से ऐसा होता है?

गुरुदेव : प्रेमी ! बड़ा अच्छा विचार तुमने किया है। जन्म-जन्मांतर से जीव की प्रवृत्ति संसार की तरफ बनी हुई है। स्वाभाविक ही सांसारिक सुख भोगों की तरफ जन्मकाल से इसकी रुचि बनी हुई है। जिस तरफ चित्त का लगाव, मोह ज्यादा हुआ, उस तरफ यह चित्त दौड़ जाता है। शुभ-अशुभ कर्म जीव से बनते रहते हैं। जब तक चित्त के अन्दर प्रभु प्रेम या सत् मार्ग की ओर लगाव न हो तब तक सत्संग और अच्छे कर्मों को नहीं कर सकता। पूर्ण भाग उस जीव के हैं जिसके मन में प्रभु चरणों का प्रेम बना हुआ है, वह ही सत्संग की तरफ जायेगा और केवल सत्संग में जाने वाले के अन्दर ही सत् विचार पैदा होते हैं वरना मूढमति कुसंग की तरफ तो लगा ही हुआ है। जब सत् विचार पैदा होता है तब उसका सत् विश्वास ईश्वर के प्रति बनने लगता है। सत् विश्वास करके गुरु की शरण में जाता है। सच्चाई को तीर्थों, वनों, पहाड़ों एवं गुफाओं में ढूँढने लगता है। तब कहीं से कोई सत्पुरुष मिल जाता है और उससे ज्ञान उपदेश लेकर सत् साधन को धारण करके सिद्धता को प्राप्त कर लेता है। बगैर साधना के साध नहीं बन सकता। अनेक तरह के यत्न-प्रयत्न करने में लगा रहता है। प्रेम के बिना कोई कारज सिद्ध नहीं होता। जिस काम में उसकी रुचि

(लगन) होती है उसे पूरा कर लेता है। प्रेमी, बार-बार अपने आपको प्रभु प्रेम में दृढ़ करके इस कर्म रोग से मुक्ति पा जाता है। जब तक कर्म की वासना दग्ध नहीं होती तब तक संसार के भोगों की तरफ चित्त दौड़ता रहता है। जिस वक्त सुरति सत् नाम में लग जाती है, बाहर की सुध-बुध भूलकर केवल उस हालत में विचरती है। जब इच्छाएँ खत्म हो गई तो फिर चित्त किधर दौड़ेगा।

इस वास्ते संसार के सुख-भोगों को त्यागकर प्रेम पूर्वक निष्काम भाव से मालिक के चरणों में दो घड़ी मन, चित्त को लगाया करो। जब तक पूरी तरह से प्रभु सिमरण में बुद्धि नहीं लगती तब तक दौड़ती रहेगी। किसी गुरु- पीर का आश्रय लेकर चलने से सफलता मिल जाया करती है। जब संसार के सब कामों को सीखने के लिए उस्ताद की जरूरत रहती है तो धर्म के मार्ग में भी प्रेमी, बड़े भारी त्यागी सत्गुरु की जरूरत है। तुम लोग बड़े व्यापारी हो। सत् का सौदा लेने की इच्छा होगी तभी तो खरीदोगे। पहले इरादा पक्का बनाओ फिर यत्न भी बन जायेगा।

हिन्दू - मुस्लिम एकता का आदेश

सत्संग की समाप्ति पर सत्पुरुष ने प्रशाद बाँटने का आदेश दिया। परन्तु प्रेमी इस विचार में पड़ गये कि यहाँ हिन्दू-मुसलमान सब इकट्ठे बैठे हैं, तो प्रसाद कैसे बाँटा जाये। सेवादार प्रेमी एक-दूसरे की ओर देखने लगे। सत्पुरुष उनकी भावना को भांप गये। तब आपने फरमाया :-

"एक-दूसरे के मुँह की तरफ क्या देखते हो? प्रशाद क्यों नहीं बाँटते? अगर किसी प्रेमी को एतराज होवे तो वह प्रशाद न लेवे। यहाँ फकीरों की निगाह में सब लोग समान हैं। भ्रम को छोड़कर पवित्र जीवन की तरफ आओ। पवित्र जीवन तब ही होगा जब तुम लोगों में एक-दूसरे की सेवा वाली बुद्धि जाग्रत होगी। दूसरों की

सेवा करने वाले बनो। अपने सुख को हासिल करने की कोशिश न करो। जितने भी ईश्वर के प्यारे संसार में प्रगट हुए हैं सबका मिशन एक था। वे प्रभु प्रेम में तल्लीन रहे। उनके अनुयायियों में कई मतभेद उठते रहे। याद रखो, दूसरों के साथ द्वेष करना कितनी बड़ी भारी मूर्खता है।

मुसलमान जनता पर इस विचार का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। सबने मटोर शहर में ठहरकर रोजाना सत्संग करने की प्रार्थना की तो गुरुदेव ने समझाया कि-

प्रेमियो ! जन्म से इनका ऐसा स्वभाव चल रहा है। ज्यादा समय एकान्त में रब्बी मौज (ईश्वरीय प्रेम) में गर्क रहते हैं और सच्चे मालिक के ध्यान में मग्न रहते हैं। इसलिए शहरों और आम आबादियों से फासले पर ही ठहरते हैं। आप लोगों के बड़े नेक ख्याल हैं जो इतनी श्रद्धा से फकीर की बात को सुन रहे हो। हमारी सिर्फ यही प्रार्थना है कि अपने जीवन को खुशबूदार बनाओ। दूसरों की सेवा करो । दुनियाँ में दुर्लभ पदार्थ परमात्मा का नाम है। इसलिए मनुष्य जन्म में ही असलियत की खोज करो। जो कुछ सुना है उस पर अमल करो। अब मालिक की मेहर (ईश्वर की कृपा) से एक हफ्ता के करीब और यहाँ जंगल में ठहरेंगे। इनको न धन इकट्ठा करने की लालसा है और न ही किसी और चीज की ख्वाहिश है। सिर्फ रब्बी शौक में दीवाने हुए फिरते हैं।

प्रेमी: महाराज ! यदि आप आज्ञा दें तो यहाँ ही रोजाना सत्संग जारी करा दिया जावे?

गुरुदेव: प्रेमियों ! चूंकि हम यहाँ एकान्त में तप की खातिर ठहरे हुए हैं, इसलिए प्रोग्राम के मुताबिक ही अमल करना है। यह जगह भी दूर है, इसलिए लोगों को आने-जाने में तकलीफ होती है। फकीरों को ज्यादा मजबूर नहीं करना चाहिए। फकीर श्रद्धा और प्रेम के भूखे होते हैं।

वासना का अभाव ही ईश्वर की प्राप्ति

वाणी

जिसके अन्तर सत प्रेम परगासा, निरभय हुआ हरजन दासा।
दुःख द्वन्द्व से भया अतीत, सच्चदानन्द गावे मन गीत।
काम, क्रोध, मोह, लोभ, हंकार, प्रेम अगन से हो गए छार।
प्रेमी की विरत सदा निरधार, प्रेमी बोले निरपख विचार।
प्रेमी अन्दर सबकी वडियाई, सबसे नीचा आप रहाई।
प्रेमी देखे सबके गुन मीत, औगुन दृष्ट गई विपरीत।
प्रेमी अन्दर सबकी सेव, पलक पलक सिमरे गुरुदेव।
प्रेमी मन परम आनन्द, सरब जीयां को देवे ठण्ड।
तन मन धन हर चरन करे भेंट, नाम विश्वास केवल प्रभ टेक।
प्रेमी देखे अन्तर परगास, नित ही सिमरे तत अबनास।
तीन काल देह मिथ्या कर जाने, करन करावनहार साहब पहचाने।
प्रेमी मनुओं सदा निर्वैर, सरब जीयाँ की पूछे खैर।
प्रेमी बाँछे और की कल्यान, पर उपकार मन धरे निधान।
प्रेमी मनुआँ इच्छया से दूर, निष्काम भाव अन्तर भरपूर।
प्रेमी माँगे सब जग की सेव, तन मन त्यागे सब चरनी नीव।
उठत बैठत सिमरे इक नाम, नाम कमावे पाए प्रेम का धाम
माया भरम प्रेमी जन खोए, एको देखे सरब की लोए।
अक्षर एक प्रेमी आधार पढ़न और जाने विख सार।
एके नाम में रहे लवलीन, प्रेम पुंज अन्तरगत चीन।
अखण्ड विरत प्रेम सरूप, अन्तरमुख पावे हर रूप।
गई कल्पना भयो निरदोख, अमर पद पाया परम सुख मोख।
नित ही लागा एक सुभाए, प्रेमी बोले इक धार लखाए।
सरब जीयाँ का भयो हितकारी, तन मन अपना सब पर वारी।
प्रेम परसाद खाय के, पायो रूप त्याग।
'मंगत' बुद्ध इस्थिर भई, गई कलपना भाग ।।

प्रवचन

प्रेमियों। यह जबानी जमा खर्च का काम नहीं कि 'अहं ब्रह्मास्मि कहने से पार हो जाओगे। जब तक अन्तर विखे शब्द की धारा जारी नहीं होती, तब तक यह वासना का बैग खत्म नहीं होता, चाहे करोड़ जन्म क्यों न बीत जाएँ। दिन-रात झूठ वस्तु का तोलना, शाम को "मैं ब्रहा हूँ" कहके अल्लाह मियाँ (ईश्वर) बन गये। कर्म करने की वासना जब तक मौजूद है तब तक उसके अन्दर प्रकाश नहीं होगा, यह इनके अनुभव की बात है।

जिस समय शरीर को तीन काल निश्चय करके मिथ्या समझेगा उस वक्त वह योगी खुद ही जान जायेगा कि मैं कहाँ खड़ा हूँ। अन्तर तो बुद्धि हर घड़ी विषयों को पूर्ण करने के वास्ते सोचती रहे और बाहर से ब्रह्मवादी बन जाए तो इससे पूरी तसल्ली नहीं होती। दूसरों की कुछ देर के लिए हो जाती है लेकिन अपना मन नहीं मानता। मुख की कथनी कभी धीरज नहीं देती। और ज्यादा बहमों में फँसती जाती है। इससे साधारण जीव अच्छे हैं जो मेहनत करके निर्वाह करते हैं और दो घड़ी श्रद्धा, विश्वास से स्मरण भी कर लेते हैं। उनसे वक्त पर सेवा, सत्संग भी हो जाता है।

नित ही भय में रहकर अच्छे कर्म करने की कोशिश करते हैं। ब्रह्मवादी तो उल्टे विकारों में फँस जाते हैं। सब कुछ "ब्रह्मास्मि" समझकर हर एक चीज को लपेटने की कोशिश करते हैं। ऐसी अन्धमति, विकारों में फँसी हुई बुद्धि कभी भी परम शान्त निर्वाण पद को प्राप्त नहीं हो सकती। यह कथनी का मार्ग नहीं रहनी का है। पहले यत्न- प्रयत्न करके चिरकाल बाद निर्देह अवस्था का बोध होता है. तब उसमें स्थित रहे और मुँह से कुछ न कहे कि मैं ऐसा हूँ। अन्दर प्रकाश तब होगा जब मनसा खत्म हो जावेगी। उस समय कर्म करने की चाह नहीं उठती, तब कहना और बाकी क्या रहा।

सबसे अच्छा तरीका यह ही है कि नित ही प्रभु सिमरण में अपने आपको ले जाने वाली भावना पैदा करो, जिस कृपालु ने यह चमड़ी हड्डी मॉस

का शरीर जीवित कर रखा है। यह सब ज्ञान इन्द्रियों की बनावट इस तरह बनी हुई है। कर्म इन्द्रियाँ किस प्रकार खेल रही है, बुद्धि मन द्वारा सब अपना-अपना इन्द्रिय कर्त्तव्य सोच-विचारकर अनेक प्रकार से छिनकारी सुखों को अनुभव कर रही है। जिस प्रभु की यह सब रचना है उसको मूर्ख मन क्यों नहीं विचारता। बार-बार 'मैं-मेरी' के झगड़े नित ही राग-द्वेष की अग्नि में जलाते रहते हैं। जब इसको यह समझ आ जाती है कि यह तन-मन-धन वगैरह कुछ भी मेरा नहीं, किसी दूसरी वस्तु द्वारा यह प्रकाशित हो रहा है, उस वक्त मान (मैं पना) खत्म हो जाता है। अपनी सार वस्तु को समझकर नित ही उसमें लीन होता हुआ परम शान्ति को जिज्ञासु प्राप्त होता है।

प्रेमियों ! ज्यादा ज्ञान ध्यान को छोड़कर पहले सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत सिमरण वगैरह उसूलों को धारण करो। सब कुछ इसमें आ जाता है, बाकी विरले ही पूर्ण गति को प्राप्त होते हैं। चलते चलो,चलते चलो। कभी ना कभी कृपा हो जावेगी, ईश्वर आप सबको निर्मल बुद्धि देवें।

वैराग्य वाणी

माटी का यह पुतला बनया, माटी माहीं समाए।
धनी दलिद्री राजा राना, सब एह मारग पाए।।
किसी की बनी रही ना मीता, एक पलक में नाश हो जाई।
मूरख सोही जग में कहिये, जो निर्मल सार नहीं ध्याई।।
तृष्णा में आवें तृश्ना में जावें, देखो जग की रचना।
बिन प्रम नाम आवे नहीं धीरज, देख भरम यह सुपना।।
प्रभ सिमरन सत्संग परीती, नित धारे पर उपकारा।
'मंगत' मारग धरम का सोधे, तब उतरे भवनिध पारा ।।

प्रवचन समाप्त होने के पश्चात् रात को गुरुदेव शमशान भूमि में पहुँचे। उस दिन एक चिता जल रही थी, जिसको देखकर आपने फरमाया :-

जिन्ना दे घर लाल ते हीरे, उन्हों नू खा गये कीड़े।
जिन्ना दे घर झूमते हाथी, उन्हों नूं खा गई माटी।।

रात को नाद ध्यान सम्बन्धी वाणी उच्चारण फरमाई। दूसरे दिन जब लिखी हुई वाणी दुरुस्त हो रही थी, उस समय आपके सेवक भक्त बनारसी दास ने प्रश्न किया।

प्रश्न : महाराज जी ! हर पद नये रूप में आता है। यह बड़ी अश्चर्ज बात है। वाणी आसान बड़ी है, भाव बड़े गुह्य हैं?

गुरुदेव : प्रेमी, सब उस मेरे मालिक की अपनी लीला है। यह साढ़े तीन हाथ का पिंजर क्या हस्ती रखता है। जो भी उस मेरे मालिक को याद करता है उसके अन्दर यह गुप्त भेद अपने आप ही प्रकट होता चला जाता है। सिर्फ अन्तर्गति विचार करने की जरूरत है, वह अमृत अन्दर ही है, बाहर नहीं। वैसे अन्दर भी वह, बाहर भी वह ही है। लेकिन अन्तर्मुख होवे तो उस सार वस्तु का अनुभव हो। अनुभव बुद्धि ने करना है, शरीर ने नहीं। नित प्रकाश अखण्ड ज्योति तीन काल मौजूद है, शरीर तीन काल में नाश स्वरूप है, लेकिन यह जीव शरीर को तीन काल सत समझता है और उस आनन्द की तरफ जाता ही नहीं। हर एक जीव सुख के वास्ते घन, भूमि, माल इकबाल, कोठियाँ, कारें और दुनियावी साजो-सामान एकत्र कर रहा है। इन्हीं संसारी वस्तुओं को प्रिय जानता हुआ हर समय मस्त और मग्न रहता है। शारीरिक सुख के वास्ते कहाँ-कहाँ दूर-दराज तक टक्करें मारता है, लेकिन आखिरकार यह ही नतीजा है, जो तुम सामने (चिता की ओर इशारा करके) देख रहे हो। कल रोज खड़ा था. आज आग में मिलकर राख हो गया है, हर एक जीव अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार दुःख-सुख भोगता हुआ ऊँच-नीच जूनियों में भटकता फिर रहा है। इस तरह अनेक जन्म जन्मान्तर तक दुःख-सुख भोगता हुआ हर वक्त अशान्ति में रहता है। जो लिखते हो, समझा करो, तब चित्त में बात ठहरेगी। ऐसे द्वन्द्व भाव में भरमता हुआ अबिनाशी सुख से दूर रहता है।

प्रश्न : महाराज जी ! यह आलस्य निद्रा इत्यादि विकारों से खुलासी (छुटकारा) न जाने कब होगी?

गुरुदेव : प्रेमी ! जब तक शरीर है शरीर के धर्म भी साथ है, यानि सोना, खाना, पीना, पैदा होना, बढ़ना, जवान होना, बुढ़ापा, कुबडा होना, फिर गिर जाना। बाकी विकार भी इसमें तब तक रहते है जब तक शरीर है। इनसे छुटकारा आहिस्ता आहिस्ता ही पाया जा सकता है।

प्रश्न : महाराज जी ! कभी बड़े अच्छे विचार पैदा होते हैं, सिमरण अभ्यास, सेवा करते जायें। कभी मन इनसे इन्कारी हो जाता है। कभी अच्छा खाना, पीना, पहनने में गर्क हो जाता है?

गुरुदेव : प्रेमी ! यह गुणों का चक्कर चलता रहता है। जब सतोगुणी भाव प्रगट होता है तब खाहमखाह सत्संग, सत् सिमरण सेवा में मन लगना शुरू हो जाता है। रजोगुण खाने, पीने, पहनने, भोग-विकार की तरफ ले जाता है। तमोगुण चोरी, जुआ, कपट, छल निन्दा की तरफ ले जाता है। इन गुणों के चक्कर से पार होने के वास्ते ही अभ्यास है। जब निर्गुण अवस्था इसके अन्दर पैदा होती है तब इन विकारों की समाप्ति का पता नहीं लगता, किधर गये। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धेरे का पता ही नहीं लगता, किधर गया। टोकरियाँ भर-भर कर अन्धेरा निकालने का बन्दोबस्त करो, इस तरह कभी नाश न होगा। एक दियासलाई जलाने से एकदम ही जैसे प्रकाश हो जाता है, सब चीजें नज़र आने लग जाती हैं। फिर उस समय सब काम अच्छी तरह बनने लगते हैं। इस तरह रंचक मात्र भी जब बुद्धि सही तौर पर निर्मल हो जाती है, तब अपने आप ही भोग पदार्थों से नफरत (घृणा) होने लगती है। ज्यों-ज्यों यह नफरत बढ़ती जाती है त्यों-त्यों सत् मार्ग में रग़बत (झुकाव) होती जाती है। फिर समय पर अपने आप ही रंग लग जाता है। गिर-गिर कर फिर उठे। घबराना नहीं। गिरकर वहाँ ही चोपड़ मारकर नहीं बैठे रहना चाहिए, फिर सत् विचार द्वारा बुद्धि को समझाकर सत् मार्ग में लग जाओ। इस देश का नाम ही काल देश है। काल में दयाल को समझना है। भाई का कड़ाह (हलवा) नहीं झट मुँह में डाल लोगे। अच्छा जाओ शरीर देवता की पूजा कर आओ। (भोजन के लिए इशारा)

जीव की वास्तविक चाहना

वाणी

अधिक विकराल मन का दाओ, रैन दिवस में नित भरमाओ।
भय भरम में रहे लवलीना, संकल्प विकल्प में नित भरमीना।
एक पलक नहीं शान्त समाई, अधिक सम्पत जो घर में पाई।
ग्रहण, त्याग की धारी नित किरया, हरख शोक नित अन्तर धरया।
जीवन आसा और लोभ विकारा, पर निन्दया में नित मतवारा।
अति गरभ गरूर को धारी, अत विकार मन दुष्ट विचारी।
नित कुसंग में करे निवास, पाप करम की घारे फाँस।
अधिक उपाय करे नित जीया, तो भी मन नहीं धीर लखीया।
बिना विवेक बिन सत्संग मीता, कयूँ ना मनुआ होए पुनीता।
मन मलीन अधिक दुखदाई, बिना विचार ठौर नहीं पाई।
अन्ध विचार में नित गरसावे, पाप भोग में नित भरमावे ।
अपनी गफलत से पावे पीड़ा, हाहाकार चित्त धरे घनेरा ।
मिल सत्संग पाओ सत विचार, जिस बिध मनुआं पावे सार।
नित सरूप का सुनो परसंग, सत विचार का धारो रंग।
पूरन जतन राखो चित्त माई, दृढ़ विश्वास सत नाम ध्याई।
प्रेम साहिब का मैल सब धोवे, अन्तर चित्त जो गुनी परोवे।
अधिक विचार करो जग रचना, बिन भगवन्त सकल है सुपना।
सकल मनोरथ भरम की टाटी, अन्ध गुबार चित्त लीन समाती।
बिन प्रभ भगत नहीं पावे विसरामा, करम संजोग धारे दुख जामा।
माया के अन्धकार में, जीव गवन नित पाये।
'मंगत' धार सयानफ, नित प्यासा जाये ।।

प्रवचन

जीव की वास्तविक चाहना हर समय यही बनी रहती है कि सुख मिलता जाये, दुःख मेरी जगह कोई दूसरा भोगे। मेरे नजदीक दुःख कभी न आये। सुख चाहता है स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति, कोठियाँ, बँगले, मोटर-कारें और दुनियावी साजो-सामान में। साथ ही यह भी कभी-कभी कोई चाहता है कि भक्ति भी साथ ही बनती चली जावे। भक्ति जीभ की भी की जाती है, इस शरीर रूपी चरखे को नित्य ही हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर बनाने के वास्ते। इसके बनाव ऋगार में फर्क न आये। आखिरी गति जो इस शरीर की है, उसका कभी विचार भी नहीं करता। नतीजा क्या निकलता है। आखिर एक दिन यह चरखा पुराना होकर लड़खड़ाने लगता है।

चरखा घड़ दे वे तरखाना, असा सावरे घर जाना।
चंगी लकड़ी लगाई दिल देके, असां बैठ नहीं रहना पेके।।
चरखा मेरा रंग रंगीला, पीढ़ी मेरी राती।
केहड़े वेले दी कत्तन बैठी, इक ना पूनी काती।।
चरखा टुट-फुट होया बालन, चरखा अन्दरों बाहर निकालन।
चरखा जंगल जाय समाया, चरखा दास कबीरे गाया।।

यह सत्पुरुषों की खोज है। शरीर की कैसी बनावट है। यह हमेशा रहने वाला नहीं है। यह नाशवान है। जिन्होंने निश्चय करके शरीर को नाश रूप समझा है, उन्होंने असली तहकीकात की, और फरमाया - "इस भयानक संसार में जो आया है, इसमें आकर बिना यत्न के किसी ने भी आज तक कल्याण हासिल नहीं की। सबसे पहले जिस मार्ग पर सत्पुरूष चले, नित्य ही उनके वचनों को विचारा जाये। उनके अन्दर कितना त्याग था, कितना वैराग्य था, कितनी उनके अन्दर सत मार्ग की खोज के वास्ते तड़प थी। कैसी उनकी रहनी कहनी थी"।

गल्लीं. असी चंगियाँ, आचारीं बुरियाँ।
रीसां करन तिनां दियां, जो सेवें दर खड़ियाँ।।
कल्लर दया वंजारया, झुंगे मुशक मंगें।
बिना अमलां तू "नानका", कीवें कन्त मिलें ।।

नकल तो उन महापुरुषों की करें जो नित्य ही उस परम तत्व में बिना खाये-पीये मग्न रहा करते थे। जिनकी कीर्ति, शोभा, महिमा को लेकर कई

प्यासे जीव प्यास बुझा रहे है और अन्दर करतूत चण्डालों जैसी हो। गुरु बनना आजकल बड़ा आसान हो गया है। दस श्लोक उधर कबीर के पढ़े, दस बुल्ला शाह के, पाँच नानक के, बस सत्गुरू बन गये। जब ऐसे गुरु हुए तो शान्ति का मार्ग कौन दिखलाये। मन के अन्दर ऐसी चाहना हो कि मैंने परम सन्त बनना है। मालिक के पास पहुँचना है। तब उन महापुरुषों के उसूलों को धारण करें। करनी करके बड़ा बने। अगर राजा बनने की ख्वाहिश है तो पहले सिपाही भरती हो। आहिस्ता आहिस्ता कमाल को हासिल करेगा। जैसे मन, चित्त का आदर्श हो उसके अनुकूल यत्न करे, तब सफलता का मुँह देख सकेगा। हर एक जीव अपनी शुभ-अशुभ वासना के अनुसार कर्म करके दुःख और सुख पा रहा है। कोई देवी-देवता, गुरु-पीर, नबी-अवतार निज़ात (मुक्ति) देने वाला नहीं। गुरु-पीर सिर्फ रास्ता बताते है। आगे जो सत कर्मों को धारण करेगा वह ही सही चाहना, परम सुख को प्राप्त कर सकता है। जो दूसरों के भरोसे पड़ा रहता है उसे कभी छुटकारा दुःखों से नहीं मिल सकता। करनी ही देवता बनाने वाली है और करनी ही राक्षस। अगर करनी मलीन हो तो लाख देवी-देवता भी उसे उठाकर पार नहीं ले जा सकते। वह जब भी प्रगट होकर उपदेश देंगे, उनका यही उपदेश होगा कि करनी निर्मल करो। गुरु-पीर, अवतारों के मानने का मतलब यह है कि पाखण्ड को छोड़कर सत करनी चित्त में धारण की जावे। सतपुरुषों के जीवन का आधार इस वास्ते लिया जाता है कि सत विचार, सत् श्रद्धा. सत् विश्वास, सत् करनी प्राप्त हो। सत् की धारा पर चलकर विकारों की अधिक चेष्टा से मुखलसी (छुटकारा) प्राप्त हो, इस वास्ते नित्य सत् पुरुषार्थ धारण करो, नित्य ही ऐसे सत्कर्म करो जिनके द्वारा लोक-परलोक में सुख बना रहे। तीन काल परम सुख, अखण्ड शान्ति रूपी परम धन मिलता रहे। जिस धन को पाकर फिर निर्भय, निर्वाहक, निर्दोष हो जावे। इस कलियुग में क्या सत्युग में भी यही सूर्य, हवा, पानी, धरती और आकाश थे। उस समय सत्युग के लोग कुदरती सादा थे। खान-पान, बोल-चाल, बड़े शुद्ध रूप में थे। झूठ का नाम-निशान न था। सेवा करना तन-मन करके परम धर्म समझ रखा था। आजकल **"चूल्हे की तेरी, तवे की मेरी"** है। फिर सत्संग यानी सत् विचारों को नित ही बैठकर विचारते रहते थे। हर समय मालिक

की याद में मग्न रहते थे। इन्हीं उसूलों को यानि सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरण को जो आज धारण कर ले, वह ही सत्युगी जीव बन सकता है। आज अशान्ति का कारण ही यह है कि सब कुछ शरीर और शरीर के भोगों को ही परम सुख मान रखा है। जिसने सब कुछ दिया है उसकी याद खोज ही नहीं। उसी मालिक की बनाई हुई हर एक चीज को तोड़-मरोड़ कर कहते हैं कि हम ही संसार में आये हैं। हमारे जैसा आगे आया ही नहीं। जो पहले आये उन्होंने हजारों बरस आयु घास-फूस की झोंपड़ियों में गुजार दी। सादा उनका रहन-सहन था और विचार बहुत ऊँचे थे। उनकी नीतियाँ, कानून जो बने हुए हैं उनके सहारे ही आज के साईंसदान वगैरा चल रहे हैं। प्रकृति की खोज में परम सुख नहीं, बल्कि प्रकृति बनाने वाले की खोज ही परम शान्ति की तरफ ले जाने वाली है। नित ही गहरी खोज में रहकर इस अशान्त महासंसार में शान्ति प्राप्त करो। प्रभु नित्य ही निर्मल बुद्धि सबको बख्शें ताकि महापुरुषों के कदमों पर चलकर संसार में आना सफल हो।

दोहे

कोट जीव नित आवें जावें, बिना भगति ना पायें ठौर।
तृष्णा अगन में नित ही जलें, नहीं सिमरें नाम हजुर ।।
अपना भरम नित आप बन्धाई, अनमति जीव दुःख पावे।
सत करतार ना हिरदय सिमरे, नित आवे नित जावे ।।
साध जनाँ की सीख नहीं लीनी, ना कुछ किया विचारा।
झूठ वखर को संचित करके, उठ चलया बंजारा ।।
अपनी करनी भई दुखदाई, अब रोवत क्या होई।
जो कुछ किया सो निश्चय भोगें, पावें कभुं ना ढोई।।
ऐसे सबने उठ के चलना, साजन नाँगे पाये ।
'मंगत' नाम सिमर प्रभ दाता, जो तीन काल सहाये।।

प्रश्नोत्तर

एक प्रेमी : महाराज जी ! जीवात्मा और परमात्मा अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार एक ही हैं। अगर दुनियाँ में इस सिद्धान्त के अनुसार बरता जाए तो सब परम्परा चौपट हो जाऐगी। भ्रष्टाचार का फैलाव होगा? गुरुदेव : हाँ प्रेमी ! यह बात अच्छी तरह समझ लो । आज अद्वैत वेदान्त के

मानने वाले लोग सत्पुरुषों के इस सिद्धान्त के गलत माने (अर्थ) लगाकर भ्रष्टाचार का फैलाव किये जा रहे हैं। अद्वैत भाव चिन्तन का विषय है। अपने आपको जीव भाव से ऊँचा उठाकर परमात्म भाव में लीन करने के लिए अद्वैत चिन्तन एक मार्ग है। लेकिन प्रकृति में खुली आँख करके जो कुछ भी बरताव किया जाए वह द्वैत में ही होगा क्योंकि प्रकृति द्वैत रचना है। अगर प्रकृति में बरतने में अद्वैत भाव रखा तो फिर तरट्टी चौड़ हो जाती है। सामाजिक परम्परा नष्ट होकर लोग भ्रष्टाचारी हो जावेंगे। इसलिए सत्पुरुषों ने फरमाया है कि हमेशा अपने निश्चय में अद्वैत भाव रखो। आत्म सम्बन्धी चिन्तन अभ्यास करना चाहिए और ब्यौहार में खुली आँख करके द्वैत भाव में रहना चाहिए।

प्रेमी : महाराज जी ! कभी-कभी ऐसी अवस्था बन जाती है कि मन उचाट होकर न साधना में लगता है और न ही स्वाध्याय करने को जी चाहता है। नींद और आलस्य आ घेरते हैं। मन खुद-ब-खुद विषय चिन्तन करने लगता है। मन के अन्दर घोर तमोगुणी वृत्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं। उस समय क्या करूँ?

गुरुदेव : लाल जी ! घबराना नहीं चाहिए। बेहतर होगा कि ऐसे वक्त में सब कुछ छोड़कर तन्हाई यानि एकान्त में चले जाना चाहिए। विचार और अभ्यास बारम्बार दृढ़ करना चाहिए। बारम्बार मन की वृत्तियों को पकड़कर समझाना चाहिए।

ऐ मूर्ख क्यों परेशान है। जिन-जिन विषयों को भोगकर इन्द्रियों को तृप्त करना चाहता है, वे क्या आज तक तृप्त हुई हैं। इस समय जिनको अपार भोग प्राप्त हैं, जिन भोगों की तू कामना कर रहा है, क्या उनकी इन्द्रियाँ तृप्त हुई हैं या नहीं? बिल्कुल नहीं हुई। तू जाकर तस्फीया (फैसला) कर ले। जो कुछ पूछताछ तूने करनी है, जाकर कर ले। फकीरों की बात याद रख। सब प्यासे ही हैं और घोर अतृप्त अवस्था में ही हैं। फिर तू क्यों इस अन्धेरे में पड़ता है? इन्द्रियों का स्वभाव ही है कि ये नित प्यासी रहती हैं। इसलिये तू उस सत् तत्त की खोज कर जो इन इन्द्रियों की हमेशा की प्यास शान्त हो जाए। इस तरह बारम्बार विचार द्वारा मन को सावधान करना चाहिए और एकान्तवास करना चाहिए।

प्रेमी : महाराज जी ! ईश्वर-ईश्वर का नाम आप बार-बार लेते हैं और उसके बारे में आपके बयान भी और ही तरह के नजर आते हैं। मेहरबानी करके ईश्वर वाला मसला भी साफ करें?

गुरुदेव : प्रेमी ! तुम्हें बहुत थोड़े से में इसको साफ कर देते हैं। तसल्ली और ना-तसल्ली हालत से अबूर (ऊपर उठकर) पाकर अपने आपके निज स्वरूप में स्थित होना ही ईश्वर है। दूसरे, बुद्धि की निश्चल हालत ही ईश्वर है। प्रेमी : महाराज जी ! शास्त्रों में एक तरफ आत्मा को कर्ता मानकर सारी जिम्मेदारी उसके ऊपर डाल दी जाती है और दूसरी तरफ यह भी कहा गया है कि वह अकर्ता है और बरी-उल-ज़िम्मा (उत्तरदायित्व से दूर) है। यह दोनों बाते एक-दूसरे से मुतज़ाद (विरोधी) हैं। आप इस बारे में ज़रा साफ करने की कृपा करें।

गुरुदेव : प्रेमी ! आत्मा के ही यह दोनों स्वरूप एक-दूसरे के मुकाबले में जीवों की समझ के मुताबिक सत्पुरुष बयान करते आए हैं। असलियत में ना वह कर्ता है, ना अकर्ता। जब तुम उस अवस्था तक पहुँचोगे तो सारा भेद तुम्हारे ही सामने खुल जाएगा। आत्मा को कर्त्ता मानना और अपने आपको निमित्त मात्र उसकी आज्ञा में देखना, अपने आपको निर्बन्धन करने का एक उपाय है। दूसरी तरफ ऐसा करते-करते बुद्धि उस अवस्था तक पहुँचती है। उसको यह अनुभव होने लगता है और सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व को समझने की शक्ति पैदा होती है और वह देखती है कि गुण ही गुणों में बरत रहे हैं। आत्मा निर्लेप है, अकर्ता है। इससे और ऊपर जब बुद्धि पहुँचती है तो उसका स्थान और तवाजन (सन्तुलन) इतना सूक्ष्म हो जाता है कि वह कर्ता और अकर्त्ता के टंटे (झगड़े) से उठकर एक ऐसी स्थिति में पहुँचती है जिसका बयान किया नहीं जा सकता। यह स्थिति गूंगे का गुड़ है जो स्थिति प्राप्त होने पर ही जाना जा सकता है।

प्रेमी : महाराज जी ! प्रेम और अनुराग की क्या पहचान है ?

गुरुदेव : लाल जी ! यह बड़ी गम्भीर बात है। जरा गौर नाल सुनो। बुद्धि का जब परिपक्व निश्चय हो जाएगा कि यह शरीर और इससे सम्बन्धित संसार नाशवान और तब्दीली युक्त हैं, अगर कुछ है भी सही तो आरज़ी (क्षणिक) है तो उसके अन्दर अनुराग उत्पन्न होगा। अनुराग के साथ-साथ प्रेम की परिपक्ता होगी।

प्रेमी ! महाराज जी ! तीर्थों की क्या महिमा है?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! समता विलास में तीर्थ यात्रा सिद्धान्त में यह बात अच्छी तरह खोलकर समझा दी गई है। उसको विचार कर लें। अन्दर की ठण्डक देने वाली जो भी तरत है उसे तीर्थरूप ही जानें।

लोक सेवा - दुर्लभ सेवा

वाणी

परकिरत का जाल अधिक विस्तारी, बिना जतन नहीं उतरे पारी ।
साचा जतन नित मन माहीं विचार, अबगत रूप पार्वे मुरार।
जुगत आहार ब्योहार में धारे, संजम बुद्ध नित लेख विचारे।
आहार पवित्र खुदिया परमाना, ब्योहार पवित्र जग निर्वाह वरताना।
साची संगत सतपुरुषों की धार, समाँ पाय सत कथा विचार।
संध्या प्रातः प्रभ नाम चितार, बैठ एकान्त निश्चय यह धार।
सब जीवों संग हेत पछान, सबका सुख मन माहीं बखान।
जगत की रचना पलपल विचार, अंत समय का नित करो शुमार।
धरम के मारग में प्रीत बढ़ाओ, संचित माया सत करम लगाओ।
सतपुरुषों की सीख नित जाप, पाप करम का बिनसे ताप ।
साची प्रीत प्रभ चरन पछान, मन में बॉछो नित नाम निधान ।
साचे धरम का निरना धार, दिन दिन प्रीती अधिक विचार।
वैर बखीली मद मान नहीं पेख, दासा भाव में जीवन देख ।
अपने बन्धन का करो विचार, अपनी अवधि का निर्णय नित धार।
समां गया नर हाथ ना आई, विचरत काल में सत करो कमाई।
कर दीन अनाथ दुखियों की सेव, मान त्याग पायें सत भेव।
औगुन मन के जो नित अधिकाई, रसना प्रेम में दियो जलाई।
इक दिन चलना निश्चय कर मीत, पर उपकार धारो नित नीत।
परदुख हरयो सुख नित वरताओ, साचा हुकम साहेब चित्त पाओ।
लोक की सेवा मन मैल गँवाई, लोक की सेवा चित्त धीर लखाई।
लोक की सेवा मोह भ्रम नासे, निर्मल प्रेम घर में परगासे।
लोक की सेवा मारग कल्यान, सतपुरुषों का यह सत फरमान।
लोक की सेवा परलोक सहाई, जम का संकट नहीं सुपने पाई।
लोक की सेवा में होय निरमान, साची कीरत पाई भगवान।
लोक सेवा संसार में, निर्मल धरम विचार ।
'मंगत' भाव निष्काम से, नित ही खाटो सार।।

प्रवचन

ईश्वर की उपासना कई प्रकार से सांसारिक जीव करते हैं। पहले तो वे जीव है जिन्होंने परमेश्वर के बारे में तो सुना है मगर विश्वास नहीं है, वे अपनी नेकी-बदी को सोच नहीं सकते हैं। अंतरात्मा उनकी अन्धी व मोटी होती है। वे किसी वक्त कहीं मुँह से परमेश्वर का नाम किसी गुरु पीर से सुनकर निकालते है, मगर पता नहीं है कि परमेश्वर क्या चीज़ है। उन्होंने जिन्दगी का मुद्दा यह समझा है कि खूब खाओ, पियो और मौज उड़ाओ। उन्होंने सत्-असत् कर्म करके इन्द्रियों के भोगों में लीन रहना जिन्दगी का मिशन समझा है। ऐसे लोग हर किस्म की चाल चलने वाले होते हैं। अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के वास्ते अपनी लड़कियों तक बेचकर अपना लालच पूरा कर लेते हैं। उनको लज्जा-शर्म नहीं होती। वे मन के दोषों में ऐसे गिरफ्तार होते हैं कि हर समय दुराचार करके उनको निवृत्त करने की कोशिश करते हैं। दुराचार करके भी कहते हैं कि हम सफेदपोश हैं, हमने कोई गुनाह नहीं किया। ऐसे स्वभाव वाले को चण्डाल का दर्जा दिया जाता है। ऐसे लोग हमेशा बेवफा होते हैं। किसी से हमदर्दी करने वाले नहीं होते। साक्षात् राक्षस बुद्धि वाले पुरुष हैं उनका कोई इलाज नहीं। उनका कोई गुरु पीर नहीं। सरकार ही उनको कोई सज़ा देवे तो दे सकती है या प्रकृति कर्म दण्ड दे सकती है।

दूसरे दर्जे के जीव वे हैं जिन्होंने प्रभु के बारे में सुना है और वे ईश्वर को मानते है, मगर केवल इसीलिये कि उनको संसार की सुख-सम्पत्ति मिलती रहे। वे स्वार्थ की खातिर ईश्वर को याद करते हैं, उसकी कुछ-कुछ खुशामद भी करते है। दो-चार साल भजन बन्दगी भी करते हैं। अगर संसार का सुख मिलने लगा तो उनकी निगाह उस तरफ लगी रहती है और अगर संसार की गर्दिश आ गई तो भजन बन्दगी छोड़ देते हैं। वे कहते है "हमें भजन बन्दगी से क्या मिला? जो लोग बुरे कर्म करते हैं और धोखा करते हैं वे फल-फूल रहे हैं। लेकिन हम अच्छा काम करते हैं, भजन भी करते हैं और फिर भी दुःखी है।"

इनके ऊपर पंडित, काजी, मुल्ला है, जो दिखलावे की खातिर माला फेरते हैं ताकि लोग उन पर विश्वास करें और वे अपना उल्लू सीधा करें। बड़े-बड़े सजदे करते हैं, मन्दिरों में बड़ी-बड़ी आरतियाँ उतारते हैं, जनेऊ वगैरा पहनते

है। जरा सा कपड़ा किसी से छू गया फौरन नहाते और कपड़े धोते हैं, लकड़ियों तक वे घोकर जलाते है, मगर जानवरों को परों व बालों समेत हडप कर जाते है। ये सब धर्म की आड़ में संसारी सुख एकत्र करते हैं। इस तरीके से ईश्वर को मानने वाले असल में इसको नहीं मानते, वे तो माया के मोह में जकड़े हुए है। प्रभु को मानने वाले वे हैं जिन्होंने संसार की नाशवान हालत का विचार किया और सोचा कि संसार के सुख खत्म हो जायेंगे। उन्होंने सोचा कि मन को उस जगह लगाया जावे जहाँ सच्चा सुख हासिल हो। वे शारीरिक सुख की खातिर ईश्वर को नहीं मानते, बल्कि मन की शान्ति की खातिर उसका सिमरण करते हैं। उनकी भक्ति अटूट होती है, वे ईश्वर से व्यापार नहीं करते। वे सुख और दुःख में उसे याद करते हैं। वे दिखलावे की खातिर ईश्वर को याद नहीं करते, बल्कि इरादे को पक्का करने की खातिर उसे याद करते हैं। वे चाहते है कि उनकी जिन्दगी जन-हित के लिए व्यतीत हो। ऐसे पुरुष ईश्वर महिमा को जानने वाले है। लोक सेवा का भाव उनके अन्दर पैदा होता है। दूसरों का दुख वे अपना दुःख समझते हैं। वे निष्काम सेवा करते हैं। वे ईश्वरवादी होते हैं। जनता जनार्दन की सेवा उनका उसूल है। जिस पुरुष के मन में जनता का प्रेम और सेवा भाव हो वह ही ईश्वर को मानने वाला है।

गुरुओं ने सही रास्ता बतलाया और स्वयं उसी रास्ते पर चलकर कामयाबी हासिल की तथा जनता को भी वही रास्ता बतलाया। उन्होंने बतलाया कि ईश्वर को वह समझ सकता है जिसके अन्दर जनता का प्रेम है। हर एक जीव चाहता है कि उसे दुःख न मिले, इसलिए उन्होंने समझाया कि अगर तू सुख चाहता है तो सब जीवों को सुख देने वाला हो। अपना सुख दूसरों में बाँटो और तुझे -खुद-व-खुद सुख मिलेगा। अगर तू नम्र बनेगा तो दुनिया में नाम रोशन होगा। अपनी रोटी में से तू अतिथि अभ्यागत और अनाथों को भी दे। तुम्हारे भण्डार भरे रहेंगे, तुम्हारा भला दूसरे के भले में है।

हे मनुष्य, तेरा कल्याण दूसरों के कल्याण में है। अगर तू दूसरों के नाश का यत्न करेगा तो तेरा अपना भी नाश हो जाएगा। आत्मा जैसा तुममें प्रकाश कर रहा है वैसा दूसरों में प्रकाश कर रहा है। अगर दूसरों से दुश्मनी करेगा तो अपने

से दुश्मनी करेगा। लेकिन यह ऊँची तालीम है, इसकी समझ मुश्किल है। बुद्धि दूसरों के दोष निकालकर अपने अन्दर दोष भर लेती है। जिस प्राणी के मन में विश्वास न हो वह दूसरों को भी विश्वासहीन समझता है।

नेक भाव सत फरमांबरदारी, सेवा, सत इत्यादि धर्म के अंग हैं। कानून कुदरत के मुताबिक चलने वाले लोग कामयाब होते हैं। मन्दिर आदि संगत के इकट्ठा होने के वास्ते बनाए गए हैं ताकि वहाँ जाकर नेक अमल सीखें। जो पुरुष अपने शरीर की ताकत व धन दूसरे की भलाई की खातिर खर्च कर रहा है वह दिल का मालिक बन जावेगा। दिल के मालिक नेक भाव वाले बनते हैं। जिनके अन्दर जनता की प्रीत, प्रेम, सेवा और उपकार नहीं है उनको प्रभु का पता नहीं हैं। महापुरुष सोचते हैं कि जैसे अपने बच्चे हैं वैसे दूसरों के बच्चे हैं। इसी भाव से वे उनकी भी सेवा करते हैं।

एक बार स्वामी रामतीर्थ एक गाँव से गुजर रहे थे। उन्होंने एक स्त्री को रोते हुए देखा। रोने का कारण पूछा तो उसने बतलाया कि उसका बच्चा मर गया है। स्वामी रामतीर्थ एक बच्चे को पकड़ लाए और औरत के सामने करके कहा- "यह देख बच्चा जिन्दा है और तू कहती है कि वह मर गया है। उस स्त्री ने उत्तर दिया कि यह मेरा बच्चा नहीं है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा कि तू मेरे को रो रही है, बच्चे को नहीं रो रही।"
जो जीव अपनी सन्तान की सेवा में लगे रहते हैं और लोक सेवा की ओर प्रवृत्त नहीं होते उनको आखिर यही तजुर्बा होता है कि उनकी सन्तान ही उनको कृतघ्न बना देती है। अगर किसी दूसरे आदमी पर उपकार किया जावे वह तमाम उम्र उसके अहसान को याद रखता है।

एक पुरुष अपनी पुत्री की शादी पर लाखों रुपया लड़के वालों को देता है, मगर लड़का उसके उपकार को नहीं मानता और कहता है कि थोड़ा ही दिया है। अगर तुम किसी निर्धन की लड़की के विवाह पर एक हजार रुपया भी खर्च कर दो वह उम्र भर तुम्हारा यश गाता रहेगा। जब तक कुर्बानी न की जावे दुनिया कायल नहीं होती। नौशेरवां का न्याय क्यों प्रसिद्ध है? नौशेरवां का बाप एक बढ़ई की लड़की

को जबरदस्ती निकाल लाया था और उसकी कोख से नौशेरयां पैदा हुआ था। जब नौशेरवां का पिता मर गया और नौशेरवां गद्दी पर बैठा तो उस बढ़ई ने दरबार में आकर न्याय के लिए अनुरोध किया और कहा कि पहला राजा उसकी पत्नी को जबरदस्ती निकाल लाया था। वह स्त्री उसे दिलाई जावे। नौशेरवां ने अपनी माँ को दरबार में बुलाया और पूछा कि बादशाह उसको उसकी मर्जी से निकालकर लाया था या कि जबरदस्ती ? उसकी माँ ने उत्तर दिया कि वह उसको जबरदस्ती निकाल लाया था। नौशेरवां ने उसी समय आदेश दिया कि वह उसको पकड़कर ले जाए। जब बाहर निकला तो लोगों ने उसको समझाया कि अब तू इस स्त्री को ले जाकर क्या करेगा। तू कैसे उसका खर्च बरदाश्त करेगा। तेरा न्याय हो गया, अब तेरे लिए उचित यही है कि तू उसको वापिस कर दे। तुझे इसके बजाय नकद रुपया मिल जावेगा। उसने वापिस आकर ऐसा ही किया। नौशेरवां ने उसको अपनी माँ के भार के बराबर धन दे दिया। इसीलिए नौशेरवां का न्याय प्रसिद्ध है।

राजा हरीश्चन्द्र की नौकरी शमशान भूमि में लगी थी। उसके पुत्र को जलाने के लिए लाया गया, मगर वह अपने कर्त्तव्य को समझता था। उसने उसे बिना कर लिए जलाने की अनुमति नहीं दी। गुरु गोबिन्द सिंह के जब दोनों बच्चे दीवार में चुने गये तो उस वक्त उन्होंने कहा था कि यदि उनके दो बच्चे चुने गए तो क्या हुआ, उनके लाखों बच्चे और बन गए हैं।

बुद्धिमान पुरुषों के मन में यह कभी नहीं आया कि यह मेरा है, वह पराया है। संकुचित हृदय लोगों का क्या जीवन है? जिस तरह तू अपना सुख चाहता है उसी तरह दूसरों के सुख को समझ। लोक सेवा की शिक्षा श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में दी है मगर वह लोप हो गई। अनाथ, असे, दुःखी और अपाहिज जीवों की सेवा का किसी को ध्यान नहीं, केवल गऊ और ब्राह्मण का वर्णन आता है। प्राचीन शिक्षा डूब गई इसलिये भारत का पतन हुआ है। पाश्चात्य शिक्षा ने आँखें खोली, काँग्रेस ने शोर मचाना शुरू किया तब पुराने ग्रन्थ खोले गए और अपनी शिक्षा नीति को देखा गया। प्राकृतिक नियमों को जो जाति भुला देती है वह नष्ट हो जाती है। दूसरी जातियाँ उसको दबा लेती है। अधिकारी की सेवा जिस

मुल्क में नहीं होती उसका भला नहीं हो सकता। हिन्दू जाति यथार्थता से बहुत दूर चली गई है इसीलिये तबाह हो रही है। ईश्वर सबको सद् बुद्धि देवें।

दोहे

हर सिमरन निर्मान सुभाओ, सत सेवा चित्त पेख।
आज्ञा प्रभ में विचरिये, सुन जीवन मुक्त का लेख।।
अन्तर विरती सत नाम विरोले, त्याग द्वन्द्व विष खानी।
जाप अजपा नित ही जापे, अलख शब्द घट जानी।।
नित नेहकर्म नित प्रापत, सो पारगरामी देवा ।
सकल अन्धकार चित्त का नासयो, जो पाई निर्मल सेवा ।।
निर्भय धाम अगोचर बानी, घट-घट भई परगासा।
चित्त में नित आनन्द प्रापत, कोई खोज पावे गुर दासा ।।
प्रेम मगन होये सुरती नित खेले, अन्तर तत्व पछानी।
"मंगत" दुबधा दुर्मत नासी, घर पायो शब्द निर्वानी।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! सादगी, सेवा, सत्संग, सत सिमरण साधन आपने बतलाये हैं। सेवा कहाँ तक जायज़ है? आजकल तो पता ही नहीं लगता किसकी सेवा की जाए, किसकी न की जाए ?

गुरुदेव : प्रेमी ! यह सब साधन जीव के कल्याण के वास्ते हैं। सेवा का मार्ग ही एक ऐसा साधन है जो कि सब प्रकार के विकारों से छुटकारा देने वाला है। इस मोह-माया के घोर अन्धकार से निकलने के लिए सेवा रूपी दीपक ही एकमात्र सहारा है। सेवा का पहले मतलब समझो। सेवा क्यों की जानी चाहिए? केवल किसी अन्धे मोहताज को दो पैसे दे देने से ही सेवा नहीं हो जाती। सेवा पर विचार दो घड़ी में नहीं हो सकता। जीवं को हर समय तीन प्रकार की वासना या कामना बनी रहती है। शारीरिक भोगों में हर घड़ी गिरफ्तार रहता है। परोपकार द्वारा धनी लोग धन खर्च करके लोभ वृत्ति कम कर सकते हैं। श्रद्धा, प्रेम से निष्काम सेवा करके ही शान्ति मिल सकती है। चाहे किसी निर्धन, अनाथ की करें, चाहे किसी समाज, देश, संसार की सेवा में तन, मन, धन द्वारा समय दें। इस नियम को धारण करने वाला ही विजयी हो सकता है।

अपने परिवार की सेवा स्वार्थ में बन्धा हुआ रात-दिन मजदूरों की तरह लगा रहता है। आखिरकार जब अन्त समय आता है तब पता चलता है कि क्या खोया, क्या पाया ? जो इस सत् सेवा के नियम में नहीं विचरते वे कामनायुक्त होकर हर समय लोभ, मोह, मान, मद, ईर्ष्या आदि अवगुणों में तपायमान रहते हैं। कुदरत की जितनी भी चीजें सूरज, चाँद, धरती, पानी, आग दिखाई दे रही है सब निष्काम भाव से सब जीवों की सेवा में लग रही हैं। एक मनुष्य ही ऐसा है जो रात-दिन अपने स्वार्थ को पूरा करने के वास्ते लगा रहता है। ऐसे नरकीय जीव किसी शुमार में नहीं होते। नाम उनका ही चला आ रहा है जिन्होंने संसार में आकर ईश्वर का भजन किया। संसार और संसारियों की सेवा मन, वचन, कर्म द्वारा, जो भी पास हो, करते रहे। अपने-अपने दिल को टटोलकर देखें कि कहाँ तक किसी दुःखी, अनाथ, बेवा या किसी भूखे पड़ोसी की सेवा की है। अगर किसी संगत समाज में दान देते हो तो खूब बोलकर सुनाते हो। मेरा भी यह लिख लेना। पहले सेवा का स्वरूप समझो फिर सेवा करके देखो, किस कद्र मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। प्रेमी जी, कुछ करने से ही लाभ होगा। खाली पूछते-पूछते उम्र गुज़ार देने से कहाँ तक खुशी मिल सकेगी। शरीर सेवा से पवित्र होता है। धन को अच्छे कामों में लगाने से उसकी सफलता होती है। भजन, स्मरण, ध्यान ईश्वर का करने से मन की शुद्धि होती है। इस तरह करते-करते मनुष्य सत् स्वरूप आत्मा को अनुभव कर लेता है। एक सेवा को धारण न करने से कोई भी दूसरे साधन अच्छी तरह न बन सकेंगे। सेवा ही एक ऐसा साधन है जिसके लिए तन, मन, धन अर्पण करना पड़ता है। मन, वचन, कर्म से प्रभु परायणता में दृढ़ होने से ही सेवा धर्म पूरी तरह बन सकता है। जिस कद्र इस मार्ग में चला जा सके, पूरी लगन से तनमय होकर चलना चाहिए।

वास्तविक धर्म - कठिन मार्ग

वाणी

सत धर्म का सुनो निधान, मानव जीवन को देवे कल्यान ।
धर्म सरूप का निश्चय जोई, सकली बिपता जीव की खोई।
धर्म मूल धर्म आधार, धर्म ही बन्ध छुड़ावन हार।
धर्म का रूप चिन्ह आकार कोई नाहीं, समूह सत करम सो धर्म लखाई।
अत सत कर्म में धरी परीती, साचे धर्म की पाई नीती।
मज़हब पन्थ के नहीं धरम आधार, धरम सहत चले चक्कर संसार।
प्रभ की निर्मल रीति जोई, धरम सरूप कहलाए सोई।
शान्त मारग जो जतन लखाई, धरम सरूप जानो गुनी राई।
जिस जतन से मन निर्मल होई, सो साधन नर धरम कहलोई।
जिस वस्तु से मन तृप्ताए, निरना धरम का सो वस्त कहलाए।
पाप करम जिस भांत से नासे, कल्यान सरूप सो धरम बिलासे।
जीव की भरमन अविद्या जाए, साधन सार धरम जब पाए।
अनेक सरूप धरम ना धारी, कल्यान का मारग एक लखारी।
पूरव पच्छम का जीव जो होई, कल्यान धरम सब एक लखोई।
जिस जुगति से जीव कामना जाए, मारग धरम सो सत कहलाए।
जिस करनी से जाए गुमाना, सत सरूप सो धरम पहचाना।
जिस साधन से काल परहरे, सो साधन रूप धरम उच्चरे।
जो मुशक्कत करे बन्ध खुलासी, मारग धरम सो सत परगासी।
हंग बुद्ध विकार को छेदे, मारग धरम का तब जन बेधे
। एक परमेश्वर पर आयो विश्वासा, सो जन मारग धरम निवासा ।
कल्यान का उद्धम जब चित्त धारी, मारग धर्म तब लेख विचारी।
अपने बन्धन का जब करे उपाये, मारग धरम शान्त तब पाये।
भय भरम जब मन निवारी, सत धरम तब कथा विचारी।
धरम का रुप ना जीव कोए, ना कोई मज़हब और पन्थ।
'मंगत' यतन जो मुक्त का, सो धरम कर वाचें ग्रन्थ।।

प्रवचन

जीव जब से शरीर रूपी संसार को धारण करके आया है तब से ही सुख की तलाश में है। मनुष्य, पशु, जंगम, स्थावर, चराचर भूत सब शान्ति के वास्ते दौड़ रहे हैं। मनुष्य को संसार में आने की यह श्रेष्ठता अधिक मिली है कि इसकी बुद्धि जागृत है और ज्यादा सोच-विचार और छानबीन वाली है। जिस जीव की ज्यादा चतुर बुद्धि है वह ऐसे विचार और कर्तव्य करता है जो उसे बन्धन-दर-बन्धन में फँसाते जाते हैं। यह चोला मिला था छूटने के वास्ते, मगर यह संसार को देखकर ज्यादा मोहित होता जा रहा है। खाने, पीने, सोने, जागने, देखने, सुनने की चेष्टा हर एक जीव में बचपन से ही शुरू हो जाती है। जिस-जिस वातावरण में यह जीव पलता है वैसा ही चलन यह इखत्यार कर लेता है। व्यापारियों के घर में व्यापारियों वाला वातावरण होगा और इस घर में वैसा ही स्वभाव बनेगा। जिस घर में जैसा जीवन होगा वैसी ही शिक्षा बच्चों को मिलेगी। दूसरे लफजों में माँ-बाप के जीवन का असर बच्चों पर भी पड़ता है। जैसे-जैसे वे कर्त्तव्य करते हैं वैसे ही उनकी सन्तान भी कर्त्तव्य करती है और फिर जैसी-जैसी संगत होगी वैसा ही उसका रहन-सहन होगा। चोरों की संगत से चोरी की आदत पड़ेगी, जुआ खेलने वालों की संगत से जुए की आदत पड़ेगी, इत्यादि। जैसे पिता, पितामह, भाई-बन्धुओं को देखा वैसा उनके सम्पर्क में आने वाले जीव भी करने लग जाते हैं। कोई जीव विचार नहीं करता कि यह जीव आया किधर से है और इसने जाना किधर है। कोई निर्मल बुद्धि वाला ही होगा जो इस पर विचार करता है। कबीर, नानक, बुद्ध, राम, कृष्ण जैसे अवतारी जीव जब संसार में आते हैं तब उनके अमली जीवन को देखकर पता चलता है कि संसारी जीवन से परे भी कोई जीवन है।

लाल दास गोबिन्द भज, आलस मनो त्याग।
रच्छ पराया कारज अपना, वरत लियो दिन चार।।

यह शरीर खाने, पीने, विषय-विकार के वास्ते नहीं मिला। चार दिन जिन्दगी अच्छे कर्तव्यों के वास्ते मिली है ताकि उन्हें धारण करके कल्याण कर ले। ईश्वर की याद, सेवा, सत्संग, परोपकार में इस खलड़े (शरीर) को लगाने से ही मन ठण्डा होता है, वरना जैसे पशु आए वैसे इन्सान भी आया। पैदा होने

से मरने तक सोच नहीं आती कि संसार में आने की सार क्या है? जिन्होंन इस सार को समझने की कोशिश की उन्हें कहते हैं यह पागल है, भक्त बन गया है। अपने साथ मिलाकर उसे अपने जैसा कर लेते हैं। वह जीव बड़ा भाग्यशाली है जो सही सोच करके संसार से मुँह मोड़ लेता है। मन बुद्धि को निर्मल करने का यत्न शुरु कर देता है। यहाँ गृहस्थी, विरक्ति का कोई सवाल नहीं: भले ही जीव गृहस्थी हो या विरक्ति, वह जब पवित्र कर्म करता हुआ प्रभु के सिमरण में लग जाता है वह कल्याण को प्राप्त कर लेता है। आम ससारी जीव तो यह ही विचार लिए हुए दौडे चले जा रहे हैं कि अभी खाने-पीने का वक्त है, जब बूढ़े होंगे तब भजन कर लेंगे। लेकिन जब बुढ़ापा आता है तृष्णा बढ़ जाती है। इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। शरीर कमजोर हो जाता है और काँपने लगता है। उस समय कुछ नहीं बनता।

प्रेमियो ! धर्म का मार्ग बड़ा गहन है। इसे समझने की जरूरत है। हिन्दुओं ने तो यह धर्म माना हुआ है कि हमारे बेटे-पोते हमारे बाद हमारा कल्याण या गति कर देंगे। अचारजों से पिण्ड भरवाकर, ब्राह्मणों को खीर आदि खिलाकर, दक्षिणा देकर खुलासी करा देंगे। इनको और कोई कर्म करने की जरूरत नहीं। ऐसे अन्धविश्वासी जीव झूठे भरोसे और अन्धकार में रहने वाले हैं। अगर जीवन-काल में उसने अपना कल्याण नहीं किया तो फिर पश्चाताप करना पड़ता है, क्योंकि कोई दूसरा उसका कल्याण नहीं करा सकता। ऐसे जीव कदापि सही कर्त्तव्य धारण नहीं कर सकते, बल्कि सारी उम्र धन-दौलत इकट्ठा करने में लगे रहते हैं। वे विवाह करने और मकान बनाने को ही बड़ा कर्त्तव्य समझते हैं। कमाई करके उसे दीन-दुःखी, अनाथ जीवों की सेवा में लगाने वाला ही बुद्धिमान जीव है।

दूसरे देशवासी भले ही ईश्वर वाले मसले को नहीं जानते मगर उनका व्यवहार बड़ा शुद्ध होता है। जैसी चीज बतलाते हैं वैसी ही देते हैं। ऐसा नहीं कि दिखाया कुछ और भेजा कुछ और। आज कोई शुद्ध वस्तु मिल ही नहीं रही। खोटी चीज को खरी बताकर बेचना, यह कहाँ का धर्म है? देश सेवा का बड़ा नारा लगाते हो मगर इन विकारों को दूर करने का यत्न नहीं करते हो। छल-कपट आपस में कभी प्रेम भाव पैदा नहीं होने देता। स्वार्थपरता बढ़ रही है, जो भय एवं अशान्ति का कारण बनी हुई है। धर्म तो यह है कि जीवन बड़ा पवित्र हो जावे, व्यवहार पवित्र हो जाये। दीन दुःखी जीवों की सेवा की धारणा धारण कर ली जावे। आपस में प्रेममयी जीवन बन जावे। हर एक जीव को ईश्वर रूप या अपनी आत्मा ही देखा जाये। ऐसा न होने के कारण

आये दिन वैर-भाव बढ़ता जा रहा है। यह सब खुदगर्जी के कारण है। यह स्वार्थपरता क्या रंग लाती है, यह आने वाले समय में पता लगेगा। यदि तुम्हारा आपस में सलूक (परस्परिक प्रेम) न हुआ तो फूट को बढ़ावा मिलेगा और दूसरे लोग लाभ उठायेंगे। इसलिये सही धर्म के रूप को समझो और उसे धारण करो।

सब कुछ कूडी कूड़ है, साचा धरम इक नाम।
'मंगत' सिमरे जो गुनी, अन्त लेवे विसराम ।।

धर्म की धारणा से ही प्रकृति के विकारों से मुक्ति प्राप्त होती है। ऐसी धारणा ही धर्म का स्वरूप है। पवित्र खाना, मीठा बोलना, सादा पहनावा, सच बोलना, निष्काम सेवा, सत्संग, सत् सिमरण दो घड़ी करना, ये शुभ गुण ही धर्म का रूप हैं और नर को नारायण बनाने वाले हैं। ईश्वर सबको सुमति देवे।

वैराग्य वाणी

सत् शरधा को पाए के, मन का तजो गुवार।
नित ही साची प्रीत में, प्रम दाता कियो विचार।।
अन्तरमुख हो गाया, पार पुरख निर्वान।
सिमर सिमर मन निर्मय हुआ, पाई शब्द की तान।।
देह अन्तर तत्त सूझया, निरदेह आतम देव।
तब यह मन निर्मल भया, पाई अचरज सेव ।।
निर्भय सोही शान्ति, निर्भय सोही धाम।
'मंगत' गुरमुख विरले, पाए लियो बिसराम ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! आपके वचन सुनकर विचार करने की आवश्यकता तो रहती नहीं जो बोला जाए, पर हमारे हिन्दुओं के कितने ही धर्म हैं। कोई कुछ कर रहा है, कोई कुछ। समझ में नहीं आता कि किसकी बात को मानकर चलें?

गुरुदेव : जीव दया और आतम पूजा, तिस समान धरम नहीं दूजा। यह सोचकर चलो तो झट फैसला हो जाता है। हर एक जीव मात्र से प्रेम

रखना, किसी का बुरा न सोचना, अपनी आत्मा सबमें जानना और उसकी खोज करना ही सबसे बड़ा सत्य धर्म है। टल्ली (घण्टी) बजाना, सूत लपेटना, पानी चढ़ाना धर्म नहीं। ऊँचे-ऊँचे राग गाना यह धर्म नहीं। आत्मा और शरीर के भेद को समझने वाले और समझाने वाले ही मार्ग धर्म को जानते आए हैं। जो सब जीवों में अपनी आत्मा को जानकर हर एक की सेवा करने वाला है, किसी को मन, वचन और कर्म से दुःख देकर राजी नहीं होता, वह ही धर्म के स्वरूप को जानता है। तुमने कभी ऐसी खोज की है? जब कोशिश करोगे धर्म का रास्ता अपने आप मिल जाएगा।

प्रेमी : महाराज जी ! वर्ण-आश्रम धर्म के बारे में आपका क्या विचार है?

गुरुदेव : प्रेमी ! संसारी लिहाज से किसी हद तक यह सब ठीक भी है। अपना फर्ज हर वर्ण का इन्सान अगर ठीक अदा करे तो समाज की व्यवस्था बहुत ठीक तरह चल सकती है। अगर वैसे ही नाम लेवा वर्ण-आश्रम बने हुए हैं तो सब बेकार हैं और अन्धकारपरस्ती और फरेब है।

प्रेमी : महाराज जी। बैतरणी के बारे में आपका क्या ख्याल है?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! महाभारत में युधिष्ठर के बनवास के दौरान यक्ष ने इस तरह का सवाल युधिष्ठर से किया था। उन्होंने कहा कि बैतरणी यह तृष्णा ही है। बैतरणी से अबूर पाने का मतलब तृष्णा से अबूर पाना है।

प्रेमी : महाराज जी! अब हम कहाँ गुरु ढूँढने जायेंगे। आप ही कृपा करके रास्ते पर डाल जायें तो बहुत दयालुता होगी?

गुरुदेव : प्रेमी ! फिर कभी इधर से ईश्वर आज्ञा से गुजरना हुआ तो विचार कर लेना। तुमने शायद इनको समझ लिया हो, अभी तुम्हें भी तो देखना है। झटपट की बात नहीं **"कन्ना मन्ना कुर, तू चेला मैं गुर"** सत् का सौदा करना है तो तुम भी गुरु की परख कर लो और यह भी अच्छी तरह बर्तन देखकर अमृत रूपी दूध डालेंगे। अब तो प्रोग्राम बन चुका है। इधर से कल जाने वाले हैं। जिनको जिस चीज की जरूरत होती है दूर-दूर पहुँचकर ले आते हैं।

धर्म मार्ग में स्त्री पुरुष का सहयोग

वाणी

प्रभ अपने की चरनी लाग, साचे रूप संग कर अनुराग।
प्रभ की भगत निष्कामता देवे, निर्मान भाव गत अन्तर सेवे।
सब विषयों से पाये उदासी, नेहचल चित्त जप नाम अवनाशी।
सत पुरुषों ने कथा बखानी, एक नाम सरव गुण खानी।
दिवस रैन में करो कमाई, अर्थ जीवन का लयो नर पाई।
यह करनी सब बन्धन तोड़े, परम गति सत धाम को फोड़े।
सत करनी नित मन में धारो, सत करनी कीजे निरतारो।
साचे साहिब की बन्दना कीजो, सत परतीत अभय पद लीजो।
जो जो नाम साहिब का गाये, बन्ध खुलासी मुक्त चित पाये।
मिल संगत हरि कीरत गाओ, साहिब वडियाई पल पल ध्याओ।
दृढ़ नियम यह अन्तर धारो, प्रभात सन्ध्या हरि चरन चितारो।
शुद्ध ब्योहार की नीती पाओ, सत सेवा मन करम कमाओ।
सब जीवों से प्रीति राखो, पर दुःख हरना सत कारज भाखो ।
एक साहिब का रखो भरोसा, सत कर्म जग जीवन तोशा।
पूरन सत्गुरु की शिक्षा मानो, आज्ञाकारी पद पहचानो।
पाप कर्म से बुद्धि फेरो, साची प्रीत हर चरनी केरो।
सकले करम प्रभ भाने छोड़ो, दीन गरीबी रसना चित जोड़ो।
सरब हितकारी जीवन धारो, मुक्त मारग यह सुन आपारो।
करम करे नेहकर्मत सूझे, सत साधन की सार को बूझे।
निर्बन्ध जीवन तब मिले, जब सत कर्म कमाये।
'मंगत' अर्थ त्याग के, प्रभ भावी चित लाये ।।

प्रवचन

सत्संग में स्त्रियों की संख्या अधिक होने के कारण आपने फरमाया - जिनको सत्सग विचार की ज्यादा जरूरत है वो तो घरों में बैठे रहें। स्त्रियों और बच्चे सुनकर क्या हासिल करेंगे? ईश्वर ही सुमति देवे।

जे घर कथा कीरत नहीं, सन्त नहीं महमान।
तै घर जम डेरा किये, जीवित भयो मसान।।

जिस शहर, करबा में, जिस घर में, प्रभु की महिमा का विचार नहीं होता उसे शमशान घाट के बराबर ही जानना चाहिये। स्त्रियों की अपनी मति नहीं होती, जिधर कोई लगा दे उधर ही लग जाती हैं। मर्द विचारवान होने चाहिये। जिस घर में दो-दो धर्म हैं स्त्री का और मर्द का और तो वहाँ कैसे प्रेम बन सकता है। हर वक्त झगड़ा ही बना रहेगा। मर्द कमाते रहें, स्त्रियां गुप्त दान करती फिरें। यह कलजुगी धर्म आजकल नई किस्म का निकला है। अगर देवियाँ ही असली धर्म की सार को समझकर मर्यादा सहित घरों में रहकर प्रभु की याद करें तो कर सकती हैं। बेशक सेवाभाव इनमें ज्यादा होता है, मगर अन्धविश्वास इससे बढ़कर रखती हैं। इसी वास्ते सन्त लूटने वाले आकर लूटकर ले जाते हैं। पीछे लुट-लुटा कर रोती फिरती हैं। कड़ा सोने का ले गया, मुन्दरी भेंट की थी, हार दे दिया था। देकर बाद में घर वालों को कहती हैं गुम हो गया है।

स्त्री का धर्म है कि पहले निष्काम चित्त से पति की सेवा करे और फिर परिवार में जो बड़े छोटे हैं उनका आदर करके सेवा करे, अपने बच्चों की देखभाल करे और फिर थोड़ा बहुत समय निकालकर ईश्वर की याद में लगावे। प्रथम गुरु उनका अपना पति है। अगर वह किसी उल्टे मार्ग में लगा हुआ है तो उसे अपने पवित्र स्वभाव द्वारा सन्मार्ग पर लावे। पति का भी फर्ज है हर वक्त स्त्री की हर बात का ख्याल रखे। इस संसार का चक्कर नियमपूर्वक चलने से शान्ति बनी रहती है। जिस घर में अपना-अपना धर्म है; सास का धर्म कुछ है, बहू का कुछ है, लड़का बिल्कुल ही विमुख है, उस घर में कभी सलूक न हो सकेगा। खाना-पीना भोगना तो पशु भी जानते हैं, परिवार उनका भी बढ़ जाता है।

मानुष जन्म इसलिए प्राप्त हुआ है कि अपने छुटकारे का विचार करे। खाते-पीते पहनते हुए भी बेचैनी बनी रहती है, यह क्यों? अन्दर जिया बेचैन रहता है। लोभ मोह को पूरा करते-करते ही सारा जीवन गुजर जाता है। आखिर शरीर छूटने का समय भी आ जाता है। हमेशा किसी ने इस संसार में स्थिर नहीं रहना। तब इतना क्यों मोह माया का जाल पसारा जा रहा है। यह सब सत् विचार विचारने के बाद ही साघ शरण में जाकर शिक्षा प्राप्त करे, तब जाकर सन्मार्ग में श्रद्धा विश्वास दृढ होता है। बिना विचारे ही जो गुरु धारण कर लेते हैं उनका थोथा धर्म है। थोड़े दिनों के बाद फिर उनको मोह-माया लपेट लेती है। सत्सग में जीने और मरने का निर्णय होता है। इस बन्धन से छुटकारा कैसे मिले। साध की महिमा बडी अपार है, वेद ग्रन्थ सभी गा रहे हैं। कपडे रंगकर डालने से, गले में कण्ठी (माला) लटकाने से साधु नहीं बन जाता। तौलिया सिर पर रख लिया, ऐनक लगा ली, रेशमी कपड़े (वस्त्र) धारण कर लिये। ऐसा करने से महान आत्मा नहीं बन सकता। यह तो शरीर का अंगार है। किसी समय भगवावेष त्याग का बाना समझा जाता था, अब यह लूटने का साधन बन गया है। ज़रा होश से संसार में रहना चाहिये। जाकर मर्दो को कहो सत्संग में आयें और आप भी उनके साथ आवें। यह फकीर आप लोगों से कोई गुप्त दान लेने नहीं आये, कुछ बुद्धि देकर जावेंगे। ईश्वर सत् बुद्धि बखशे।

वैराग्य वाणी

प्रभ का सिमरन सार है, सन्तॉ करी पुकार।
एक घड़ी ना विसरे, सो आनन्द भण्डार ।।
छाया बादल की ज्यों, ऐसे जग का खेल।
दुर्लम नाम कमाइयो, कर साचे गुर संग मेल।।
एह जग भरम गुबार है, केवल मन तुरंग।
सिमरो साचे नाम को, सब मनसा होवे भंग।।
लख चौरासी जन्त में, मानुष देह परवान।
सिमरन साचे नाम का, इसमें मिले निधान।।
पलक पलक औधी गई ज्यों नदी का नीर।
बिन सिमरे हरी नाम के, आठ पहर दिलगीर।।

साचे सुख को खोजते, बीत गये वरख हजार।
मिली ना पलक की शान्ति, जो भोगे भोग अपार ।।
खाली हथ्थर्थी आया, अन्त जाये खाली हाथ।
जो सम्पत सो छाड़नी, रंचक चले ना साथ ।।
जैसे नीर तुरंग का, छिन में रूप वटाये ।
ऐसे जीवन जगत में, जान लियो गुनी राये।।
नदी किनारे तरुवर, कब लग बाँधे धीर।
एक लहर की धार से, जाये विखर शरीर ।।
काठ अगनी में पड़ा, पल पल होए अंगार।
"मंगत" जीवन जगत का, एह विध कियो विचार ।।

वार्तालाप

सत्संग समाप्ति के पश्चात् वहां के प्रेमी साईंदास जी गुरुदेव से कहने लगे, यहाँ भी दूसरे सन्तों ने अपना जाल फैलाया हुआ है।

गुरुदेव : प्रेमी ! तूने पहले ही इनको प्रेरणा की होगी, अब यह तेरा कहना किस तरह मान सकते हैं। तूने तो अच्छी तरह उनकी तह को जान लिया है, अब पीछे हट गया है। सब कुछ दे दिलवाकर अब होश आई है। प्रेमी, बड़ी होश से चलना चाहिये। बड़े विचार और देखभाल के बाद फिर किसी के आगे सिर झुकना चाहिये।

प्रेमी : महाराज जी ! शरीर में विकार भरे पड़े हैं, किसी भी समय एक हालत में नहीं रहता। इसका कारण क्या है?

गुरुदेव : प्रेमी । शरीर रोग रूप ही है। नौ द्वारों से हर समय गन्दगी झड़ रही है। बचपन में जवानी छुपी हुई है, जवानी में बुढापा, अरोग में रोग और जिन्दगी में मौत छुपी हुई है। जी-जी कर आखिर इस शरीर ने मरना है। चाहे सौ नहीं हजार बरस तक भी शरीर रख लो, फिर मौत माई ने आकर गिरा देना है। इसका उचित ध्यान रखना जरूरी है। इतना परहेज़ रखते हुए भी फिर तकलीफ का आ जाना कर्म रोग है। सबको कर्म का दण्ड भोगना पड़ता है।

प्रेमी : महाराज जी, मनुष्य जीवन का ध्येय क्या है और उसे प्राप्त करने का साधन क्या है?

गुरुदेव : प्रेमी। मनुष्य जीवन का ध्येय निर्भय शान्ति है अर्थात ऐसी खुशी जिसमें परिवर्तन का डर न हो। यह तभी प्राप्त हो सकता है जब शरीर की खोज करके उसके अन्दर जो जीवन शक्ति है, उसे मालूम किया जावे। उसके मालूम हो जाने पर क्यों का जवाब खुद-ब-खुद मिल जायेगा। उसे पता लग जावेगा कि वह कहाँ से आया है और कहाँ उसने जाना है, इत्यादि। प्रेमी, यह जीव अज्ञान की वजह से वास्तविक शान्ति की तलाश अपने अन्दर करने की बजाय संसारी पदार्थों में कर रहा है। क्योंकि संसार की सब चीजें नश्वर हैं इसलिए उनसे मिलने वाले सुख भी नश्वर होने की वजह से दुःख और अशान्ति का कारण बन जाते हैं। जो जीव सुख चाहता है उसे चाहिये कि वह अपना सुख दूसरों पर न्यौछावर कर दे। इससे उसे सुख मिल जावेगा।

प्रेमी : महाराज जी, क्या शराब पीकर समाधि हासिल हो सकती है?

गुरुदेव : नहीं ! जब जागृत अवस्था में मन, वाणी से रहित हो जाता है और उसके संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं उस हालत को समाधि कहते हैं। शराब पीकर बेहोशी आ जाती है, समाधि नहीं।

प्रेमी : महाराज जी ! जनता का सुधार कैसे हो सकता है?

गुरुदेव : प्रेमी जी! पहले अपना सुधार करो, जनता का सुधार अपने आप हो जायेगा। तुम्हारा सदाचार दूसरों पर खुद-ब-खुद असर डालेगा।

प्रेमी : महाराज जी, क्या गुरु के शरीर की पूजा करने से उन्नति हो सकती है या नहीं?

गुरुदेव : प्रेमी, गुरु के शरीर की पूजा से कोई उन्नति नहीं हो सकती। गुरु के उपदेश पर अमल करने और उनके वचनों को मानने से ही उन्नति हो सकती है।

प्रेमी : महाराज जी, निष्काम कर्म किसे कहते हैं?

गुरुदेव : प्रेमी, स्वार्थ करके जो काम किया जाता है वह बन्धन देता है और कर्तव्य समझकर किया हुआ काम निष्काम कहलाता है और आजादी देता है।

ईश्वर आज्ञा ही शान्ति दाता

वाणी

पर उपकारी नित जीवन पाओ, परम गति की तब सार लखाओ।
स्वारथ बुद्धि अगन त्याग, पर उपकार में उठके जाग।
झूट देही के सुख जो मीता, काल सरूप यह ही अनीता।
देह के सुख से नहीं छूटन पाये, आतम सुख की नहीं रसना आये।
देह के सुख से तब पावे शान्त, पर उपकार जब धारे सिद्धान्त ।
देह के सुख से जब मन उकताये, आतम सुख की रसना तब पाये।
देह मिथ्या सुख कहाँ नर होई, अति गुबार अन्ध जीव परोई।
झूट विकार से नहीं छूटन पाये, सुख की इच्छा में बहु रूप वटाये।
देह सुख मिथ्या न इस्थिर रहाई, भुगता जीव परम दुःख पाई।
जो सुख देखे सो दुःख सरूप, भरम का बान्धा सहवे जम कूप।
गुरमुख बुद्धि जब आई विचार, पर सुख चित्त सूझी कार।
झूट सुख भरम से मुक्त समाई, पर सुख हेत कीरत चित्त आई।
ज्यों ज्यों और का दुःख निवारी, अपने मन की मिटे गुबारी।
पर सुख देके मन शान्त समाई, साची कीरत प्रभ की तब पाई।
परमानन्द सुख अनुभव होई, अपने घट में भयो प्रगटोई।
पर उपकार नित मारग साधी, जन्म जन्म की मिटे सब व्याधी।
देह के सुख से जब उपरस होई, शब्द भेद तब कथा परोई।
सकल पाप की स्वास्थ जड़ नासी, पर उपकार तत्त ज्ञान परगासी।
अति अत वेग मन का बिनसाई, शुद्ध विचार की प्रीत लखाई।
ज्यों ज्यों सोधे सत करम की रीता, सत परतीत मन होए पुनीता।
इन्द्री भोग सुख बिख सम जानी, नाम की रसना जब करी पहचानी।
साचा नाम जब पाया आधार, अबनाशी सुख पाया निरंकार।
निर्मल चेता तिस चरन पिरोई, दुस्तर मन पर तब जीत लखोई।
अलख शब्द घर परगट पाई, तब यह मनुआँ गयो लीन समाई।
सत सरूप को पा ये के, मन चंचल भयो अचिन्त।
'मंगत' मिटी सब कल्पना, ले शब्द ज्ञान अनन्त ।।

(ग्रन्थ श्री समता प्रकाश)

प्रवचन

चार किताबां अशों आइयाँ, पंजवाँ आया डंडा

(दैवी विपत्ति)

मनुष्य जब धर्म-मर्यादा को भूल जाते हैं तब आसमानी कहर गिरा करता है। यह लड़ाई-झगड़ा, लूट-खसोट का दौर-दौरा तमोगुण के बढ़ जाने पर ऐसा हुआ करता है। न कोई खाने की तमीज रहती है, न कोई पीने की। न बैठने की, न उठने-सोने-जागने की। मनुष्य-पंछी सब एक समान हो गये है। पशुओं में फिर भी कोई मर्यादा है, मनुष्य ने तो हद कर दी है। मनुष्य का मनुष्य के साथ प्रेम भाव न होना, एक दूसरे को वैर भाव से देखना, सभी राम-कृष्ण का ज्ञान भूल गये हैं। खाली नाम लेवा, धूप-दीप करना ही रह गया है। वह गीता का दर्शन चींटी से लेकर ब्रह्मा तक, तिनके से लेकर पहाड़ की चोटी तक, हर जगह आत्मा का विचार करना, सगुण में निर्गुण को देखना, निर्गुण में सगुण का विचार करना, यह जो भक्ति है इस क्रिया को भूलकर आज किस तरफ लगे हुए हैं। मिट्टी, पत्थर को गले लगाना और जीवों के बधिक बनना, यह धर्म नहीं कहता। जिसको आज भगवान कहकर पुकार रहे है उस सतपुरुष ने स्वपज को सती द्रोपदी के हाथों द्वारा पदार्थ पकाकर तृप्त करवाया तब जाकर यज्ञ युधिष्ठर का सम्पूर्ण हुआ और भगवान राम ने शबरी के चरण तालाब में डलवाकर जल को शुद्ध करवाया। आज उनके पुजारी ही इन्सानों को धक्के मार रहे हैं। इनको गले न लगाने का नतीजा आज सामने देख लो। अखण्ड भारत के टुकड़े हो रहे हैं। ज्यों-ज्यों घृणा की भावनाएँ बढ़ती जाएंगी त्यों-त्यों ऐसा ही हाल होगा। अभी समय है, इन्सानों से प्रेम करो। ऐसा हाजमा पैदा करो कि सब हज्म कर जाओ। अपने में शामिल कर लो, न कि खुद ही दूसरों का रंग पकड़ लो, ज़रा विरोधी हवा चली कि सिर नीचे कर दिया। अब इस अशान्ति के समय में सिवाय धीरज और सत् विश्वास के मन को ठहराने वाली कोई चीज नहीं। इन्होंने तो समझाना ही है कि प्रेम करो, सेवा, भक्ति धारण करो। सत्संग में एकत्र होकर एकता पैदा करो।

जी ओ पेटा जी, तू ही पुत्र तूं ही धी।

स्वार्थ को छोड़ो, इस स्वार्थ ने सब मलियामेट कर दिया है। अपना भी और देश का भी। आपस की फूट आज से नहीं सदियों से चली आ रही है।

जिसकी लाठी उसकी भैंस। जिसके हाथ में लाठी हुई उसी ने चार गाव सम्भाल कर रियासत बना ली, बाकी लोग खड्डे में जायें। पाण्डव, कौरवों की फूट ने हिन्दुस्तान को सच्चाई, सफाई और बहादुरी से खाली कर दिया। राजपूतों की फूट दूसरी कौमों को बाहर से लाई। अपना हलवा माण्डा पूरा रखने की खातिर दूसरों के हाथ मजबूत कर दिये। देश के धर्म व सभ्यता को बदल करके रख दिया। देश का सौभाग्य तपस्वियों के तप के प्रताप से, देश व धर्म के रक्षक राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, बन्दा बहादुर और कबीर, नानक, दादू जैसे कई सत्पुरुषों ने हर तरह के आत्मिक बल से, शारीरिक बल से बचाने की कोशिश की, जिन्दगी में इस हिन्दू कौम ने ठीक तरह किसी का साथ न दिया। मरने के बाद मन्दिर में मूर्ति थापकर पूजा करना ही धर्म बना लेना बड़ा कर्त्तव्य समझते हैं। दो फूल चढ़ा देने, पानी देने, गाय को पेडा दे देने से, तीर्थ पर जाकर साल के बाद गोता लगाकर पिछले पाप बख्श आया। आगे आकर फिर नये सिरे से वही कूड़, कपट, कुसत् बोलना शुरू कर दिया। आपस में मिलकर बैठना नहीं आया। मां का धर्म कुछ है, बाप का कुछ। लड़का पिता से विमुख है। ऐसे हालात में प्रेम भाव कैसे बन सकता है?

उल्टी प्रीत स्वान की, दौहां गल्लां थी दुख।
खीजे काटे टांगरी, रीझे चाटे मुख।।

धन की प्रीत कुत्ते के समान है। कुत्ता खुश हो तो मुँह चाटेगा। नाराज हो तो टॉग काटेगा। इसी तरह जब दौलत आती है तो अन्धा कर देती है। अभिमान में इन्सान चूर हो जाता है। जब जाती है तो कलेजा फाड़कर रख देती है गोली की तरह। गोली दाखिल होते समय छोटा सुराख करती है, निकलते समय फाड़कर निकलती है। इस दौलत को कमाने के पीछे अर्थात् सोना इकट्ठा करने के वास्ते धर्म ईमान सब कुछ किनारे रख देते हैं। निसन्देह प्रेमियो, माया बिना संसार का कारज नहीं चल सकता लेकिन धन को इकट्ठा करके उसको खर्च करने के लिए भी बड़ी अकल की जरूरत है। इस धन के मालिक चोर, आग, परिवार, सरकार अर्थात् राजा हैं। अगर तुम इसको परमार्थ में, अच्छे कामों में लगाओगे, देश की जागृति के वास्ते खर्च करोगे तो

उत्तम अन्यथा इसने जरूर किसी ना किसी तरीके से निकल ही जाना है। पैसे का कमाना और उचित खर्च करना, समाज की खातिर, देश की खातिर, धर्म की खातिर अच्छा होता है। खर्च करने वालों की बुद्धि हमेशा निर्मल बनी रहती है। इसी तरह हर एक का स्वभाव बन जाए तो क्यों न शान्ति बनी रहेगी।

दिल दा महरम कोई ना मिलया, जो मिलया सो गर्जी।

किसे समझाया जाए। जब तक स्वार्थ अन्तरविखे खडी है तब तक धर्म और देश की सेवा नहीं हो सकती। देश की सेवा फकीर, फक्कड़ ही कर सकते हैं, और करते आये हैं।

घर फूंका जिन आपना, लिया चौहाथा हाथ। अब फेंकेंगे तिस का, जो चले हमारे साथ ।।

यह सन्त धन जोड़ने का उपदेश नहीं देते, अपितु तन, मन, धन को निष्काम भाव से परोपकार में लगाने का उपदेश देते हैं। निष्काम भाव से न लगाओगे तब तक सुख, शान्ति बहुत ही दूर हैं। जिनके सामने तुम इस वक्त बैठे हुए हो इनका सबक ऐसा नहीं कि मक्खी गुड़ की ढेली उठाकर ले गई है और आगे से कह दिया जाये सत वचन। सोचो, समझो और तह तक जाओ तब साधु के वचन मानो फिर उन पर अमल द्वारा कल्याण हो सकता है। इस समय ईश्वर की आज्ञा में चित्त लगाते हुए समय व्यतीत करो। गांधी, नेहरु को गालियां देने से कुछ न बनेगा। वे तो देश की खातिर इस समय तख्ते पर बैठे हैं। तख्त तो जब मिलेगा तब मिलेगा। ईश्वर सबको निर्मल बुद्धि बखो। सादगी को धारण करो, नुमायशी जीवन को छोड़ो, घड़ी दो घड़ी

ईश्वर को याद करो। सचेत होकर चलो। ईश्वर सब पर कृपा करें।

वैराग्य वाणी

बड़े-बड़े भूमी के मालिक, और जिनके बड़ परिवार।
चले निहथावें जगत से, खाली हाथ पसार।।
रोता आया जगत में, अन्धमत जीव अनजान।
अन्त को रोता जात है, ना कोई पूछ पछान ।।
पर हक को नित खावना, जोर जुलम कमाये।

राजे राणे जगत के, बान्धे जमपुर जाये।।
झूठ देही के भोग में, क्यों गुनियाँ ललचाये।
न थिरता इस भोग की, न देह थिरी रहाये।।
देह रूपी बियाबान है, करम का तिसमें झाड़।
फल की आसा राख के, मोहया जीव गँवार।।
जतन करें बहु भान्त के, तो भी शान्त न होये।
जो घालें भूमि कोट गढ, विजय की मनी परोये।।
कूड़े इस संग्राम में, सबने पाई घात।
काल दगा दे मारसी, कोई न छूटन पात।।
जब लग सच परतीत नहीं, मन नहीं परसे ठौर।
घालन सभी दुःख सार हैं, फिरें चौरासी घोर।।
चार दिनों दा जीवना, अन्त मिले विच छार।
लाख करोड़ी सम्पत तजे, और राज दरबार ।।
सुपना जैसे रात का, ऐसे जग दा खेल।
'मंगत' घाले नाम जो, पावे परम सुख मेल ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! इम परमार्थ के रास्ते पर चला नहीं जाता, इसका क्या कारण है ?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! विश्वास की कमी है और फिर यह नाम रूपात्मक संसार में हजारों अजगर खड़े हैं, वह तुम्हें इस रास्ते पर चलने नहीं देते। अगर प्रेम प्राप्त करने के लिए चलना हो तो चौकस हो जाओ। एक पल की भी देरी न करो।

प्रेमी : महाराज जी ! मन बड़ा विकराल है, इससे किस प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है?

गुरुदेव : प्रेमी । मन ही इसका मित्र है और मन ही शत्रु है। चाहे इसको विषयों की तरफ लगा दो, चाहे करतार की तरफ। यह एक वक्त में एक ही काम करेगा। दोनों हालतों में मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि यह ही रहती हैं, सिर्फ इनका स्वभाव बदल जाता है। स्वभाव बदलने के वास्ते वैराग्य और अभ्यास है। और कोई साधन ऐसा नहीं है जिसके द्वारा ठिकाने पर पहुँच सकें।

प्रेभी : महाराज जी। सत्स्वरूप चिन्तन का क्या स्वरूप है?

गुरुदेव : प्रेमी ! सत्स्वरूप का कोई स्वरूप नहीं है। जितने भी नाम, रूप ससार में हैं सबको गायब करने से सत्स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है। तुम्हारी याददाश्त में से जब तक ससार के नाम, रूप, गुण का अभाव नहीं हो जाता तब तक सत्स्वरूप का चिन्तन कर ही नहीं सकते।

प्रेमी : महाराज जी। प्रकृति और परमेश्वर में क्या भेद है?

गुरुदेव : प्रेमी। पहले परमेश्वर को जानो तो पता लगेगा कि प्रकृति क्या चीज है? अगर ऐसा न करोगे तो भ्रम में पड़े रहोगे लेकिन अगर ईश्वर को जान लिया तो सब शकाएँ मिट जाएँगी। एक में तीन और तीन में एक का भेद खुल जाएगा। वृक्ष के पत्ते, डालियां गिनने से वृक्ष की असलियत का पता नहीं लग सकता। वृक्ष में जो शक्ति काम कर रही है उसकी तहकीकात करने से मालूम होगा कि बीज में वृक्ष और वृक्ष में बीज है। इसी तरह जब ईश्वर की तहकीकात करोगे तो पता लग जावेगा कि ईश्वर में प्रकृति और प्रकृति में ईश्वर व्याप रहा है।

प्रेमी : महाराज जी ! मॉस खाने से कौन-सी विशेष हानि है?

गुरुदेव : प्रेमी। माँस खाने से बुद्धि जड़ हो जाती है। बुद्धि की चेतनता नष्ट होकर गुस्सा, गरूर और क्रूरता के भाव अन्दर आ जाते हैं।

प्रेमी : महाराज जी। सन्त लोग बड़े दयावान होते हैं। आपका इस बारे में क्या विचार है?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! सन्तों की अपनी एक स्थिति होती है। सन्त किसी पर दयादृष्टि नहीं करते। वे तो हमेशा एक जैसी नेहकर्म अवस्था में रहते हैं। अपने ऊपर दयादृष्टि करने से और अपने नेक विचारों को बलवान बनाने से ही जिज्ञासु दयादृष्टि महसूस करने लगता है।

प्रेमी : महाराज जी ! योग क्या है?

गुरुदेव : प्रेमी ! जीव और ब्रह्म की एकता ही योग है।

सत्कर्मों से सांसारिक सफलता

वाणी

जो कुछ किया जीवन के माहीं, तिसका फल नित जीव लखाई।
पाछे किया जो कुछ मीत, करनेहारा फल लेवे नीत।
अन्ध भरवासे मत कोई रहाये, अपनी करनी नर छुड़ाये।
जो कुछ किया बेसुद्ध मीत, तिसका फल ना पावे चीत।
अपनी करनी का मन नित साखी, तिसका फल निश्चय भोगासी ।
करम चवकर की यह ही रीत, जो करता सो लेवे फल मीत।
ताँ सों समाँ करो विचार, निर्मल करनी लियो हिरदय धार।
पूत धियां ना कोई छुड़ावे, अपनी करनी फल दिखलावे।
जो कुछ कीना जीवत माहीं, तिसका फल निश्चय को पाई ।
भूल ना पड़ियो करो विचार, अपनी करनी दे आधार।
पूत करे तो पूत फल पाई, जैसा बीजा ऐसा खाई ।
तेरी करनी तुमको ओट, पाप करम का त्यागो खोट ।
ना कोई संग ना होए सुहेला, लेखा देवे जीव अकेला।
माया मोह में क्यों गरसाया, नांगा जाये नांगा जग आया ।
कूड़ पसारा अधिक पसारी, जो कुछ कीजे सिर बिपता भारी।
एक साहब की टेक विचार, बन्ध खुलासी होवे गुबार ।
साची करनी कीजो नित नीत, दोहे जहाने सुख की रीत ।
अपना बन्ध आपे काट, साची करनी लीजो खाट ।
पर भरवासी अन्त पछताये, केवल लेखा जब सिर पर आये।
अचरज रचना जादू का खेल, मत भुलाओ सत करनी मेल।
बड़े चतुर नर गये ठगाये, सन्शे में गये जन्म गंवाये।
आजकल का धर भरवास, ना कुछ कीना कारज रास।
विच भुलेखे सब औध गंवाई, काल पछाड़े तब जीव पछताई।
घड़ी घड़ी नर करो शुमार, साची कीरत प्रभ चरन विचार।
समाँ गया जो औध का, सो ही काल गयो खाये।
'मंगत' भरम त्याग के, नित सिमर लीजो प्रभ राये ।।

(ग्रन्थ श्री समता प्रकाश से)

प्रवचन

प्रेमियों। जीव शरीर रूपी संसार में इतना लीन हो गया है कि उसे पता ही नहीं लगता कि इन्द्रियों के भोगों के अलावा और भी कोई सुख है। जरा बाजार में खड़े होकर देखो, बड़ी तेजी से लोग आ-जा रहे हैं। जिस किसी को अगर खड़ा करके पूछा जाये कि क्यों भाई किधर जा रहे हो, सुखी तो हो? तो पहले एक मिनट के वास्ते वह कह देगा कि सब ठीक है, गुजारा हो रहा है, बड़े सुखी हैं, फिर दो मिनट के बाद अपने दुःखों की पोथी खोल देगा-

आवे दिया खोतया कच्चियों ले जावनाँ पकियाँ ले आवनियाँ,
इन्ना नहियों मुकना तूं नहीं छुटना।

यह है संसारी जीवों की हालत। जिस तरह ईंटों के भट्टे पर जो खोते काम कर रहे होते हैं वो कच्ची ईंटें ले जाते हैं और पक्की पीठ पर लादकर ले आते हुये ही नजर आयेंगे। किसी वक्त भी बोझ उनकी पीठ पर से खत्म नहीं होता, ठीक उसी तरह हरेक जीव तृष्णा रूपी बोझ द्वारा हर समय लदा रहता है। कभी भोग पदार्थों को एकत्र करने में लगा है, कमी उन्हें भोगने में। भोगने के बाद फिर उनकी अधिक प्राप्ति के लिये यत्न प्रयत्न करते पाओगे।

यह शारीरिक यात्रा हमेशा के वास्ते नहीं, बल्कि कुछ काल के वास्ते ही है। शरीर अवश्य ही नाश होने वाली वस्तु है और इसके जितने भी सुख-भोग हैं सबके सब ही आखिरकार परम कलेश के देने वाले बन जाते हैं। जीव जब तक असली जीवन के भेद को जान नहीं लेता तब तक परम शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता, अपितु अशान्त चला जाता है।

किघर गया भौर जो उठावे पहाड़ नूँ।
जान्दी वार ना मिलया, महरम यार नूँ।।

वह भौर कहाँ गया जो पहाड़ को उठाये हुये था। जब जान निकल जाती है, पता नहीं लगता कि भौर किधर चला गया। शरीर हर घड़ी, हर लम्हा नाश की तरफ जा रहा है। इसकी प्रीत परम दुःख रूप है। इसके अन्दर बोलने वाली जो शक्ति है वह परम सुख रूप है। उसे ही आत्मा कहते हैं। आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य है। इसका निर्णय करने वाली बुद्धि अगर स्वतन्त्र है, नित्य ही सत् विश्वास, निर्मल विवेक द्वारा सत् की खोज में लग रही है, तो वह तमाम विकारों से रहित होकर निर्विकार अवस्था को प्राप्त कर लेती है। मनुष्य जीवन का परम लाभ यह है कि जिन्दगी में ही शारीरिक विकारों

से मुक्ति प्राप्त कर ली जावे। ईश्वर ही इस समय में सबको सुमति देव। बड़े-बड़े दाने-बीने संसार के चक्कर में ग्रसित हुए हैं। जो भी आता है अपनी अक्लमन्दी का प्रदर्शन करने लग जाता है कि मैं ही इस ससार का पालक, रक्षक आया हूं। यह नहीं सोचता कि मेरे से पहले भी कई संसार में आए और आडम्बर रच रच कर चले गए। संसार का रूप बनता-बिगड़ता ही रहता है। जब तक लोगों के आचार-विचार का ख्याल राजनीतिक लोग नहीं रखेंगे तब तक यह अशान्ति दूर नहीं होगी अर्थात् अशान्ति दर अशान्ति बनी रहेगी। बेशक राजगद्दी ने हर एक के मन को डॉवाडोल कर दिया है परन्तु जो राजनीति धर्म सहित होती है वह ही हर जीव के अन्दर शान्ति बनाए रखती है। बिना धर्म की धारणा के कोई भी नीति कायम नहीं रह सकती। सदैव काल से माया का पुजारी तो हर एक जीव बना हुआ है। जिस मालिक से यह माया की रचना फैल रही है उसे भी याद कर लेना अधिक जरूरी है। जिसके आधार पर यह सारे संसार का चक्कर चल रहा है उस मालिकेकुल की याद, सिमरन, ध्यान करना हर एक के चित्त को ठण्डा करने वाला है। आजकल का नुमाइशी जीवन अर्थात् बाहर से तो बड़े साफ-सुथरे हैं, अन्दर वासनाओं के भण्डार मौजूद हैं यानि जिस तरह बाहर से बडा ही अच्छा मकान सुन्दर से सुन्दर बना हुआ हो जो उसको देखकर जी उसको लेने को उभर आए, जब अन्दर ताला खोलकर देखा तब पता लगा कि बिच्छू, साँप और ज़हरीले जानवर अन्दर भरे हैं, फिर उसमें घुसने का कोई नाम नहीं लेता। इसी तरह लोगों के स्वभाव हैं, जुआ, शराब, मांस और जितने भी विकार हैं सबको करके फिर कह रहे हैं यह नई रोशनी का जमाना है। जब तक आचार-विचार का सुधार नहीं होता तब तक इससे भी अधिक दुःख देखने पड़ेंगे। जब स्वार्थ बढ़ जाता है तब अशान्ति भी साथ-साथ बढ़ती जाती है। तमोगुण के बढ़ जाने से फिर आपस में लोग कट-कट कर मरने लगते हैं। महात्मा लोगों ने समझाना ही है। अगर कोई समझकर ठीक रास्ता धारण कर लेगा तब स्वार्थ परमार्थ दोनों ठीक बन सकते हैं। जब तक किसी का होकर न चला जाएगा तब लग फिर दोनों तरफ से निराशा ही रहेगी। ईश्वर ही इस भयानक काल में सबको सुमति देवें।

वैराग्य वाणी

हर जन निर्मल शान्त विचारी, सत रुप परापत पाया।
नित ही अन्तर्गत में लागा, सार शब्द को ध्याया ।।

सुरत संकोच शब्द में राखी, अपना आप भुलाई।
सर्वज्ञ रूप की पूजा सूझी, नित नाम पदारथ खाई।।
देह से भिन्न कर शब्द पछाना, परम शान्त घर पाई।
करता करम काल भ्रम नासा, चित सुन्न समाध लखाई।।
आवे जावे ना मन दुखदाई, नित अगम के घाट समाये।
त्रैगुण माया खेद विनासे, घट चेतन रूप ध्याये ।।
सकल दोष से निर्मल हुआ, अजर पुरुष घट जाता।
'मंगत' अत अस्वर्ज पछाना, परम पुरख विधाता ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! पुण्य कर्म, पाप कर्म और सत्कर्म की क्या पहचान है?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! जिन कर्मों के करने से अपने अन्दर ठण्डक प्रतीत हो, प्रसन्नता आवे, खुशी हो, दिल में उदारता और उत्साह बढ़े और अचिन्ता बढ़े, वह सब पुण्य जानो। जिन कर्मों के करने से भय, लोभ, मोह और खेद की प्राप्ति हो, वह पाप कर्म ही समझो। केवल मात्र आत्मा ही सत् है। इसलिए जो कर्म उसको जानने के लिए किये जाते हैं, जिनमें और किसी प्रकार का सांसारिक बन्धन नहीं होता, वह महापुरुषों ने सत्कर्म के नाम से पुकारे हैं। प्रेमी : महाराज जी ! कर्म और कर्म फल दोनों ईश्वर आज्ञा में किस प्रकार देखे जाते हैं और क्या युक्ति है?

गुरुदेव : प्रेमी ! मनुष्य कमी अनुभव करने से इच्छा या कामना को अपने अन्दर जन्म देता है। फिर उस कामना को पूरा करने हेतु नाना प्रकार के कर्म करता है। इससे उसके नतीजे द्वन्द्व रूप में प्राप्त होते हैं, हर्षमान व खेदमान होता है। इसलिये, इस दुःख से छुटकारा पाने के लिए महापुरुषों ने फरमाया है कि-

सकल कर्म का कर्ता जानो इक भगवान।
आप अकर्ता हो रहो, यही सार है ज्ञान ।।

अर्थात् तेरी बुद्धि में जो पल-पल विखे फुरना हो रहा है कि मैं कर्मों का कर्ता हूं और जिस करके तू बन्धन में फंसा हुआ है उसको बार-बार उस प्रभु की महानता का ध्यान करते हुए अपने अन्दर से काटना चाहिए और उस प्रभु को निर्मल प्रेम और भक्ति करके सब कर्म का कर्ता-हर्ता मानना चाहिए। तात्पर्य यह कि एक ईश्वर को सब कर्म का कर्ता-हर्ता मानना केवल अज्ञान, अन्धकार से छूटने का उपाय है। वैसे यह त्रैगुणी प्रकृति (माया) सब अपने

आप कर रही है और ईश्वर तो नेहकर्म स्वरूप है। मैं रूपी मूल माया के अन्धकार से छुट्टी पाने के लिए ईश्वर को सब कुछ कर्त्ता-हर्ता जानना एकमात्र उपाय है। कर्मफल द्वन्द्व रूप में प्राप्त होते हैं। इस करके वह जैसे-जैसे जीव के ऊपर आते जायें, उन्हें ईश्वर आज्ञा में समझकर धैर्यपूर्वक सहन करते जाना ही कामना और कल्पना से स्वतन्त्र होना है। इस प्रकार कर्म और कर्म फल द्वन्द्व ईश्वर आज्ञा में देखते-देखते बुद्धि समभाव में स्थित हो जाती है, जो इस जीव की असली चाहना है।

प्रेमी : महाराज जी ! आप दिन-रात जनता की सेवा कर रहे हैं। हजारों तपे हुए जीवों में रोजाना ठण्ड वरता रहे हैं। सारा दिन धर्म उपदेश और सत् शिक्षा देते हैं। इतना परिश्रम करते हैं फिर भी नहीं थकते, न कुछ खाते हैं। दिनभर में सिर्फ एक बार चाय पीते हैं। यह सब कुछ कैसे चलता है?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! यह सब उस मालिक की आज्ञा है। जैसे वह मालिक इस शरीर से सेवा करवा रहा है वैसे ही कर रहे हैं। यह किसी पर एहसान नहीं करते। अपना कर्त्तव्य समझकर आप जीवों की सेवा उसकी आज्ञा अनुसार कर रहे हैं ताकि आप लोगों को कुछ ठण्डक और शान्ति नसीब हो। आगे जो मालिक की इच्छा, लाल जी।

प्रेमी : महाराज जी ! जितनी देर आपके चरणों में बैठे रहते हैं मन शान्त रहता है। मगर जब यहां से चले जाते हैं तो फिर दुनियावी उलझनों में फंसकर तड़पने और जलने लगते हैं। जीव उद्धार का कोई सादा और आसान रास्ता बतलाकर कृपा कीजिए?

गुरुदेव : सुनो प्रेमी जी, अपनी वासनाओं और इच्छाओं को कम करते जाओ, सादगी से जीवन व्यतीत करो, शराब, मांस, मादक पदार्थों से परहेज करो, इखलाक (व्यवहार) को ऊचा करो, सत्संग को अपनाओ, अपनी बुराइयों पर ध्यान रखो, दूसरों के दोष मत देखो, सत् का आसरा लो, दूसरों की सेवा को अपना लक्ष्य बनाओ, परोपकारी जीवन बनाओ, खुदा के बन्दों से मुहब्बत (प्रेम) करो, यही उसकी इबादत (पूजा) है। किसी भी प्राणी को मन, वचन और कर्म से कष्ट न दो और दो घड़ी नाम का सिमरण करो। फिर लाल जी, तुम्हारा कल्याण ही कल्याण है। फिर तुमसे भी खुशबूदार ठण्डक आवेगी जो सबको शान्ति देगी।

माया-मद का त्याग ही प्रभु उपलब्धि

वाणी

नाम की साखी सोही जन गाये, जो करनी अत निर्मल पाये।
मन बिकारी करे विकार, साचा नाम नहीं करे विचार।
झूठ विषयों में उठ उठ धाई, एक पलक नहीं धीरज पाई।
पाप करम करे अत विकराल, नाम रसे नहीं दीन दयाल।
अत चतुराई कपट को धारी, अपनी आप करे खुवारी।
सरब जीयां संग वैर कमावे, स्वारथ में बहुता भरमावे ।
अपने सुख की घाले घाल, और जीवों की उतारे खाल।
ना गुरु सीख हृदय में पाई, कैसे साचा नाम ध्याई।
पर निन्दा अन्तर चित धारी, पर का हान नित करे विचारी।
छल कपट में अत परबीना, मान मद्ध में अत गरसीना।
काम क्रोध अगन अत धारी, जल जल होवे नित अंगारी।
धार घमण्ड साहब विसराई, अपनी देखे अत प्रभताई।
अपने समान देखे ना कोई, धन भूमि बहु माल लखोई।
सम्पत पाये करे गुमाना, कै बिध सिमरे नाम सुजाना।
ना प्रभ से प्रीत ना काल भय राखी, इन्द्री भोग की रसना अत चाखी।
छिन छिन सम्पे भोग विकार, मान करे पाये बहु परिवार।
हाकिम हुकम चलावे नीत, देह की शोभा मांगे चीत।
लज्या गैरत बहुता राखी, अपने तुल ना कोई भाखी।
दुर्भत जाल में अत फँसाया, कैसे सिमरे हरि हर राया।
दुर्मत माया धार के, अत ही बनयो मानी।
"मंगत" कह विध पाइये, सत शब्द निर्वानी।।

जो भी जीव संसार में शरीर को लेकर आया है उसे जरूरी सुखों और दुखी को भोगना पड़ता है। यह नहीं कि पीरो, अवतारों, गुरुओं को दुःख नहीं आते। महान व्यक्तियों को ज्यादा से ज्यादा मुसीबतें आकर घेरती हैं। मगर वे ईश्वर आज्ञा में हर एक समय का विचार करके चित्त में डॉवाडोल नहीं होते। जाहिर में चाहे तकलीफ सबको नजर आती हैं लेकिन अन्तर से असंग रहते हैं। कर्म भोगों को ज्ञानी विचार से काटता है और अज्ञानी रोते-रोते। प्रारब्ध कर्म हर एक को अवश्य भोगने पड़ते हैं। सत्पुरुषों के अन्दर केवल प्रारब्ध कर्म दुःख-सुख देने के वास्ते रह जाते हैं, उस प्रभु की भावी में दखल नहीं देते। आगे का लेखा तो वे खत्म कर ही चुके होते हैं। माया की लपेट से कोई जीव बच नहीं सकता। ससारी सुखों के समय तो फूले रहते हैं, दुःख आने पर हाहाकार करते हैं। जितने भी शरीरधारी हैं, सबको दुःख एक जैसा ही बेचैनी दिया करता है। मगर जिनकी बुद्धि सत् विखे अन्तर में जुड़ चुकी है वे अपनी वृत्ति को इधर लगाकर काफी देर तक प्रकृति के दोषों से बचे रहते हैं।

राम, कृष्ण, ईसा, मूसा, कोई भी प्रकृति के दोषों से बच नहीं सका। त्रैगुणमय कर्म चक्कर में से हर एक को गुजर कर ही पता लगता है। शुभ, अशुभ, संचित कर्म नजारा दिखाये बगैर नहीं रहते, चाहे कोई राजवंश में पैदा होकर भोगे, चाहे भिखारी बनकर। प्रकृति का नियम सबके लिए एक जैसा ही आदि काल से बना हुआ है। जैसी नीति ईश्वर ने रच रखी है उसके अनुकूल अपने आप ही जीव शुभ-अशुभ कर्म करते हुए लाभ-हानि, दुःख-सुख को प्राप्त होते रहते हैं। कोई विरला विवेकी पुरुष ही तपोबल के सहारे इस भवदुस्तर संसार से आराम पाकर अपने निज घर को वापिस होता है। बाकी सब बेहोश बुद्धि वाले यानि मोह-माया के जाल में ग्रसित जीव जन्म-जन्मान्तर तक भटकते रहते हैं। कोई रास्ता उनको शान्ति का दिखाई नहीं देता। इस वास्ते नित्य ही कर्मगति का विचार करना चाहिये।

ईश्वर सबको सुमति देवे ताकि इस अन्धकार के जमाने में कुछ अपना भला विचार कर सकें। यह नया राज जो मिला है, इसके संभालने के लिये भी सही अक्ल की जरूरत है। वरना सब दुनियावी आनन्द में फंसकर अक्ल को बेच देंगे। राजा भी ठीक हो, प्रजा भी हुकम मानने वाली हो तब जाकर संसार में

शान्ति से समय गुजरा करता है। जब सब ही अभिमान के घोड़े पर सवार हो जावेगे तब कैसे एक दूसरे की बेहतरी विचार की जा सकेगी।

"चूल्हे की तेरी तवे की मेरी, या बेईमानी तेरा आसरा ।"

राम राज का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। पहले कोई राम तो बने, तब जाकर वैसा आराम सबको मिल सकेगा। शेर और बकरी एक जगह पानी पी सकते हैं। राजगद्दी के समय यानि जब इन्कलाब या तबदीली होती है, लहू और लोहा एक हो जाया करता है। तब जाकर सिर पर छत्र धारण होता है। जितनी मुसीबत आनी चाहिये थी उतनी नहीं आई। घर बैठे ही गद्दियों के मालिक बन गये। जैसे संसारी भोग पदार्थों को हासिल करने के वास्ते जान की बाजी लगा देते है उसी तरह परम पदार्थ मन की शान्ति के वास्ते भी जीते जी ही मरना पड़ता है। कई राजे-राणे, अमीर-वज़ीर संसार में पैदा होकर खत्म भी हो गये। जिनका नाम-निशान भी नहीं मिलता। मगर जिन्होंने मनुष्य जीवन को पाकर पर-उपकार रूपी मार्ग में अपने आपको लगाया वे ही संसार के गुरु, पीर, अवतार कहलाये। अपनी तरफ से हर एक जीव को सत्य पर चलना चाहिये। बार-बार सत्संग सुनने का मतलब यह ही है कि सत् साधन को अपनाकर मनुष्य अपना जीवन सफल कर सके। ईश्वर सबको सत् बुद्धि देवे।

वैराग्य वाणी

ना लेना ना देना, ना सुख मूल ब्याज ।
झूटी लागी कलपना, देवे कलेजे दाग।।
सुखिया कोई ना देखया, जो आया इस संसार।
जो देखा सो दुखिया, नित दुख का करे विचार।।
क्या धनी क्या दलिद्री, क्या मूप राज राजान।
जो देहवारी आया, सो परसे दुःख की खान।।
छाया सेती प्रीत नर, कब लग देवे साथ।
उलट दिसा गयो चाँदना, भयो वंजोग अनाथ।।
राख अमानत बावरा, ले अपना हक जमाये।
छूटन की तदबीर ना, पावे घनी सजाये ।।
अपना तो कुछ ना थिया, पर मन में लेवे बनाये।
फिर बिगाना हो गया, जब जम कियो न्याये।।

बन्दीखाना जगत यह, बान्धयो हिरस जंजीर।
चारकुण्ट उठ धाया, सूझत ना तदबीर ।।
मरने का भय राख के, करे हिकमत अपार ।
चोह मी काल से ना बचे, जिनकी फौज जरार।।
रोगी सोगी सूरमे, सबको कीजे घात।
जो जन आया जगत में, होए काल का भात।।
वैद धनन्तर मर गया, और लुकमान हकीम।
हाजी गाजी न बचे, खा गया काल गनीम।।
यह संसार सराये, जीव मुसाफिर नीत।
"मंगत" खोज सत शान्ति, औध जात है बीत।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! सत्संग का क्या स्वरूप है?

गुरुदेव : प्रेमी । सत्संग का स्वरूप है कि जहां इकट्ठे होकर असल और नकल हालात का निर्णय होवे, सत् और असत् तथा आत्म और अनात्म का पूरा-पूरा निर्णय होवे, सत्संग ही जानें।

प्रेमी : महाराज जी ! इस परमार्थ के रास्ते पर चला नहीं जाता। इसका क्या कारण है?

गुरुदेव : प्रेमी जी। सिदक (सत् विश्वास) की कमी है और फिर इस नाशवान संसार में हजारों अजगर खड़े हैं। वे तुम्हें इस रास्ते पर चलने नहीं देते। अगर प्रेम प्राप्त करने के लिये चलना हो तो बाहोश (विवेकशील) हो जाओ। एक लमहा (क्षण भर) भी देरी न करो।

प्रेमी : महाराज जी ! इस जीव को रात-दिन सुखों की चाहना रहती है और इस चाहना के जेर असर (वशीभूत) होकर वह नाना प्रकार के कर्म करता है। तदनुसार आवागमन के चक्कर में फंस जाता है। महाराज जी ! अगर यह ठीक है तो इसका क्या इलाज है?

गुरुदेव : प्रेमी ! महापुरुषों ने कहा है कि सुखों की इच्छा ही मनुष्यों की असली बीमारी है तथा सुखों की इच्छा ही तमाम अशान्ति का कारण है। प्रेमी जी, यह बिल्कुल सही है कि मनुष्य इस सुख की इच्छा करके आवागमन के चक्कर में फंसता है। इसके लिये तुम्हें अपने मन को यह कहकर समझाना चाहिये कि हे मन, जो सुख बदलने वाला है वह ही दुःख का रूप है और इन सुखों को प्राप्त करके ही जो तूने अपने मन में निश्चय किये हुए हैं उनसे सन्तोष और शान्ति

प्राप्त नहीं हो सकेगी। मिसाल के तौर पर अगर तू जरा ध्यान से सोचे तो पहले के सुख भोगों से जो तू भोग चुका है, उनके भोग लेने के पश्चात् तेरी क्या अवस्था रही। इससे सबक (शिक्षा) ले सकता है।

प्रेमी : महाराज जी ! निन्दा का क्या स्वरूप है ?

गुरुदेव : प्रेमी ! सोने को चांदी और चादी को सोना कहना ही निन्दा है। सत् का मण्डन और असत् का खण्डन निन्दा नहीं। अदालत खुली है, जहा चोरों को पकड़ा जाता है और शाहों को छोड़ा जाता है, तथा झूठ और सत् का, न्याय और अन्याय का निर्णय किया जाता है, यह निन्दा नहीं है। सब सत्संगों में और सन्तों के दरबारों में सत् और असत् का निर्णय होता ही है। वह निन्दा नहीं है। तात्पर्य यह है कि सत् को झूठ सिद्ध करना तथा झूठ को सत् सिद्ध करना निन्दा है।

प्रेमी : महाराज जी । ईश्वर को पाने का रास्ता एक है या अनेक?

गुरुदेव : प्रेमी । सिद्धों का रास्ता एक है मगर वकीलों का अनेक। सिद्ध जो हैं वे अपनी अनुभवी वाणी बतलाते हैं मगर वकील दूसरों की वाणी सुनाकर वकालत करते हैं।

प्रेमी : महाराज जी ! क्या आप थोड़े से में निष्काम कर्म का स्वरूप बतला सकेंगे?

गुरुदेव : प्रेमी, क्यों नहीं। लो सुनो, जब बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व सुख-दुख में चलायमान नहीं होती, यानि किसी प्रकार के फल में जो कर्मों द्वारा प्राप्त होते है चलायमान न होकर अचल रहती है, तो बुद्धि की इस अवस्था से किया हुआ कर्म निष्काम कर्म कहलाता है। यह संसार बड़ा गहरा गम्भीर सागर है। इसको सिदक और शौक द्वारा ही पार किया जा सकता है।

प्रेमी : महाराज जी ! आप अभी कह रहे थे कि सिदक और शौक से यह ससार सागर पार किया जा सकता है। सो कृपा करके बताएं कि सिदक और शौक किसे कहते हैं?

गुरुदेव : हॉ प्रेमी, जरूर समझो। शौक तो ऐसा हो कि आत्मज्ञान रूपी मैदान अब मारा कि मारा (फतेह किया), अब देर नहीं है कि मैं इस अवस्था पर पहुंचूँ। इस तरह विश्वास भरा शौक हो तथा सिदक हो कि मैं जरूर कामयाब हूँगा। कोई ताकत नहीं कि मेरी कामयाबी रोक सके। भेद थोड़ा ही है। दोनों करीब-करीब एक सी ही बातें हैं।

प्रभु भक्ति ही मन की शान्ति

वाणी

अगन सरूप यह जग का खेला, जल जल पड़े जीव दुखेला।
वारापार न भेद लखाई, माया भरम में खप खप जाई।
बिना जतन नहीं मिले छुटकारी, राजे राने पावें खवारी।
काल सरूप यह जग की रचना, छिन छिन नासे केवल यह सपना।
अपना साखी रूप विचार, मृग तृष्णा मिटे अन्धकार।
सत ठाकुर की प्रीत विचार, सतपुरुषों की ये सिखया सार।
जगत का खेल यह भरम फुलवाड़ी, सिमरो गोबिन्द उतरें भव पारी।
न कोई साक सुहेला नाती, अन्त काल न भयो कोई साथी।
अत परिवार सम्पत धारी, महल कोट औसारे भारी।
सब कुछ छाड़ चले निरासा, मूढ़मनाँ क्यों धरे भरवासा।
अन्तर्मुख होकर विचार, खाली आया जावें खाली सार।
रंचक साथ न जाई मीत, जुगा जुगन्तर यह जग की रीत।
दाने बीने बड़े सयाने, माया चक्कर में भये हैराने।
जीवत में मरने को पाई, वाह वाह खेल यह जग रचाई।
भोगे भोग नहीं तृप्ति पाये, सदा अधीर यह मनुआ समाये।
वस्तु परापत हिरखत पाई, भये वंजोग दुःख पाई अधिकाई।
भाई मित्र बहु संग बनाये, ओढ़क चलया नाँगे पाये।
माया मोह में जन्म गँवाई, बाजी जूए में गयो ठगाई।
ओढ़क देही भूम समाये, मूरख जीया क्यों भरमाये।
सरव जतन संसार में, मन को करें अधीर।
'मंगत' प्रभ की भगत से, मिटे सकल तकसीर।।

प्रवचन

सारे संसार का चक्कर तीन गुणों के आधार पर चल रहा है। जब लोग ज्यादा से ज्यादा सत्यवादी धर्म पर चलने वाले होते हैं तब सत् धर्म का प्रकाश होता है। उस समय सत्युग कहलाता है। उस वक्त कोई भी झूठ बोलने वाला नहीं होता। जो भी पाप-पुण्य जीवों से होते हैं सब स्पष्ट रूप में कह देते हैं। मर्यादा में रहकर तमाम जीव शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। मर्यादा से ज्यादा शारीरिक भोग वासनाओं का त्याग करने में ही परम सुख मानते हैं। मन की शान्ति को हासिल करना ही फर्ज और धर्म समझते हैं। जब रजोगुणी हालत आनी शुरू होती है सत् विचार व विवेक कम होने लगता है। संसारी प्रवृति बढने लगती है। ज्यादा से ज्यादा सोना-चांदी, धन-माल इकट्ठा करने में सुख प्रतीत करने लगते हैं और शारीरिक सुखों को ही प्रधान समझते हैं। रात-दिन धन-सम्पति इकट्ठा करने के उपाय ही सोचते रहते हैं। साथ धर्म परायण भी रहने का प्रयत्न करते हैं। मर्यादा में शारीरिक सुख-भोगों को भोगते हुए दूसरों के दुखों का भी ख्याल रखते हैं। मगर ज्यों-ज्यों शारीरिक भोगों में आसक्त होते जाते हैं त्यों-त्यों तमोगुणी विचार बढ़ते जाते हैं। खाते, पीते पहनते हुए भी अशान्त रहते हैं। मर्यादा छूट जाती है। छल-कपट बढ़ जाता है। आपस में प्रेममाव खत्म हो जाता है। खुदगर्जी बढ़ जाती है। खुदगर्जी ही सब पापों की जड़ है। इस वास्ते इस कठिन संसार में अधिक श्रद्धा और सत् विश्वास जब सत्पुरुषों के वचनों में जिन जीवों में होता है वे ही सत् निदिध्यास द्वारा तमाम विकारों से पवित्र होकर सत् शान्ति स्वरूप को अनुभव कर सकते हैं। वैसे संसारी जीव की हालत उस गधे के समान है जो दिनभर भट्टे की ईंटें लाता और ले जाता रहता है।

आवे दया खोतयाँ कचियाँ ले आबनियाँ पक्कियाँ ले जावनियाँ,
ईटाँ नहियों मुकना ते तूं नहियों छुटना।

उसका स्वभाव ऐसा बन जाता है। गलत स्वभाव के बदलने के वास्ते ही सत्पुरुषों ने कई तरह से जीवों को समझाया है और समझाते रहेंगे। मगर मायावादी ये लोग फकीरों की जिन्दगी में कुछ नहीं सुनते। जब संसार से

जा चुकते हैं उस समय मढ़ी (समाधि) बनाकर इर्द-गिर्द चक्कर लगाने लग जाते हैं। हाथी जीता हो तो हजार का, मरे तो लाख का। महापुरुषों की कमाई जुग जुग तक जीवों को माया के अन्धकार से निकालने के लिए मदद देती रहती है।

इकना नूँ मत रब्ब दी, इकनां मंग लई।
इक दितयां मूल ना लेवन्दे, एह अचरज रचना गई।।

कुछ अपनी बुद्धि भी इस्तेमाल करनी चाहिए। अपनी अकल न हो तो किसी के होकर रहना चाहिए।

बुल्लया रब्ब तेरे तों वख नहीं।
पर देखन वाल अख नहीं।।

वैसे तो हर एक जीव की आँखें खुली हुई हैं मगर विवेक वाली आँख बन्द है जिसको खोलने के वास्ते सत्संग की जरूरत है। इस समय भोगवाद जोरों पर है। आजादी क्या मिली अपनी त्रट्टी चौड़ (बर्बादी) कर ली है। यह नुमायशी जीवन कहां तक तुमको शान्ति दे सकता है। चाहते हैं खाते, पीते, हसते, खेलते मुक्ति मिल जावे। इधर तो जिन्दगी में मरना पड़ता है। इस समय तो गुरु भी ऐसे मिल रहे हैं जो झटपट दर्शन कराने वाले प्रगट हो गए हैं। नुमाइश ही नुमाइश सब कुछ रह गया है। नानक जी ने कहा है :-

ऐसी कल्यों पंज थियों क्योंकर रखां पत।
जे बोलां तां आखदे बड़ बड़ करे बहत ।।
चुप करां तां आखदे ईस घट नाहीं मत।
जे बेह रहां तां आखदे बैठा सत्थर घत ।।
जे कर निवां तां आखदे डरदा करे भगत।
काई गर्ली न सेवनी जित्थे कडा झट ।।
ऐथे ओथे "नानक" करता रखे पत।

इस समय यह हालत बनी हुई है कि ना सुहागन की पहचान है, न विधवा की।

चोर, उचक्का, चौधरी लुण्डी रन्न परधान।

कहते हैं रोशनी का जमाना है। चालाकी का नाम पालिसी बना रखा है। अगर कुछ सुख शान्ति चाहते हो तो प्रभु आज्ञा में बुद्धि को निश्चल करते हुए नित्य ही दो घड़ी सत्-सिमरण में दृढ रहना चाहिए। नुमाइशी जीवन को सादगी में बदलें। जो मन में सोचें वही बाहिर प्रगट करें। बोल-तोल पवित्र हो, सत्य बोलने की नित्य कोशिश करो। जो कमाई करो उसमें से कुछ अंश दीन, दुखिःयों की सेवा में खर्च करो। जिस सत्संग द्वारा मलीन वासनाओं का पता लगे उस सत्संग में समय देवें। सत्पुरुष द्वारा जो शिक्षा मिली हुई है. उसमें थोड़ा समय दें। ये ही भाव तमाम दुःखों और बन्धनों से छुटकारा देने वाले है। ईश्वर तुम सबको सत् अनुराग प्रदान करे। तमाम अशुद्ध वृत्तियों से पवित्रता हासिल करें। प्रभु नित सहायक होवें।

वैराग्य वाणी

माटी का कलबूत यह, अन्त माटी समात।
सरजनहार ना जानया, क्या बने पछतात।।
काया रूप है हॉण्डिया, विषय भोग का भात।
आठ पहर जलती रहे, अगन तृष्णा साथ ।।
जैसे खाल लुहार की, फेंके बिना प्राण।
करनी बिन मानुष जो, विचरे पशु समान ।।
हीरा नाम विसारया काँच के सम्पे ढेर ।
अन्तकाल यह अन्धमति फिरे चौरासी फेर ।।
आसा जीवन की करे, देखे काल सरूप।
अमृत इच्छा मन करे, बीजे विख का कूप।।
चार दिनों दा जीवना उठके मूढ़ विचार।
राज सिंवासन छाड के करें कूनी पाय पसार ।।
नील मनी ढलाइयो कंचन गढ़ औसार।
खाली हत्थी चल गये जिनके घने अम्बार ।।
पोशाक पहने पीताम्बरी अंग सुगन्ध लगाये।
काल शिकारी मारया तब भसवी गयो समाये।।

सिर पर छतर सुहावना, चमके चूनी आपार।
सो सिर खाकू संग मिले उठके दृष्ट निहार।।
पानी का यह बुदबुदा, छिन में बिनसे जात।
"मंगत" बिन हरि सिमरने, सब की कूड़ लखात ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! आपने तो सारा ग्रन्थ ही याद कर रखा है। सन्त शब्द की महिमा का गायन करते हैं, नाम और शब्द। शब्द का कुछ पता नहीं लगता। ग्रन्थों में तो सिर्फ ओ३म् शब्द की महिमा गाई है। राधा स्वामी वाले आते हैं वो गुरु की महिमा का उच्चारण करते हैं। हमारे पल्ले कुछ पड़ नहीं रहा। फिर गुरु ही आखिर में, जब जीव प्राण छोड़ेगा, लेने आवेंगे? महाराज जी, सही रास्ता बताने वाला कोई मिल नहीं रहा।

गुरुदेव : प्रेमी । तुम शब्द का भेद क्या जानो। अभी तो मन्दिर की चार-दीवारी में ही कैद हो। दिल को कुशादा (खुला) करो। सारी उम्र पहली जमायत (कक्षा) में नहीं काट देनी चाहिये। दूसरे मानो में शब्द को नाद कहते हैं। जरा अपने ग्रन्थों को, शास्त्रों को खोलकर देखो। नाद की महिमा किस जगह नहीं आई हुई। सबसे बड़ा गुरमुख योगी गुरु वही है जिसने नाद यानि शब्द की महिमा का वर्णन किया है। यह घण्टा, शंख, खडताल आदि सब बाहर के सांग है। तुम जिन गुरुओं की बात कर रहे हो वे बातों-बातों से ही सत लोक से आगे की खबर दे रहे हैं। शब्द पारखू यानि भेदी कोई विरला ही संसार में हुआ करता है। इस वक्त सब ही गुरु नाम और शब्द का ही उपदेश बाट रहे हैं। गीता क्या कह रही है, कोटां में कोई विरला ही आत्म-साक्षात्कार वाला होता है। नाम की महिमा तो सत्पुरुषों ने आदिकाल से कर रखी है। मन की ममता (मैल) को धोने वाला एक शब्द ही है। जब तक प्राण और नाम एक सूत में ना पिरोये जायें, मन चंचल कब ठहरने वाला है। बड़ा सूक्ष्म विषय है।

शब्द शब्द बहु अन्तर, सार शब्द चित दे।
जो शब्द से साहिब मिले, सो शब्द गही ले।।
शब्द एक है गुरुदेव का, जां का अनन्त विचार।
पण्डित थाके मुनी जनां, वेद ना पावे सार।।

बिन शब्द के सुरता असकार में कहो कहां को जाये।
द्वार ना पकड़ शब्द का, नित नित भटकत रहाये।।
शब्द कहां से उठत है, कहां को जाये समाये ।
हाथ पांव वाके नहीं, कैसे पकड़ा जाये ।।
सहंस-कंवल से उठत है, सुन्न में जाय समाये।
हाथ पांव वाके नहीं सुरत से पकड़ा जाये।
शब्द रूप घट परगट भया, भय भरम सब नाश ।।
'मंगत एको सब थाई समाया, जो जल थल करे निवास।
शब्द की महिमा अपार है, जाने कोई गुरु सन्त ।।
'मंगत' बिन भेद ना पाइए, सत सार भगवन्त ।

गुरुदेव : जिन्हां घालया तिन्हा पाया। जिसको सत मारग पर चलने का शौक होता है, उसको रास्ते पर लगाने वाला कोई ना कोई किसी रूप में मिल जाता है। इसी तरह कोशिश करते रहा करो, ईश्वर आप कृपा कर देवेगा। साधु जमायतों के साथ नहीं चलते, न ही उनके मठ होते हैं। सत्संग में वक्त मिले तो आया करो।

प्रेमी : महाराज जी ! जब तक यह सत् शब्द नहीं प्रगट (अनुभव) होता तब तक यह विकार जीव को हैरान व परेशान करते रहते हैं?

गुरुदेव : प्रेमी ! यह त्रैगुणी माया जाल बड़ा अपार है। इस माया में सब जीव बांधे हुए ख्वार हो रहे हैं। जब तक अपने आपको फायल (कर्म का कत्ता) मान रहे हो तब तक इस भ्रम से छूट नहीं सकते। माया का रूप यह कर्त्तापन है। इसी से त्रैगुण सत्, रज, तम प्रगट होकर अज्ञानता की तरफ ले जाते हैं।
प्रेमी : महाराज जी। यह कर्त्तापन कहां से और क्यों पैदा हो जाता है?

गुरुदेव : प्रेमी ! मैं रूपी अहंकार यानि अहम् भाव कर्तापन के पैदा होने का कोई कारण नहीं है। बगैर कारण के ही यह खेल हो रहा है। यह ही उपाधि जीव को लगी हुई है। इसे ही अनिर्वचनीय बिस्माद कहा गया है। जीव कर्म का अभिमानी होकर भोगों की इच्छा लेकर अनेक तरह के यत्न-प्रयत्न में रात-दिन लगा हुआ है। जब कर्म करके फल प्राप्त होता है तब उसके राग-द्वेष में अग्नि की तरह पल-पल विखे तपायमान होता रहता है। यह ऐसा आश्चर्य का खेल है। एक पलक के वास्ते भी जीव इसे नहीं छोड़ना

चाहता, न छूट सकता है। अनेक तरह के यत्न करने पर भी कर्तापन नहीं जाता। विकारों की मूल जड़ यह ही है। जब तक यह समझ रहा है **"मैं और मेरा शरीर"** तब तक विकार साथ ही हैं। इस वास्ते सत्पुरुषों ने एक युक्ति बताई है। आजजी (विनय), दीनता, सेवा, पर उपकार, निष्काम कर्म। निर्मल प्रीत से जो इस मार्ग पर चलने वाले हैं वे एक रोज विकारों से मुखलसी (छुटकारा) हासिल कर लेते हैं।

प्रेमी : महाराज जी। निर्मल प्रीत का क्या मतलब है?

गुरुदेव : प्रेमी ! निष्काम भाव-कोई भी गर्ज न रखते हुए सत् सेवा में समय देना। जिस प्रीत में कोई गर्ज नहीं। गर्ज करके सम्बन्ध, प्रेम भाव, लगाव जोड़ता रहता है। सन्तों ने पहले ही सेवा और नाम सिमरन में लगा दिया। जोडे (जूते) साफ करो, पानी भरो, झाड़ू लगाओ, गरीब अनाथ की सेवा, संगत की सेवा, पब्लिक की सेवा जिस कद्र निष्काम सेवा बन सके और आन्तरिक साधन सच्ची प्रीति से करके कर्तापन कमजोर हो जाता है।

तू तूं करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।

जितने कर्म तुझसे बनें नित्य ही प्रभु आज्ञा में समर्पण कर, ताकि प्रभु की आज्ञा में ऐसा तेरा ध्यान परिपक्व हो जाए, अन्तर से तेरा अहम् भाव खत्म हो जाए। जो हो रहा है सब कुछ प्रभु आज्ञा में हो रहा है। ऐसा होगा कब? जब सत् सिमरण में दृढ़ता हो जावेगी, निःकर्म स्वरूप आत्म रस अनुभव होगा, उसमें बुद्धि जुड़कर बाहर की सुध-बुध भूल जाएगी, तब अपने आप ही तुझे ऐसा हर समय अन्तर-बाहिर से भासेगा। उस दाते की आज्ञा में ही सारा खेल हो रहा है, तब कर्त्तापन रूपी अहंकार लय हो जाता है, मगर यह अवस्था बड़ी ऊंची है। करोड़ों में से कोई ही ऐसे पद को पहुंचकर इस त्रिगुणी माया से पवित्र होता है। हर समय तू कर्त्ता, सरब तेरी आज्ञा, इस सत् भावना को धीरे-धीरे दृढ करते जाओ।

हौं बलिहारी तिन पंखीयां जंगल जिन्हां दा बास।
कंकर चुगन थल वसन रब्ब ना छोडन आस ।।

हर एक चीज से सबक लेना चाहिए।

कर्त्ता सो भोक्ता

वाणी

अपने भरम का देखे विस्तारा, भाँतक भाँत जो ही संसारा।
अन्तर भरम न जब लग जाई, अनमत जिया शान्त ना पाई।
सत निरनय गुनी करो विचार, आवन जावन की परसें सार।
हंग बुद्धि सहजे परगासी, त्रैगुन ममता धारी फाँसी।
गुन के मोह में अधिक लपटाई, करम जाल रचना प्रगटाई।
पाँच तत गुन तीन संजुगता, सकल जगत को यह है रचता।
जीव अभिमानी गुन का भयो, आवागवन संशा लख लयो।
करम फल द्वन्द्व में नित गरासा, पाँच भूत धारी अत फॉसा।
तत् भोग में नित ललचाई, भाँतक भाँत रसना को खाई।
छिनभंगुर यह तत्व क्रीड़ा, तिसके मोह में पावे अत पीड़ा।
तीन ताप में नित ही तपे, मिथ्या भरम में नित नित खपे।
नाम रूप कलपे घट माहीं, रहे प्यासा देख अपनी परछाई।
ना भ्रम छूटे ना सार लखावे, अपनी भरमन बहु जन्म भरमावे ।
अदभुत रचना त्रैगुन विस्तार, बाँधा जीव नित होये खवार।
गुन से काल काल से करमा, सकली लीला धारे यह धर्मा।
पल पल रचना रूप वटाये, काल कर्म में आवे जाए।
सत ठौर नहीं सूझे अबनासी, माया भरम धारी अत फाँसी।
अपनी इच्छा आप बंधाई, कर्म फल भोग में दुख सुख पाई।
अत क्रीड़ा त्रैगुन जंजाल, बारमबार गरसे जम काल।
हंग विकार का चिन्तन, ये त्रैगुन माया जाल।
'मंगत' भरमें जीवड़ा, धार के खेद नित काल।।

प्रवचन

चौदह लोक में जितने भी जीव शरीरों को धारण करके आते हैं पीर, पैगम्बर, अवतार, औलिया, गुरु, गुसाई, सिद्ध, तपीश्वर, रोगी, सोगी, मनुष्य, पशु, जंगम, स्थावर, पानी में रहने वाले, आसमान में उड़ने वाले, सब ही इस माया के चक्कर में आते हैं। यह ही सबके बन्धन की भी और इस भ्रम से छुटकारा पाने की जगह है। कोई तो जन्म से ही रोशनी वाले होते हैं। कई बाद में मेहनत करके इस अद्भुत संसार के भेद को समझते हैं। बाकी सब जीव कर्म फलों को भोगने के लिये आते हैं। कोई देवता, कोई इन्सान, चरिन्द, परिन्द अनगिनत प्रकार की योनियों को धारण करते, छोड़ते रहते हैं। न जन्म से पहले का किसी को पता है, न शरीर छोड़ने के बाद का पता है। इस दरम्यानी हालत में कोई माता बन जाती है, कोई पिता, कोई भाई, कोई सज्जन, कोई दुश्मन, कोई रक्षक, कोई भक्षक। अपने-अपने स्वभाव के मुताबिक बनते-बनाते रहते हैं। दुःख-सुख, लाभ-हानि, संयोग-वियोग इस द्वन्द्व हालत में सन्ताप को प्राप्त होकर भटकते रहते हैं। चाहे कोई राजा या राणा, गरीब-अमीर, पशु-पंछी सब बार-बार अनेक नाम रूपों में प्रगट होते चले आते हैं। इसी तरह संसार की रचना अनन्त काल तक बनी रहती है। वैसे इस आश्चर्यजनक संसार में ऐसे मोह-माया में जीव ग्रसित हुए हैं कि न आने का पता है न जाने का। ईश्वर किसी को बन्धन में डालकर राजी नहीं, न छुटकारे में नाराज़ है। हर एक जीव अपनी इच्छा को लेकर संसार में विचर रहा है। इच्छा को धारण करके अनेक तरह के स्वांग रच लेता है और रच करके खुश होता है। वियोग होने पर दुःख प्राप्त करता है। कोई ही विवेकी जीव आकर इस बन्धन रूप संसार से निर्बन्ध होकर जाता है। वे अमली जीवन जब सन्मुख रखते हैं तब कुछ बुद्धि को होश आती है और उनके पीछे लगकर अपना उद्धार आप करते हैं। इसी तरह जबसे संसार बना है कोई न कोई महापुरुष, गुरु गुसाईं, अवतार के रूप में संसार में आकर चेतावनी देते रहते हैं। इनका जीवन आम संसारियों से भिन्न होता है। उनका हर कर्त्तव्य दिव्य रूप में होता है। संसारी हर वक्त भोग पदार्थों में जीवन समझते हैं, फकीर सब कुछ त्यागने में परम लाभ जानते हैं। मायावादी जमा करके खुश होते हैं, गुरु लोग तकसीम (बांट) करके प्रसन्न रहते हैं।

"जिन्हां तकवा रब्ब दा, उन्हा रिजक हमेश।"

हर समय 'राजी बर रजा' रहकर मलग हालत में खुश रहते हैं। हर समय दूसरों के दुःखों का निवारण करने के वास्ते ही लगे रहते हैं। परोपकारी, उदार चित्त उनका रूप होता है। दूसरों को सुख देकर किसी से मुआवजा नहीं मांगते । समय आने पर शरीर का बलिदान करने से भी गुरेज नहीं करते। दुनिया बड़े-बड़े इम्तहान लेकर आखिर सर खम करती है (झुकती है)। राम, कृष्ण, ऋषि, मुनि, अवतार, गुरु नानक, कबीर, ईसा, मूसा, इब्राहिम जैसे महापुरुषों ने किस कद्र उच्च फकीरी जीवन पेश किया है। हजारों उनके नामलेवा परम खुशी को प्राप्त हुए हैं। कल की बात है, पंजाब के गुरुओं ने कितनी कुर्बानी इस धर्म की रक्षा के वारते की। आज खुदगर्ज लोग क्या कर रहे हैं? पहले क्या, अब क्या हर जमाने में अपना-अपना भाव पेश अलग करते आये हैं। हर जीव अन्दरूनी खुशी (प्रसन्नता) चाहता है। जाहरी भेष द्वारा असलियत गायब हो जाती है। भेष एक रिवाज बनकर रह जाता है। सत्पुरुष सब जीवों से प्रेम करना सिखाते रहते हैं। भेषाचारी अपना राग अलापकर दुविधा बढ़ाते जाते हैं। जब धर्म की धारा कमजोर पड़ने लगती है फिर कोई सत्पुरुष आकर भेद-भाव को खत्म करने की कोशिश करते हैं।

"दिल दा महरम कोई ना मिलया, जो मिलया सो गर्जी।"

माया की खोज से आज तक तसल्ली किसी को नहीं मिली। केले के तने को खोलते-खोलते आखिर कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इसी तरह माया को देखने का हाल है। देखने में संसार का विस्तार बड़ा मालूम होता है मगर विचार किया जावे तो सार कुछ नहीं मिलती।

शब्द ज्ञानी बहु मिले, जो मुख से कथें ज्ञान।
'मंगत' ऐसा कोई ना मिलया, जिस लगा कलेजे बान।।

विवेकी जीव संसार में कम हुआ करते हैं। भाग्य से ही कर्म उदय हों तो जीव ईश्वर परायण होता है।

दृष्टान्त - "अच्छे-बुरे कर्म का बदला देना ही पड़ता है।"

पुंछू के इलाके में मेण्डर तहसील है। उसके जंगलों में एक महात्मा रहते

थे। पुछ नामक एक शिकारी रोजाना ही शिकार खेलकर उनके पास से प्रणाम करके गुजरा करता था। एक दिन जब सुबह के वक्त ही वह शिकार करके लाया और महात्मा जी को दूर से ही प्रणाम करके गुजर रहा था तो महात्मा जी ने नजदीक बुलाकर बैठा लिया और कहने लगे - प्रेमी, तुमको यह हिसाब लेना-देना पड़ेगा।

पुंछू : महाराज, किस तरह?

महात्मा जी : प्रेमी । इन बेजबानों को जो तू व्यर्थ ही दुःख दे रहा है, क्या इनकी आत्मा तुमको शान्ति की दुआ देगी। जो किसी को दुःख देता है उससे कई गुना दुःख पाकर भी वह नहीं छूटता। आगे पता नहीं किस पाप के कारण ऐसी खोटी बुद्धि तुमको मिली हुई है कि छोटे-छोटे जीवों का बधिक बना हुआ है। जिनके वास्ते ऐसा रोजगार पकड़ रखा है कोई भी तेरा साथ देने वाला नहीं।

पुंछू : महाराज ! क्या इसी तरह बदला चुकाना पड़ेगा ?

महात्मा जी : जरूर बदला चुकाना पड़ेगा। आगे भी कई जन्मों से इसी तरह कभी तू इनको खाता आ रहा है, कभी ये तुझे खाते हैं। यह संसार कर्म-क्षेत्र है; जैसा जो जीव कर्म-बीज बोता है वैसा ही काटता है।

पुंछु : महाराज ! क्या सचमुच बदला चुकाना पड़ेगा ?

महात्मा जी : हाँ !

इस 'हाँ' के शब्द ने उसके कलेजे पर बाण की तरह असर किया। उसी समय तीर-कमान और अपना शिकार फेंक दिया और कहने लगा, "महाराज! अब यह हिसाब खत्म करके ही दम लिया जावेगा। आप कृपा करके कोई शिक्षा दें जिससे बदला न चुकाना पड़े। इसी जगह काम पूरा किया जावे। घर में सन्देश भेज दिया कि पुंछू की प्रतीक्षा न करना। वहां से ही शिक्षा ग्रहण कर जंगल में तप के वास्ते चला गया। फिर कुछ समय के बाद रावलपिण्डी और गुजरखान (पाकिस्तान) के बीच खात नामक गांव में सड़क के किनारे डेरा रखा और यात्रियों की सेवा में तत्पर रहे। उनका वाक्य था-

"जो होनी सो होनी दुनिया ऐवें रोनी।"

आखिर उनकी बहुत मान्यता होने लगी। यहां तक कि एक बार महाराजा रंजीत सिंह जब काबुल पर चढ़ाई करने के वास्ते जाने लगे तो रास्ते में गुजर खान नामक पड़ाव पर उतरे। अशर्फियों का थाल भरकर गले में कपड़ा डालकर पैदल नंगे पांव पुंछू साहेब की कुटिया पर पहुंचे। आज्ञा लेकर अन्दर दाखिल होकर भेंट रखी, नमस्कार की और श्रद्धापूर्वक अपनी दाढ़ी से आसन के नजदीक वाली जगह साफ करने लगे। जब पुंछू साहेब ने आंख खोलकर देखा तो फरमाया-

"कानया, इन्हां ठीकरियां नूँ अगे रखके असां नू भरम विच पान लगाएँ।"

महाराजा : (हाथ जोड़कर) महाराज ! अन्तर्यामी प्रभो, यह सब कुछ तन-मन-धन आपका ही है। इस समय बड़ी भीड़ (समस्या) बनी हुई है, आप कृपा करें।

पुंछू : पहले एथे इक खूह (कुआँ) खुदवा। पानी दे प्यासे नूं बड़ी तकलीफ होन्दी ऐ। फिर जा जिधर मर्जी आवी- फतेह तेरी अगे खलोती होई है। गरीबां दी सेवा करया कर।

महाराज के हुकम से तत्काल कुआँ बनना शुरू हो गया। इस तरह महाराजा रंजीत सिहं कुआं बनवाकर आगे आशीर्वाद लेकर बढ़े और विजय प्राप्त की। विचार यह है कि चित्त के साथ जब कोई काफी लग जावे, तब ही ठोकर लगने से जीव सुधर जाते हैं।

"तर गया कबीर जुलाहा सन्तां दा संग करके।"

सत्संग बड़ी चीज है, जिसमें हर समय जीव को ठोकर पर ठोकर लगती रहती है। आज संगत का समय जरा ज्यादा खर्च हो गया, नाराज न होना ईश्वर सबको सुमति देवें।

वैराग्य वाणी

काया रूपी आयरन, काल रूपी लुहार ।
प्राण का हथोड़ा नित चले, गुनियों करो विचार।।

पूंजी जॉ की रवास है, छिनछिन जात विहाये।
कूड़ा वनज कमाये के, गाँठी मूल गँवाए।।
छिन आवे छिन जात है, ज्यो अंजली का नीर।
जीवन जग दिन चार है, कोट करे तदबीर।।
एह तन विख की खान है, हीरा मनी गोपाल।
तन दीजे तब पाइये, नदरी नदर निहाल ।।
बालू की यह भीत है, धुँए का अम्बार ।
छीजन में न पलक लगे, कित गुन करे विचार।।
महल अटारी कोट गढ़, हिकमत हुकम कमाल।
खाली रहे सिंहासन, नहीं आये नजर भूपाल ।।
खोटा जीवन छाड़कर, मारग खरा पहचान ।
जॉ से मिले सुख शान्ति, मिट जाय झूट गुमान ।।
जावन जावना सब कहें, पर पन्च ना ठौर की जाँच ।
कूड़े इस मरवास में, पायो किसे ना साँच।।
काँच व्यापारी जगत सब, करे मानक दा गुमान।
जव नजर सराफी में चढ़ा, तब लज्जित गयो अंजान ।।
बिख बीजे निस दिन गुनी, माँगे अमृत सार।
'मंगत' सो ही पाइये, जो घाले करें विचार ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी, कर्म हम खुद करते हैं या पिछले संस्कार ही हमको शुभ अशुभ मार्ग पर ले जाते हैं?

गुरुदेव : प्रेमी, बेशक पिछले संस्कारों करके जीव का स्वभाव बनता है। मगर अपने संस्कार आप बदल भी सकता है। ईश्वर ने बुद्धि दे रखी है मगर इस्तेमाल नहीं करता। बुराई को छोड़कर अच्छाई को ग्रहण कर सकता है। अच्छा कर्म करते-करते बुरा करम भी करने लग जाता है। इस वास्ते हर घड़ी, हर समय दिल को मजबूत करके सन्मार्ग में दृढ़ता धारण करनी चाहिये। ज्यों-ज्यों पक्के इरादे से शुभ मार्ग पर चलता है उच्चता को प्राप्त होता है। अच्छी संगत अच्छी तरफ ले जाती है, मलीन स्वभाव वालों की संगत

करके बुद्धि मलीनता को प्राप्त होती है। संगत का असर लाजमी है, इस वास्ते बारम्बार सत्संगत पर जोर दिया जाता है। सारा संसार असत् रूप है। अज्ञानता से शरीर और संसार को सत् मानकर चला जा रहा है। जब विवेक बुद्धि पैदा होती है तब उधर से हटकर सत् की तरफ कोई भाग्यशाली जीव दृढ़ होता है। सत्संग में आकर चुप करके नहीं बैठे रहना चाहिये, विचार करना चाहिये। इसी तरह से बुद्धि से भ्रम दूर हो जाता है।

प्रेमी : महाराज जी, यह कैसे निश्चय हो कि बुद्धि का निश्चय शरीर और शरीर से सम्बन्धित संसार को नाशवान समझने का हो गया है?

गुरुदेव : प्रेमी, यह तब होगा जब यह बुद्धि पांचों ज्ञान इन्द्रियों के भोगों में रस महसूस न करे, यानि किसी तरह के विषय और भोग उसको सुखदाई प्रतीत न हों। दूसरे शब्दों में बुद्धि भोगों के प्रति बिल्कुल उदासीन हो जावे, तब कहीं बुद्धि परम तत्व को प्राप्त होती है और यह खोज करती है कि वह कौन-सा पदार्थ है जो इस शरीर विखे आरजी (अस्थायी) नहीं है और नित्य स्वरूप है। तब उस बुद्धि को अनुराग प्राप्त होगा, फिर वह उस अनुराग की लहर में आकर जो मार्फत के राग अलापेगी वह ही असल में राग का गाना है, जिसे बड़े-बड़े भक्तों ने जैसे मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, कबीरदास, नानक, नरसी और नारद आदि ने गाया है। उस अनुराग को प्राप्त करके वह तृप्त हो जाता है। सारे संसारी जीव उसे जलते नजर आते हैं। तब वह उनके उद्धार की खातिर कुछ न कुछ वाणी उच्चारण करता है और तपे हुए जीवों को ठण्डक पहुंचाता है। ऐसा प्राणी अन्तर विखे उस परम अनुराग को प्राप्त करके अन्तर में शान्त हो जाता है और संसार का ब्योहार बडा ठण्डा होकर करता है और लिपायमान नहीं होता। अब सब जीव तृष्णा रूपी महान रोग में जलकर राग विद्या को अपनाकर चाहते हैं कि शान्ति प्राप्त हो, जो कि बिल्कुल बे बुनियाद है। ऐसा नहीं हो सकेगा।

प्रेमी : महाराज जी, यह मन की खुशियां किस तरह खत्म हो सकती हैं? गुरुदेव : प्रेमी ! सेवा, सिमरण, विचार में लगे रहने से ही किसी समय जाकर जब अन्तर विखे शब्द स्वरूप परमेश्वर प्रकट होवे तब जाकर तमाम कामना

कल्पना से खुलासी प्राप्त होगी। मन, बुद्धि हर वक्त शरीर को ही सब कुछ समझ रही है। जिस समय बुद्धि मन, देह, इन्द्रियों, प्राण के साक्षी सरूप को अभ्यास द्वारा बोध करेगी तब जाकर असली मानों में वैराग्य प्राप्त होगा। शरीर का मोह टूटेगा। यह आसान बात नहीं। जब तक बाल-बाल में महसूसात फैली हुई है कैसे सत् शब्द का अनुभव कर सकती है।

प्रेमी : महाराज जी, इस मन की शान्ति का उपाय क्या है?

गुरुदेव : प्रेमी, मन की शान्ति के वास्ते सिवाय ईश्वर प्राप्ति के और कोई उपाय नहीं है। इस छिन-भंगुर संसार से उदासीन रहना यह मन की शान्ति का मार्ग है। बुद्धि से इन शब्दों को समझ लेवें और शान्ति हासिल करने के लिए साधना करें।

सहज मारग है योग का, जो परसे सुख सार।
नित प्रति मारग साधते, मिटे मन आजार ।।
काम क्रोध बिपता हरी, मनसा पकड़े धीर।
शब्द ब्रह्म रसना छेकी, उपजया आनन्द सरूर ।।
मन तन ईन्दरे छाड़ के, सुरत भई निराधार।

प्रेमी :काम क्रोध दुर्मत गई, 'मंगत' शब्द आधार।। : महाराज जी, जब जीव सत् स्वरूप में स्थित हो जाता है तो उसकी बुद्धि की क्या स्थिति होती है?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! बुद्धि नाम की चीज सत् स्वरूप की स्थिति होने पर रहती ही नहीं। सब कुछ एक आत्म स्वरूप ही प्रकाश करता है। उस जगह जाकर तमाम प्रकार के तर्क-वितर्क खत्म हो जाते हैं। अगर, मगर, केवल, क्या अगर बनी रहे तो फिर सत् स्वरूप की स्थिति नहीं है, वह कोई संशययुक्त हालत है।

महापुरुष भी गुरु परायण

वाणी

वाणी सतगुर ऐसा भेटिए, जां को भरम न कोए। अन्त
रगत में रम रहया, परम शान्त चित्त होए।।
सत सरुप में नित समाए, सत की महिमा नित मुख से गाए।
झूट माया का भरम उड़ाये, सत शब्द में सुरत लगाये।
बाद मुबाद ऊंच नीच नहीं भेद, सम दृष्ट जपे अक्षर वेद।
इन्द्री भोग से रहे अतीत, आतम भोगे सो गुरु पुनीत।
भय भ्रम नहीं जां को रोग, नित आनन्द मन रहे संजोग।
कूड़ा संसा मन से बिसराए, साचा शब्द मन तन रमाए।
श्रद्धावान और उपकारी, अखण्ड सरूप का भये पुजारी।
मज़हब मजाहब सबसे दूर, साचा मज़हब राखे हजूर।
सब जीवों से करे प्यार, पर दुःख हरना कीजे कार।
साचे नाम में मगन समाए, अनहद राता सो गुर अगाहे।
अपने अन्तर का भरम त्यागे, सत सरूप में नित रहे जागे।
तीन अवस्था का संग त्यागी, चौथे जागे सो गुर बड़भागी।
अधम जीव की कीजे नित सेवा, मान त्याग पावे आलख देवा।
अपने घर में जिस अमृत चीना, सो सत्गुर परम परबीना।
कलह कलंक दुरमत को छेदे, सत सरूप ठाकुर को बेधे।
खिमावान दृढ़ विश्वासी, उल्ट मारग निर्भय निवासी।
दिन में गुप्त रैन उठ जागे, आतम तत्त्व में रहे लिवलागे।
जड़ चेतन का निर्णय कीजे, मिल चेतन अमीरस पीजे ।
छिन छिन मन का सन्शा काटे, अवगत नाद निरन्तर राटे।
मिटे अन्धकार घर चानन होए, ब्याध त्यागी साचा गुर सोए।
गुर महिमा अपरम अपार है, जाने कोई गुर सन्त।
'मंगत' गुर साचा सोई, जां को नहीं भरमन्त ।।

प्रवचन

जीव कल्याण की खातिर इस मनुष्य चोले को लेकर आया है। इसका असली संसार यह शरीर ही है। चौरासी लाख जिया जन्त (जीव जन्तु) में उस सर्वव्यापक शक्ति की शक्ति ही व्यापक हो रही है। बगैर उसके कोई जगह खाली नहीं। न उसके हुक्म के बगैर कोई पत्ता भी हिल सकता है। चौरासी लाख योनियों में एक मनुष्य योनि ही ऐसी है जिसमें बन्ध और मुक्त का भेद यह जीव समझ सकता है। और किसी चोले में इसको छुटकारे का रास्ता नहीं मिल सकता। कर्म के चक्कर में फंसा हुआ जीव बडे यत्न-प्रयत्न करता है कि किसी तरह जन्म सफल हो जावे। कर्म चक्कर से छुट्टी पाने का सन्तों के पास रास्ता है। आओ अपना दुःख इधर दे जाओ, यहां से ठण्डक लेकर जाओ। जो कुछ सुनो उस पर अकेले बैठकर दो घड़ी ध्यान दो। जलन देने वाले संसार से दो घड़ी के वास्ते छुट्टी पाकर हरि की भक्ति में समय दो, अपने आपको बार-बार प्रभु चरणों में समर्पण करो। इसके अलावा और कोई खुलासी की राह नहीं।

उठ फरीदा सुतया, झाड़ू दे मसीत ।
तू सुत्ता रब्ब जागदा तेरी डाडे नाल परीत।।
फरीदा राताँ होइयाँ वडियाँ, घुख घुख उठन पास।
धृग तिन्हा दा जीवना, जिन्हाँ पराई आस ।।

संसारियों की जलन दूर करने के वास्ते फकीर दर-दर फिरते हैं। इन्होंने कोई वनज और व्यापार नहीं करना। अपने पर बड़ी कृपा करते हो जो दो घड़ी दुनिया की तपश से दूर रहकर सत्संग में शामिल होते हो। बिना किसी सत् उपदेश के चित्त नहीं मानता। संसार के बड़े-बड़े अवतार, ऋषि-मुनि जो हो गुज़रे हैं उनको भी आकर किसी का आसरा पकड़ना पड़ा। कृष्ण ने दुर्वासा को गुरु धारण किया। रामचन्द्र के वशिष्ट से शिक्षा पाई। थोडे समय की बात है, कहते हैं नानक ने कबीर गुरु धारण करके परम पदवी पाई। उपदेश से पहले मिलते ही नानक जी ने गुरु महिमा की है।

वाह वाह कबीर गुरु पूरा है जां का सकल जहूरा है।
सबमें व्यापक सबसे न्यारा हरदम रहत हजूरा है।।

मोहित बुद्धि फिरत गगन में बाजत अनहद तूरा है।
नाम जपे जन सूरा "नानक" चरण की धूड़ा है।

कबीर की उम्र जिस समय 80 बरस से ऊपर थी, फिरते-फिराते पंजाब की तरफ आये। नानक जी की उनके साथ भेंट हुई, जिसे सच्चा सौदा कहा जाता है। घर से जो माल लाये थे वह साधुओं की सेवा में अर्पण कर दिया और प्रार्थना करके सत् उपदेश ग्रहण किया और प्रेम से प्रार्थना की। रोशनी वाले पुरुष तो पहले ही थे मिलने पर और रंग लग गया। जब मर्यादा पूरी हो गई, आशीर्वाद देकर कबीर जी ने फरमाया :-

वाह वाह बाले जीता रहो।

मण्डवे की रोटी बथुए की भाजी निसदिन अहार कराता रहो।
प्रेम की सूई सुरत का धागा, ज्ञान गोदड़ी सीता रहो।।
उस मालिक की बड़ बड़ अखियाँ निस दिन दर्शन कीता रहो।
कहे "कबीर" सुनो ओ नानक राम रसक रस पीता रहो।।

इस तरह आशीर्वाद देकर चले गये। नानक जी ने गुरु की तारीफ में वाह गुरु वाह गुरु कहा है। इस तरह जब सन्त को सन्त मिलते हैं, सम्वाद होते आये हैं। कबीर ने जब गुरु रामानन्द धारण किया तब संसार में मान्यता होने लगी। पहले सारे काशी के लोग उसे निगुरा ही कहते थे। कबीर के तो जन्म से ही ज्ञान चक्षु खुले हुए थे। उसने छोटी उम्र में ही बनारस शहर के अन्दर जब धर्म प्रचार शुरू कर दिया तब लोगों ने पूछा कि आपका गुरु कौन है? वैसे बहुतों को पता था कि कबीर जुलाहे का लड़का है, इस वास्ते उसकी बात कोई नहीं सुनता था। उस जमाने में ज्यादा रिवाज गुरु प्रणाली का था। जब भी किसी से किसी की मुलाकात होती थी पहले पूछते थे कि किस गुरु के शिष्य हो। फिर पीछे बात चलती थी। कबीर जी से जब पूछा जाता तब कुछ लज्जित हो जाते। उस समय ऐसा समझा जाता था कि बगैर गुरु के ज्ञान देने और सुनने का अधिकारी कोई नहीं हो सकता। उन्होंने सोचा क्या करना चाहिए। गुरु रामानन्द के पास गये और गुरु धारण करने की प्रार्थना की, उनको जब पता लगा कि जुलाहा है उन्होंने ज्ञान देने से इन्कार कर

दिया। अपनी शक्ति से बालक का रूप धारण करके गंगा के किनारे पर चले गये। स्वामी रामानन्द जी रोजाना सुबह चार बजे स्नान के लिए गंगा के किनारे घाट की सीढ़ियां उतरकर जाते थे। सुबह चार बजे से पहले का समय होता था। कबीर जी बालक रूप में एक सीढी पर पहले ही बीच में लेट गए। गुजरते वक्त जब रामानन्द जी के पाँव ठोकर लगी तो बालक रोने लगा। स्वामी जी के मुख से निकला उठो राम के बेटे राम-राम कहो। उठाकर कहा, "बेटा, रोना अच्छा नहीं, राम-राम कहो।"

कबीर जी ने उस रोज से फिर धर्म प्रचार शुरू कर दिया। जो भी पूछता उसे कह देते कि उनके गुरु रामानन्द जी हैं, उनसे उपदेश पाया है। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। लोग रामानन्द जी से पूछने चले गए। जाकर उनसे प्रार्थना की, "महाराज! आपने एक नीच जुलाहे के लड़के को दीक्षा दी है।" रामानन्द जी ने कहा, "दीक्षा देना तो दूर हम तो छोटी कौम के आदमी के दर्शन भी नहीं करते हैं।" वह झूठ बोल रहा है, उसे पकड़कर लाओ। लोग कबीर को पकड़कर रामानन्द जी के पास ले गए। रामानन्द जी ने उससे पूछा, "क्या, हमने तुम्हें दीक्षा दी है? क्यों तुम झूठ बोल रहे हो?" कबीर साहब ने झट कहा, "गुरुजी, आज ही सुबह आपने मुझे दीक्षा दी है, इतनी जल्दी भूल गये।" रामानन्द जी ने कहा "झूठ, झूठ, बिल्कुल झूठ। हमने तुमको आज दीक्षा बिल्कुल नहीं दी।" कबीर जी ने कहा- गुरुजी ! क्या आज सुबह आपने चार बजे ठोकर लगने पर मुझे राम-राम कहने को नहीं कहा था। यह ही तो बड़ा गुरु मन्त्र है। रामानन्द जी ने कहा- "क्या इस तरह 'राम-राम' कहने से कोई शिष्य बन जाता है?"

कबीर जी ने उत्तर दिया- "अगर इसके अतिरिक्त कोई और मन्त्र है तो बताइये। दुनिया भर के तमाम वेद ग्रन्थों का यह ही सार है।" आखिरकार रामानन्द जी कहने लगे, "हमने जिस बालक के सिर पर हाथ रखकर 'राम-राम' कहने को कहा था, वह बिल्कुल छोटा सा था। तुम तो बड़े हो, बोलचाल सकते हो।" (अन्तर की शक्ति से 6 माह का बालक बनकर) कबीर साहेब ने प्रार्थना की, "परदे के पीछे अन्दर जाकर देखें। गुरु जी, मैं

वही बालक हूं या नहीं जो आपको गंगा के किनारे मिला था।" जाकर देखा समझ गये यह कोई मामूली बालक नहीं है। किसी महान आत्मा ने देश का कल्याण करने के लिए जन्म लिया है। ज्यों ही उन्होंने उठाने के वास्ते बच्चे का हाथ पकड़ा कबीर जी बोले - "गुरुजी! समझ गये होंगे मेरी बातें।"

जो बालक सुन सुनया वोह बालक हम नाहीं।
हम तो लेते सत का सौदा परपंच पूजें नाहीं।
नाओ तुम्हारी में खेवट नाहीं लहर उठे विकारा।
गुरु सहित शिष सब डूबे कौन उतारे पारा।।
सूखे काठ जो घुन लागे लोहे लागे काई।
बिन परतीत गुरु जो कीजे काल घसटिया जाई।।
समझन होए तो सम्झयो गुरुजी बेद अपरम अपारा।
कहे 'कबीर' सुनो रामानन्द जी यह सीख लियो हमारा ।।
अड़दा पड़दा दूर करो बिन पड़दा की बात।
दूल्हा दूल्हन मिल गयो फीकी पड़ी बरात ।।

पहले रामानन्द जी हमेशा पर्दे के अन्दर रहकर कबीर जी को मिलने से बात किया करते थे और ज्यादा परदे के अन्दर ही रहते थे। अपना प्रचार सिर्फ ब्राह्मण, क्षत्रिय ऊंची जातियों में ही किया करते थे। छोटी जाति वालों से हमेशा नफरत करते थे। उनको छूना तो दूर उनका मुंह देखना भी पाप समझते थे। छाया उनकी पड़ी नहीं कि भ्रष्ट हो गये। फिर स्नान करते थे। अनेक स्थानों पर कई घरों में अब भी ऐसा रिवाज चला आ रहा है। जरा छोटी जाति की छाया पड़ी नहीं कि दस-दस बार कपड़ों समेत नहाते हैं। इस अन्धकार, अज्ञान को दूर करने के वास्ते कबीर साहेब ने पहले यह रास्ता साफ किया। उस दिन से फिर रामानन्द जी ने परदे का रिवाज हटा दिया था, क्योंकि आत्मदर्शी गुरु सामने मुकाबले में आ गये थे।
विचार यह है कि आपने अपने लिये स्वयं विचार करना है। कबीर जी की बड़ी लम्बी कथा है। तात्पर्य यह कि जीव की प्यास गुरु के मिलने पर ही बुझती है। जबसे संसार में जीव ने शरीर को धारण किया है 5 वर्ष की उम्र

से लेकर कोई न कोई गुरु धारण करता ही रहता है। संसारी कामों के वास्ते भी गुरु धारण करने पड़ते हैं। आत्म पदार्थ को पाने के वास्ते आत्मदर्शी गुरु की जरूरत हुआ करती है।
ईश्वर तुम सबको सुमति बखशे। अब थोड़ा ही वक्त रह गया है। दो-तीन रोज और तकलीफ करने की कृपा करें। फकीर कुछ देकर ही जायेंगे। डरो मत, लेने वाले बनो।

वैराग्य वाणी

जिस जन पूरन प्रभ को ध्याया, तिस पाई अधिक वडियाई।
जिस जन निर्मल शरधा सूझी, तिस पाई अत प्रभताई।।
प्रभ की भगत सब ताप निवारे, मनुआ शीतल होई।
लिख लिख गये गुनी ज्ञान अथाये, बिन नाम ना पावे ढोई।।
जीवन काज सँवारा तिनने, जग में पाई जयकारा।
साची भगती संचित कीनी, तिन पायो भाग अपारा।।
सत सुकृत पद परसा स्वामी, सकल दोष चित्त दूरे।
तन मन ठांड भई नर पूरन, नित सिमरत नाम हजूरे ।।
जिस सुख को यह जीया लोचे बहु बिध बिपत लखाई।
'मंगत' सो सुख प्रभ रूप अपारा मिल सतगुर रसना खाई।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी, कबीर साहेब के जन्म के बारे में आपका क्या ख्याल है, इनके जन्म के बारे में बहुत सी कहानियों बना रखी हैं?

गुरुदेव : प्रेमी ! समय गुजर जाने पर कई तरह की कहानियाँ बन जाया करती हैं। उस समय कोई लिखने वाला पास नहीं होता कि बिल्कुल अक्षरशः वही बयान हो। कबीर पन्त वाले महन्त लोग ऐसे आकर सुनाते हैं। वैसे कबीर जन्म सिद्ध योगी थे। सिद्ध पुरुषों की लीला अद्भुत ही रहती है। ऐसा कहते हैं कि काशी शहर, जिसे बनारस कहते हैं, से काफी बाहर लहरतारा नाम के तालाब में सर्वशक्ति द्वारा प्रकट हुए। इतिहास में लिखा है कि नीरू, नीमा

नाम के स्त्री पुरुष, जो कि अपनी स्त्री को लेकर ससुराल से अपने घर वापिस आ रहे थे, रास्ते में स्त्री को हाजत होने से जब वह तालाब के पास गई तो कमल के पत्तों पर एक बड़े सुन्दर बालक को देखा और झट उठा लिया। नीरू भी उस अद्भुत बालक को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। लेकिन साथ ही अनेक तरह के विचार आने लगे कि अभी पहली बार इसे घर ले जा रहे हैं, दुनियाँ के लोग क्या कहेंगे? यह बच्चा किसका है, कहां से ले आये हैं, इत्यादि। नीमा उस बालक को छोड़ना नहीं चाहती थी, नीरू घर ले जाना नहीं चाहता था। बहुत देर तक आपस में वाद-विवाद होता रहा। झट ही बाल रूपी कबीर साहेब ने कहा- **पिछले जन्म में तुमने हमारे जैसा बालक मांगा था, इस वास्ते उस वचन को पूरा करने के वास्ते हम तुमको मिल गये। तुम हमको घर ले चलो। इसमें तुम्हारी बदनामी नहीं बल्कि नेकनामी होगी।** ऐसा लिखा हुआ मिलता है। पिछले जन्म में नीरू नीमा ब्राह्मण थे। किसी पाप कर्म के वशीभूत उनको यवन योनि में आना पड़ा। उस छोटे मुख के बालक से यह सुनकर, **"हमको घर ले जाने में कोई खराबी नहीं होगी"** दोनों उसको घर ले गये। दुनियावी रिवाज के मुताबिक उनकी जाति वाले पास-पड़ोस के लोग उन पर अनेक तरह की फबतियाँ कसने लगे। उन दोनों ने उन बातों की परवाह न करते हुए सबकी सुनकर सहन करते रहे। जब उनकी उम्र कुछ बड़ी हुई तब मुसलमानों के रिवाज के मुताबिक 'खतना किया जाता है। काजी साहेब आ गये, जात बिरादरी इकट्ठी हुई। खाने-पीने का सब सामान तैयार हुआ। रिवाज के मुताबिक जीव हिंसा भी की गई। कबीर साहेब ने उनको बहुत समझाया मगर जब वे न माने तो कबीर साहेब ने उनको एक के बदले पाँच इन्द्रियां दिखाई। कहा कि इन पाँचों में से जो तुमको मुसलमान लगता हो, उसका तुम खतना करो, दूसरों का नहीं। यह हाल देखकर लोग बड़े हैरान हुए। उसी वक्त से कबीर साहेब ने काजी और तमाम जनता को शिक्षा देनी शुरू की। उस परमात्मा के घर से न कोई हिन्दू आता है न मुसलमान। सब ही एक माँ के पेट से जाये हैं। अगर खतना करने से मुसलमान होता हो तो औरतों का भी खतना होना चाहिये, क्योंकि वे तो हिन्दू ही रहती हैं।

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी का जाया, तो अन्न बाट काहे नहीं आया।

ऐसा विचार सुनकर सब हैरान रह गये। यदि तुम्हें मारने का हक है तो तुमको जिन्दा करके भी दिखलाना चाहिये, वरन् उस कुदरत की फुलवाड़ी के जीवों को अपनी जिहा के स्वाद के लिए काट-मार कर क्यों दोजख (नर्क) में जा रहे हो। कबीर साहेब उनके घर में रहते हुए भी उनका खाना-पीना इस्तेमाल नहीं करते थे। नीरू, नीमा रोजाना ही खाने के लिए हठ करते रहते थे। एक दिन नीरू, नीमा ने कहा अगर वह उनके घर का कुछ न लेंगे तो वे दोनों भी कुछ न खायेंगे। उनकी इस प्रकार हठ को देखकर कबीर साहेब ने कहा कि तुम्हारा जिद्द करना अच्छा नहीं है, मगर तुम्हारे कहने से आज वचन मान लेते हैं। किन्तु आज से तुम हमारी किसी भी बात में दखल न दिया करो। अच्छा जाओ एक वर्ष की बछिया लाओ। एक साफ-सुथरा बर्तन उसके नीचे रख दो। उसके थनों से दूध जिस कद्र निकले वह दूध तुम्हारे कहने से ले लूंगा। पहले दोनों सुनकर बहुत हैरान हुए। इतनी बड़ी बछिया दूध कैसे देगी, विश्वास न होता था। लेकिन उनके कहने के मुताबिक विश्वास करके वैसा ही किया, जिस तरह उन्होंने कहा। उसी तरह दूध निकला तब पान किया। यह सब बातें हैरान करने वाली हैं, लेकिन सिद्ध पुरुषों की लीला बहुत न्यारी है।

प्रेमी : महाराज जी ! क्या कमाल और कमाली कबीर साहेब के बच्चे थे?

गुरुदेव : प्रेमी ! आज यह अच्छा विचार चल पड़ा है। सुनो ! बनारस में कबीर साहेब को ब्राह्मणों और मुसलमानों ने हैरान व परेशान करने में कोई कसर न छोड़ रखी थी। बार-बार वहां के बादशाह को वजीर तक्की हर वक्त चिढ़ाता रहता था कि कबीर जादूगर है। इसने भूत प्रेत बस में कर रखे हैं। एक दिन कुदरती बादशाह, वज़ीर और कबीर जब घूम रहे थे तो एक मृतक शरीर नदी में बहता हुआ दिखाई पड़ा। वज़ीर ने कहा कि अगर आप इस मुर्दे को जिन्दा कर दें तो हम आपको सच्चा पीर मानेंगे। कबीर साहेब ने इस पर टाल-मटोल किया। बाद में वज़ीर ने बादशाह को इस काम के करने के लिये मजबूर किया। आखिर बादशाह ने भी नम्रतापूर्वक कबीर साहेब से ऐसा

करने के वास्ते प्रार्थना की। तब कबीर साहेब ने मुर्दे की तरफ हाथ उठाकर अपनी तरफ आने के लिये इशारा किया और उठ खड़ा होने के लिये कहा। वह मुर्दा उसी वक्त उठा और कबीर साहेब के चरणों में प्रणाम किया। ऐसा कौतुक देखकर बादशाह के मुख से यह शब्द निकला, **"साहेब आपने तो कमाल कर दिया है"।** कबीर साहेब ने हंसकर कहा कि अब इसका नाम कमाल ही रहेगा। कबीर साहेब कमाल को साथ ले आये।

प्रेमी : महाराज जी, कमाली के बारे में भी कुछ फरमायें कि वह किस तरह आई थी?

गुरुदेव : प्रेमी, आज ही सारी कथा सुन लो। इतना कुछ देखने पर भी वजीर तक्की को सन्तोष न आया। ईर्ष्या की ज्वाला अन्दर दहक रही थी। किसी तरह कबीर साहेब को नीचा दिखाना चाहता था। कुछ ही दिन गुजरे थे कि फिर उसने बादशाह के कान भरने शुरू कर दिये। मुर्दे का जिन्दा हो जाना इसमें कुछ न कुछ जादू टोने की बात जरूर है। मेरी लड़की जो एक मास पहले गुजर चुकी है अगर उसको जिन्दा कर दें तो मैं भी इनको अपना मुर्शद (गुरु) मान लूँगा। वज़ीर के बार-बार कहने पर बादशाह ने फिर कबीर साहेब को लड़की जिन्दा करने के लिए मजबूर किया। कबीर साहेब ने दोनों को बहुत समझाया कि कुदरती कानून में दखलअन्दाजी करना फकीरों का काम नहीं। करामातें दिखानी फकीरों के वास्ते अच्छी नहीं है। बार-बार समझाने पर भी जब बादशाह ने अपनी हठ जारी रखी तो मजबूरन प्रेमवश उनकी बात को मानकर जिस जगह लड़की की कब्र थी वहां पर गये। सिर की तरफ खड़े होकर कहने लगे- "हे बेटी! तू क्यों सो रही है, उठ जाग।" इतना कहना था कब्र फट गई और लड़की निकलकर कबीर साहेब के चरणों पर गिर गई। उस वक्त भी बादशाह के मुह से कमाल का शब्द निकल पड़ा। इसी वजह से उसका नाम कमाली रख दिया गया। लड़की कबीर साहेब के यहां ही रहने लगी। यह दोनों कबीर साहेब की रुहानी सन्तान कहलाने लगीं। प्रेमी, जब सन्तों की टक्कर किसी खास जगह होती है तब उभरकर दूसरे की तसल्ली करते आये हैं, जिस तरह भी हो सका। बादशाहों की बुद्धि

अपनी नहीं होती। जो उनके वजीरों ने कहा उसी तरह चल पड़े। दूसरा मजहबी बुखार जिन लोगों को घेर लेता है वे मुश्किल से ही सीधे रास्ते पर आते हैं। यह कबीर साहेब ही थे जिन्होंने हर तरीका इस्तेमाल करके सही धर्म का स्वरूप पेश किया।

प्रेमी : महाराज जी ! आनन्द तो बहुत आ रहा है। चरणों से इधर-उधर होने को जी नहीं चाहता?

गुरुदेव : प्रेमी जी, संसार में सब काम करने पड़ते हैं। जब तक शरीर खड़ा है इससे कुछ न कुछ काम लेना पड़ता है। यह जीव मजबूर है। खैर, बड़ा अच्छा तुम्हारे करके हो गया है, कई और प्रेमियों को भी रास्ते पर ले आये हो। यह भी तुम्हारी बड़ी सेवा है। सत्संग है, मिलने-जुलने वालों को आगाह कर देना। हर समय नजदीकी बड़ी मुश्किल है। सुबह जिस तरह मुनासिब समझो प्रोग्राम बना लेना। सत्संग का प्रेम बना लो। इस तरह मिलते-जुलते रहने से प्रेम बढ़ता है और जीवों को भी पता लगता रहता है। संसार में इस समय बड़ी तपश बढ़ती जा रही है। इसका इलाज केवल सादगी, सत्य और सेवा आदि उसूलों द्वारा लोगों के दिल तसल्ली पकड़ सकते हैं। भोगमयी जनता बढ़ती जा रही है। भोगमयी जीवन से योगमयी बनना है तो बहुत मुश्किल । आचार, विचार ठीक हो जावें तो भी निरर्थक कल्पना से बच सकते हैं। इस वास्ते जिस कद्र अपनी बेहतरी हो सकती है, करो। और दूसरों की बेहतरी के वास्ते भी सोचो और प्रण करते रहो। यही गुरु सेवा है और ईश्वर की बन्दगी है। यह ही फर्ज अदायगी है। आगे जिसके भाग होंगे पा ही लेगा।

प्रभु भक्ति ही मानव जाति की सफलता

वाणी

संसार त्याग प्रभ भगत विचार, पायें शान्त परम सुख सार।
प्रभु की भगत मुक्त पद देवे, गुरमुख विरला जुगत से सेवे।
पांच दोख की दूषन टारी, शान्त सरूप हर भगत विचारी।
त्रैगुण जाल सकल विख नासा, साची भगत पाया परगासा।
जुगत सार सत नाम विचार, अन्तर बाहिर प्रभ करो चितार।
बन्धन नास होवें सुखरासी, सम्पत पावें शब्द अवनासी।
साचे शब्द का भेद विचार, बिनस गया सब द्वैत गुबार।
दुर्मत जाल का अधिक पसारा, नाम जपे तब जाये निस्तारा।
अरब खरब धन प्रापत पाया, बिना भगत मन नित तिरखाया।
सहँस वरख जो जीवन पाई, विना भगत वेअर्थ गॅवाई।
विद्या असंख करी निध्यास, बिना भगत नित काल ग्रास।
जतन अनेक घाली नित घाल, बिना भगत नहीं मिले दयाल।
साची भक्ति का लेख लख पाओ, दुर्मत जाल से मुक्त समाओ।
साखी पुरुष सो सरजनहारा, तिसकी सेव करे निस्तारा
छिन छिन साची सेवा धार, सत साहिब की महिमा विचार।
मिटे भरम पायें सुख लेख, अपना भला हिरदे में देख।
मन के दाओ ना जिया लिपटायें, साची भगत प्रभ चरण कमायें।
यह ही रास जीवन का मूल, प्रभ की भगत पलक ना भूल।
भरम त्याग शान्त घर पाई, निर्मल भगत जिस गुनी कमाई।
भगती धन को खाटिये, मिल सतगुर सीख निधान।
"मंगत" विजय परापती, जीव पायो कल्यान ।।

प्रवचन

शरीर रूपी ससार को धारण करके जबसे जीव काल चक्कर में आया है इस अद्भुत संसार को देखकर मोहित हो रहा है। शरीर और संसार को सत् मानकर इससे मिलने वाले सुखों को हासिल करने के लिए रात-दिन जीव यत्न-प्रयत्न कर रहा है। जैसा चलन बड़े आदमी कर रहे होते हैं वैसे देखा-देखी नये शरीर धारण करने वाले भी करने लग जाते हैं। शारीरिक आराम को अधिक समझा जाता है। इसी को सब कुछ समझकर इसके वास्ते झूठ, कुसत कर्म करते हुए चले जा रहे हैं। बूढा हो, जवान हो, स्त्री हो, पुरुष हो, सब भोग सामग्री को एकत्र करने में लग रहे हैं। भोगों को भोगकर कभी तृष्णा इन्द्रियों की बुझती नहीं। इस झूठे भरोसे में बंधा हुआ जीव रोग और सोग को खरीद रहा है। चक्की को जिस तरह रोजाना पीसा जाता है उसी तरह शारीरिक सुख-आराम के वास्ते नित्य लग रहा है। यह विचार नहीं करता कि जो भी चीज दृष्टि में आ रही है सब की सब काल के मुख में जाने वाली है। बदलने वाली चीज कभी अबिनाशी खुशी नहीं दे सकती। जो चीज खुद मजबूरी में खड़ी है वह दूसरे को क्या आराम दे सकती है। असली आत्म सुख को सत्पुरुषों ने समझा है। संसार में आकर उन्होंने देखा, विचार किया कि सत् क्या है और असत् क्या है? जिस करके शरीर खडा है, जिस करके संसार देख रहे है उस चीज को जाना जाये, जिस चीज़ के जान लेने से फिर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। जिस वक्त नित्य प्राप्त अंग-संग वासी तीन काल सहायक को जान लिया तब जाकर सब रोग से खुलासी हुई।

प्रेमियो, एक रोज ससार के सब सुख छूट जायेंगे। साथ-संग, दोस्त-मित्र, रंग-राग देखते-देखते खत्म हो जावेंगे। कोई भी साथ देने वाली नहीं। इस वास्ते संसार छोडने से पहले ही परम तत्त्व को जान लें। यह पाँच तत्वक शरीर नाश को प्राप्त होकर रहेगा। यह हमेशा कायम रहने वाली चीज़ नहीं, अमानत के तौर पर मिली हुई है। इससे सही लाभ प्राप्त करें। बड़ा उद्यम और पुरुषार्थ यही है। संसार में आने का यथार्थ लाभ हासिल करें। सारे संसार का तमाशा भूलभुलैया है और ऐसा झमेला है जिसमें जीव फंसकर लाचार हो जाता है। दुःख में आशा रखता है कि सुख मिल जावेगा। मन की चलायमानता हमेशा ही अम व अज्ञानता में डाले रखती है। सौभाग्य से सत्संग और सन्त मिलते हैं। सत्पुरुष तो संसारी जीवों की गति को देखकर

तरस करते हैं। घर-घर फिरकर समझाते हैं कि कोई जागो, कोई जागो। मोह माया की ऐसी विकराल निद्रा में लीन हुआ जीव भाग्य से ही सुनकर अपना अगला राह संवारता है। निष्काम लोक सेवा और प्रभु का चिन्तन ही कल्याण देने वाला मार्ग है। जिस समय कोई धारण करेगा, संसार में आना सफल करेगा।

चौदा लोक में जो जन आया, मोह माया में नित गरमाया।
ऐसा जन कोउ हो सयाना, मान त्याग पाये पद निर्वाणा।।
झूट जाना संसार को, सत जाना करतार।
पाया राज देह दीप का, भ्रम से पाई छुटकार ।।
उपजे बिनसे नाश नित होई, यह भरम का रूप।
जो जो दृष्टि में आवे साजन, सोई काल सरूप।।
झूट का निश्चा त्यागया, सत में पाई परतीत।
"मंगत" सो ही गुरमुख भया, पाई दिसा पुनीत ।।

इस काया गढ़ को जीतना ही महान कारज है। आत्म तत्व को प्रकाश करना ही सत् पुरुषार्थ है। ईश्वर ही सबको सत् बुद्धि बों। इस न रहने वाले संसार में सच्ची प्रीत प्रतीत द्वारा जीवन सफल कर सकें। सिर्फ चार रोज़ ही इधर ठहरना है। समय लेकर आप भी आवें और गुर्मुखों को भी आगाह करें कि मानसिक रोग की दवाई यहाँ मिलती है।

इन्हें भी छूत की बीमारी लग रही है जो नजदीक आएगा उसे भी लग जाया करती है। विचार करके कदम इस मार्ग पर रखना चाहिए।

वैराग्य वाणी

जग जीवन दाता चेत ले, होय माया मोह दुःख दूर।
सब कुछ तिसका पेखिये, सत श्रद्धा का मिले सरूर।।
बनत बनावे सरव की, सरब को करे प्रकाश ।
परीपूरन समरथ स्वामी, नित मन करे अरदास ।।
नाना भान्त यह रचना जगत की, इक प्रम की प्रमता जानी।
ऐसी महिमा हिरदे आवे, तब भगती सार पछानी।।
ज्यों-ज्यों प्रभ की भगत कमावे, तृष्णा रोग बिनासे ।
घट अन्तर में चानन होवे, प्रभ सरूप लखें परकाशे।।
ऐसा आनन्दधन सो पार स्वामी, जिस जाना तिस सुख पाया।
"मंगत" पुरन भाग है तिनके, जिन एह बिध प्रेम कमाया।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी, मौत कैसी है। जो न बच्चे को छोड़ती है, न जवान, न बूढ़े को देखती है। पैदा होने वाले बच्चों से क्या खोटे कर्म हो जाते हैं जल्दी ही मर जाते हैं। आज हजारों आदमी कुम्भ में दब कर मर गये। क्या सब मरने वालों के एक ही वक्त ऐसे खोटे कर्म उदय हो जाते हैं?

गुरुदेव : प्रेमी, मौत किसी को नहीं छोडती। इसके आने का वक्त किसी को मालूम नहीं। जब आधी-तूफान चलता है, बड़े-बड़े सदियों से खड़े लम्बी जडों वाले वृक्ष उखड़-उखड़ कर गिरने लगते हैं। उनके गिरने से कई साथ छोटे पेड़ भी पिस जाते हैं। उपाधि जब प्रगट होती है समझदार भी नासमझ हो जाते हैं। बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक, गरीब-अमीर किसी का लिहाज नहीं करती। बेअन्त उस ईश्वर की माया है। कौन कहे साहिब को तू ऐसे नहीं, ऐसे कर।

प्रेमी : महाराज जी, बुद्धि का क्या काम है?

गुरुदेव : प्रेमी। बुद्धि का काम है सोचना, निर्णय करना और खोज करना। प्रेमी : महाराज जी, ऐसी कौन-सी युक्ति है जिससे मन ठिकाने लग जावे?

गुरुदेव : हाँ प्रेमी ! यह बड़ा जरूरी है इसे अच्छी तरह समझो। मन को ठिकाने लगाने के लिए चार बातें जरूरी हैं। इनके प्राप्त होने पर मन ठिकाने लग जाता है। मगर यह बात बड़ी जरूरी है कि तुम्हारे अन्दर यह भाव ज्यादा होना चाहिये कि मैंने अपने मन को ठिकाने लगाकर रहना है - (1) निश्चय दुरुस्त हो, (2) रास्ता दुरुस्त हो. (3) गुरु दुरुस्त होना चाहिये,(4) कोशिश दुरुस्त होनी चाहिये।

प्रेमी : महाराज जी, किसी के साथ बुरा बरताव किया जाता है तो उसमें किस पर उसका असर ज्यादा खराब होता है?

गुरुदेव : प्रेमी जी। बुराई जितना उसका नुकसान करती है जो किसी के साथ बुराई करता है उतना उसका नहीं करती जिस पर बुरा बरताव किया जाता है। किसी की बुराई करने से पहले वह अपने अन्तःकरण को बुरा बनाता है, जो सबसे बड़ा नुकसान है। मन का बुरा होना ही असल में बड़ा नुकसान है।

प्रेमी : महाराज जी, पाप कर्म करने से विशेष हानि क्या है?

गुरुदेव : प्रेमी, पाप कर्म वासना रूपी आग को प्रज्जवलित करने के लिए घी की आहुति का काम करते हैं और वासना की आग का बढ़ना मन को महान चंचल बना देता है। यह सबसे बड़ी हानि इस जीव को है।

प्रेमी : महाराज जी, किसी चीज़ के पाने के लिए विशेषकर इस ब्रह्म ज्ञान को पाने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?

गुरुदेव : प्रेमी जी। जिस चीज को पाना चाहते हो उसके पहले पूर्ण मुतलाशी बनो। जैसे कि मुसाफिर जब सफर करते हैं तो बड़ी जल्दी से सफर काटने का यत्न करते हैं कि कहीं रात्रि न आ जाए। यानि आराम या आलस्य की तमन्ना छोड़कर चलने का ही यत्न करते हैं कि कहीं शरीर का विनाश न हो जावे। ऐसी धारणा को पक्का करने के बाद तू उस ब्रह्म ज्ञान को पूर्ण करने का अधिकारी बन जावेगा यानि तीव्र वैराग्य को धारण करके संसार की तमाम अड़चनों को पार कर अपने स्वरूप को प्राप्त हो जावेगा।
प्रेमी : महाराज जी, क्या गुरु के शरीर की पूजा करने से उन्नति हो सकती है या नहीं?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! गुरु के शरीर की पूजा से कोई फायदा नहीं हो सकता। गुरु के उपदेश पर अमल करने और वचनों को मानने से उन्नति हो सकती है।

प्रेमी : महाराज जी, कौन-से कर्म बन्धन का कारण होते हैं और कौन से मुक्ति के?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! गर्ज करके जो काम किया जाता है वह बन्धन देता है और फर्ज करके किया हुआ कर्म आजादी देता है।

पवित्र जीवन

वाणी

गफलत त्याग उठ समाँ विचार, दुर्लग देह की सुन साची कार।
खाना पीना और भोग विकारा, कारज पशु समान विचारा।
मानुष देह की सुन सार बडयाई, परमारथ जो रसना चित्त आई।
परमारथ को नित सोधत सोधे, तब यह मनुओं परम गत बोधे।
साच प्रीती सत्संग निवास, सत पुरषन के सुने इतिहास।
सत करनी में मन आवे चाओ, बाँधे मनुओं तत्त ज्ञान समाओ।
छिन छिन जीवन समाँ विचारे, सत करनी में प्रीती धारे।
सत सील सन्तोष चित्त राखे, खिमा दया मन अन्तर भाखे।
सेव बन्दगी कार कमाये, पर उपकारी मन जीवन पाये।
तन मन धन से कीजो सेवा, भरम मिटे पावे प्रभ देवा ।
अगन सरीखा इस जग का ताओ, जीया जन्त समी तपताओ।
मिल सतगुरु तिस सतकथा विचारी, सत परतीत यह अगन निवारी।
मद ममता हरे विकारा, पूरे गुर का सुन बोल अपारा।
चार दिनों का देखे जग जीना, साची भगत से करे पाप छीना।
रुच रुच करके सेव कमाए, पर दुःख हरना जतन मन माए।
एक नाम मन माहीं परोवे, जनम जनम के मैल को धोवे।
ज्यो ज्यो मैल इस मन की जावे त्यो त्यो चानन प्रम का दिखलावे।
प्रम की कला जब होई परतीत, तब यह मनुआँ मया ज्ञान संगीत।
आठ पहर सत करनी सोचे, भाव भगत मन अन्तर लोचे ।
सत करनी में मन उठ उठ घाये, बढ़े परताप सब कलह बिनसाये।
भागवान सो पुरख विवेकी, साची भगत मन अन्तर लेखी।
सच करनी से मन तृप्ताया, पूरण पुरुष अवनाशी घर पाया।
नित नमाना हो विचरे जग माही, सकल जगत में सुख वरताई।
मान मोह संकट अत जाई, निर्मल प्रेम हर भगत कमाई।
सत सील सन्तोष और, परसे पर उपकार।
'मंगत' एह धरम पहचान के, मन के हरे विकार ।।

प्रवचन

जीव शरीर रूपी संसार को धारण करके जब से विराट संसार में आया है तब से अनेक तरह के कौतुक देख रहा है। जो भी जीव आता है संसार को सत समझकर इसी को ही सब कुछ मानने लग जाता है। ऐसा अद्भुत संसार रूपी मेला है, जो भी आया इसको देखकर मोहित हो गया। कोई ही विवेकी विचारवान प्राणी संसार के चक्कर को देखकर विचार करता है कि यह क्या बना हुआ है? किसने इस हरे-भरे फले-फूले बाग को सरजीवित कर रखा है। सैर करने वाले बागों में हजारों की तादाद (संख्या) में जाते हैं। कोई एक- आध आदमी ही बाग के बनाने वाले माली का विचार करता होगा। आम जीव वाह-वाह करके मेला देखकर वापिस चल देते हैं। संसार रूपी बाग को देखते सब ही हैं किन्तु संसार बनाने वाले का विचार कोई विरला ही करता है।

अद्भुत लीला देख के, मोहे सुखदेव मुनी ज्ञानी।
और जीव की गत क्या, जो नित भ्रम लिपटानी।।

किसी समय जरा विचार करके देखें तो सही, संसार में तेरा असली साथी कौन है? किसके आधार पर तू संसार में विचर रहा है? साढ़े तीन हाथ का पिंजर बनाने वाला भी कोई है। आंख, कान, नाक, त्वचा, जीभ और कर्म इन्द्रियाँ किस शक्ति के आधार पर काम कर रही हैं? कभी किसी ने सोचा है? अनेक तरह के अन्दर पदार्थ डाले जाते हैं। हड्डी, मांस, मज्जा, थूक आदि किस तरह बन जाते हैं? पहले इस शरीर रूप संसार का विचार करना चाहिये तब जाकर बुद्धि जाग्रत होती है। सत्संग में शरीर, आत्मा, परमात्मा का ही निर्णय हुआ करता है। पहले ऋषियों के जमाने में जब भी मिलकर बैठना होता था ज्यादातर आत्मा सम्बन्धी विचारों पर ही विचार होते थे। सत्संग को मेला समझकर नहीं आना। इस जगह आकर मौत और जीवन का विचार सुनना है। जीवन शक्ति का विचार ही असली जिन्दगी देने वाला है। इधर कोई बड़े-बड़े संस्कृत के श्लोक नहीं सुनाये जा रहे। न यह लम्बा-चौड़ा पढ़े हुए हैं। मोटी-मोटी बातें जिन्दगी और मौत को अच्छी तरह समझने वाली की जा रही हैं। शरीर की पूजा सेवा में हर शरीर धारी जीव लगा हुआ है। जन्म से लेकर आखिर तक इसी के वास्ते जीवों की सोच बनी रहती है। मनुष्य तो क्या पशु और जड़ योनियों में भी जीव बढ़ने की कोशिश जारी रखते हैं। किसी पेड़ को ही लो, वह आसमान की तरफ ऊंचा उठने का यत्न कर रहा है और फैलने की कोशिश कर रहा है। उस पर भी बहार और खिज़ां (पतझड़) को मौसम असर करता

है। किसी पशु और जड़ योनि में जीव को कोई सोझी नहीं। केवल इस मनुष्य चोले में ही अपने आपका विचार कर सकता है। हजारों जीवों ने इस मनुष्य चोले में ही ऊंची से ऊंची सद्गति को प्राप्त किया है, जिनको अवतार, गुरु, पीर, पैगम्बर कहते हैं।

हर समय याद रखो कि शरीर बदलने वाली चीज है। संसार में तू अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा। यह भी निश्चय जान कि तेरा रूप-रंग एक रोज जरूर बदल जायेगा। जिस कद्र तूने संग-साथ बना रखा है सबको तू छोड़ देगा या तेरे सम्बन्धी तुझे त्याग देंगे।

"गौर नमानी सद करे, नेह घरया घर आ।"

जिन्दगी में अपने किये को पहचानना ही असली काम है और जिस कद्र जीव ने पसारे फैला रखे हैं, प्राण किले के टूटते समय सब दुःख रूप हो जाया करते हैं। होश में जीवित काल के समय किसी दुःखी, दीन, अनाथ की परवाह नहीं की जाती। जब तक किसी का दुःख-दर्द नहीं बाँटा जाता, अपने सुख तक्सीम नहीं करना चाहता, परलोक में सुख की मनोकामना कैसे पूर्ण हो सकती है। सखावत (दान) करने वाले और मालिक की याद में रहने वाले ही लोक-परलोक में सुखी हुआ करते हैं। जीव जब शरीर को छोड़कर चल देते हैं, बाद में सबके सम्बन्धी रोते हैं, चिल्लाते हैं।

बाँगाँ दी रानिये भुख्खी प्यासी गई हैं।
मुल्खाँ दिया बादशाह सब कुछ छोड़ गयों।।

संसार से जाने वाले सब जीव आखिर भूखे और प्यासे ही जाया करते हैं। कोई राजा-राणा कुछ भी हमराह (साथ) बांधकर नहीं ले जा सकता। मेले ने एक समय शुरू होकर खत्म जरूर होना है। जो भरे हुए मेले को छोड़कर घर लौट जाते हैं, वे सुखी रहा करते हैं। जो सब कुछ प्राप्त करके भी सारे माल इकबाल (धन-दौलत) को प्रभु की दात समझे, सो बुद्धिमान है। यह ज़रा मुश्किल रास्ता जरूर है। इसमें दृढ़ता के बगैर चित्त के अन्दर धीरज, सन्तोष नहीं आ सकता। संसार की कोई वस्तु धीरज देने वाली नहीं। जीव की सब कोशिश आखिरकार बेकार हो जाती है, जिस घड़ी संसार छोड़ने लगता है। इस वास्ते संसार को छोड़ने से पहले सत् यत्न को धारण करो जिससे जीवन काल में भी सुखी रहो और इस पिंजर को छोड़ने के बाद भी सुखी हो। ईश्वर सद्बुद्धि देवें ताकि संसार से सफलता प्राप्त करके चलें।

वैराग्य वाणी

काल क्रीड़ा नित करे, उठके गुनी विचार।
सूर बीर बलवान हो, सबका करे शिकार।।
भयकारी यह काल है, चराचर भूत कम्पाये।
तिसकी गरजत देख के, आसन विरंच डोलाये।।
पीर पैगम्बर औलिया, सिद्ध तपी अवतार।
काल सन्देसा सबको, लागा बड़ा अपार ।।
ऐसे दुःख सन्ताप में, क्यों सोया मूढ़ गँवार।
काल चौसर नित खेलता, पल पल पासा डार ।।
काचे कुम्भ में नीर यो कब लग रहत समाये।
ओह फूटा ओह बह गया, सरब खेल मिट जाये।।
काल रूपी वृक्ष पर, आये बसेरा लीन।
छिन छिन पल वह खा रहा, उठ मूढ़े तत्त को चीन ।।
धन जोबन के मद में, मत होवो गलतान।
काल शिकारी ताकता, मारे खिच के बाण ।।
ना किसी की बनी रही, ना बनेगी मीत।
जो बनी सो बिगड़ी, मत राखें परतीत ।।
ज्ञानी गुनी चतुर बुद्ध, एह तत्त करो विचार।
कहाँ से आया कहाँ जावना, कहाँ में पाय पसार।।
रंचक मात्तर सुख नहीं, इस कूड जगत भरवास।
"मंगत" रचना स्वपन की, खेले काल तमाश।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! दृश्यमान संसार को देखकर हम सब नित ही मोहित होते रहते हैं। मन की ममता का किस तरह नाश किया जावे। ज्यों-ज्यों मोह बढ़ता है संसार सुख रूप दिखाई देता है। एक पलक के वास्ते भी संसार के सुखों को भूलने की कोशिश नहीं करते?

गुरुदेव : प्रेमी सुनो ! जिन्होंने सिर पर छाई डाल रखी है, सिर मुंडा रखे हैं या कोई नंगा है या जल में खड़ा है, कोई धूनी ताप रहा है या लम्बी-लम्बी जटा बढ़ा रखी है या अनेक तरह के सांगोपांग व भेख इस वास्ते धारण कर रखे हैं

कि ममता का नाश हो, मगर उनकी ममता संसारियों से भी अधिक बढ़ी हुई पाई जावेगी। जिनको गुरु गुसाईं सन्यासी समझकर पूजते है वह भी माया के फेर में पड़े हुए हैं। जो भी संसार में आया है संसार को देखकर मोहित हो रहा है। जिन्होंने संसार को देखा और उसे समझने का यत्न किया उन्होंने जान लिया कि संसार क्या है और जब उसे बदलने वाला जानकर संसार को बनाने वाले की खोज की, ऐसे विवेकी जीव ही ममता के जाल को समझकर इससे पीछा छुड़ाने की कोशिश करते हैं। मन की ममता का नाश करना कोई आसान काम नहीं है। बुद्धि रोम-रोम में फैली हुई है। ममता करके संसार के सब जीव हर समय फैलाओ कर रहे हैं, ममता रूपी रोग का हर जीव रोगी है:-

ममता माई जन्मत खाई, काम क्रोध दो मामा।
मोह नगर का राजा खाईयो, तब पहुंचयो उस धामा।।

मोह करके सब विकार परगट होते हैं। बड़ा खुशनसीब वह जीव है जो रोग को समझकर उसका इलाज करता है। माया के चक्कर से मुखलसी हासिल करनी है। किसी से इस चक्कर से छूटने का रास्ता पूछकर चल दे। सारी उम्र यह पूछने में ही नहीं गुजार देनी चाहिए कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार विकारों से किस तरह छुटकारा हासिल किया जावे। ममता का नाश करने वालों से पूछ कि इस रोग से किस तरह मुखलसी (छुटकारा) मिलती है। और फिर जो इलाज वे बतलायें उसे शुरू कर दे।

"रंग लागत लागत लागत है, भ्रम भागत भागत भागत है"

संसारी सुखों को जब लात मारेगा, उसे दुःख रूप समझेगा तब शरीर की तबदीली दृढ़ निश्चय से जानेगा। शरीर को किसी दूसरी शक्ति के आधार पर खड़ा रहने वाला जानेगा। तब कई प्रकार के विचारों द्वारा बुद्धि, मन के अन्दर उदासीनता आवेगी। जब तक मन फीका नहीं होता तब तक इसका रास्ता नहीं बदलता। स्कूल में एक दिन जाने से सारा सबक नहीं मिल जाता। सत्संग में आया करो और सत् असत् का निर्णय समझो। अब रात शुरू होने वाली है फिर किसी समय आओ। बुद्धि को खोलकर चलना चाहिए। सन्तों की परख करते रहा करो।

प्रेमी : महाराज जी, मन को वश में करने का क्या तरीका है? गुरुदेव : प्रेमी ! पहले जीवन के सही और गलत हालात को समझो। जीवन के हालात को हर एक समझता है मगर सही नहीं समझ रहा है और सही न समझने के कारण गलत हालात को पकड़ रहा है। मन एक ऐसी चीज है कि जब तक गलत और सही का निर्णय न समझे, यह सही तरफ नहीं जायेगा। मन को पकड़ने का तरीका ईश्वर के परायण होना है। इस तरीके को किसी महात्मा से प्राप्त करके हृदय से धारण करो। सही निश्चय से इसे पकड़ो । उसी तरीके को धारण करते-करते मन वश में हो जाएगा।

प्रेमी : महाराज जी, कौन से साधन से मनुष्य की वृत्ति वैराग्यवान हो सकती है?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! गुरु के वचनों में अटूट विश्वास करने से तू आप ही वैराग्यवान बन जावेगा। इसलिए गुरु के वचनों को अपनी मानसिक खुराक समझकर नित्य प्रति उसका सेवन करना गुणी पुरुषों का धर्म है। सन्तों के पास हमेशा ऐसे ही गुणों को लेने के लिए जाना चाहिए जिससे अपने जीवन का सुधार प्राप्त हो और यह बुलन्दी की तरफ जा सके। नदी के पास अगर हर रोज तू जाता रहे और अगर किसी वजह से ठण्डा पानी पीने को न मिले तो न सही ठण्डी हवा तो मिल ही जावेगी। अगर हवा भी न मिले तो कम से कम जितनी देर तू उस नदी के पास रहेगा तेरा मन एकाग्र होकर तुझको कुछ शान्ति अनुभव करा देगा और एक न एक दिन नदी के पास जाने से सारे औसाफ (गुण) तुझको प्राप्त होंगे। इस तरह कुछ मिले, न मिले, सन्त महापुरुष तथा भक्तों के पास हमेशा जाते रहो, भले ही वहां कुछ न मिले और सब कुछ छोड़कर आना पड़े पर जाओ रोजाना जरूर, फायदा जरूर होगा। वे एक न एक दिन कृपा कर देवेंगे जिससे तेरा कल्याण अवश्य हो जावेगा। शर्त एक और है कि अपनी नियत ठीक करके चलो और निडर होकर रहो, कोई कलेश बाकी न रहेगा।

प्रेमी : महाराज जी, इबादत (भक्ति) करने के लिए क्या-क्या बातें जरूरी हैं? गुरुदेव : प्रेमी जी, गौर (विचार) और यकसूई (एकाग्रता) के बगैर इबादत होनी मुश्किल है। सबसे पहले बुद्धि को एकाग्र करके जिसकी इबादत करने चले

उसके वास्ते चित्त में तड़प होनी चाहिए, फिर गौर प्राप्त होगी। तब इबादत करने लायक बनोगे।

प्रेमी : महाराज जी, मन चंचल तो पवन से भी अधिक है। बड़ी कोशिश की जाती है पर एक धारा पर नहीं आता। आसान युक्ति (तरीका) कृपा करके फरमायें जिससे चित्त ठहर जावे?

गुरुदेव : प्रेमी, बहुत लोगों ने सिर पर छाई (राख) डाल रखी है, बड़ी-बड़ी जटाएं बढ़ा रखी हैं धूनियाँ तापते हैं, उलटे लटकते हैं, पानी में खड़े होकर तप करते हैं, परन्तु यह मन ऐसा बिकराल है कि रास्ते पर नहीं आता। जीते जी मर जाओ, साहिब से प्रेम बनाओ, संसार की प्रीति बिल्कुल खत्म कर दो, पिंजर - को सुखा दो, तब जाकर तार अन्तर विखे खड़केगी। मालिक की कृपा तो रग-रग में हो रही है अन्तर्मुख होकर सुनो। यह मन, बुद्धि, देह, इन्द्रियों का विषय नहीं। इन आंखों से देखा नहीं जाता, यह कान श्रवण नहीं कर सकते, रसना चख नहीं सकती, कर्म इन्द्रियों द्वारा महसूस होने वाला नहीं जो तुम्हें पकड़कर दिखाया जावे। यह तो अपने अनुभव का मार्ग है :-

नाम प्रभु का हिरदे बसे, मन पवन कीजे इक ठौर।
अन्तर माहीं शब्द परगासे, सुरत भई मखमूर।।
रोम रोम में नित गुंजारे, शब्द पुरख निर्वान।
प्राण अपान को सम कर राखे, निरखे अनहद की तान।।
पिण्ड ब्रह्मण्ड की सोझी पावे मन वच कर्म कीजे इक ठौर।
गगन गुफ्त्र बहती अमृत धारा, पीवे कोई गुरमुख सूर ।।
आशा तृष्णा जेवड़ी, बान्धे चराचर भूत।
माया प्रम की अस्चर्ज है, साघ के पार्य वस्तु अनूप ।।
जन्म जन्म का टूटा गाण्डे, पाये चित परतीत।
निर्मल कर्म को धार के, चलयो भव जल जीत।।
काची काया में अमृत मरया, नित बोले निर्मल बानी।
नित नित ध्यान घरो परमाती, कटे करम की खानी।।
भाग होय अन्तर चानन होया, पाई गत निर्वास।
"मंगत" सरब का ठाकुर पायो, आद निरंजन अविगत अबनास ।।

प्रेमी ! उसके बगैर कोई और दूसरा हो तो उसे समझाया जावे। सब जीव-जन्तु उस मालिक का रूप हैं। जो भी चित्त से उस मालिक के परायण हो जाता है वह एक दिन पहुंच ही जाता है। रास्ता तुमको पता ही है। जिस प्रेम से संसार की तरफ दौड़ते हो उससे दुगुने प्रेम से भी दो घड़ी मालिक के चरणों में चित्त दे दो तो काम बन जाये। निर्मोह होकर चलना बड़ा ही कठिन है।

चलो चलो सब कोई कहे, विरला पहुँचे कोय।
जाँ को सतगुर मिलन गे, ताँ को मालुम होय ।।

फिर कभी आना हुआ तो और पूछ लेना। इतने दिन इधर ठहरे रहे, क्या सोचते रहे हो? जाओ, अब आराम करो। फकीरों के पास ज्यादा न बैठा करो।

घर फेंका जिन अपना, लिया चोहाता हाथ।
अब फेंकेंगे उसका, जो चले हमारे साथ ।।

प्रभु चरणों से निर्भयता की प्राप्ति

वाणी

सत सरूप को सत कर माना, सत विश्वास हिरदे पहचाना।
मन की मैल को नित नित धोए, सतगुर की नित कथा पिरोए।
सत आधार जीवन को पाई, जब सत सरूप अनुमव लखाई।
जलन माही तिस ठाण्ड पछानी, मिरतक में जीवन को जानी।
संशे त्याग नेहसंशक होई, केवल संशा प्रभ रूप लखोई।
भयो बौरा और नादाना, लागी प्रीत चरन भगवाना।
लोक कटुम्ब नहीं हिरदे भाये, फीका जीना जग दिखलाये।
मन अन्तर से भयो विरक्ता, सत सरूप अनुभव संजुगता।
मन की बात मन में धारी, मुख से कहे ना भेद अपारी।
जिस तन लागी बिरह प्रम आये, प्रेम अगन में राख हो जाये।
खाना पीना मूल ना भावे, छम छम नीर नैनों से आवे।
आसा जीवन की सब त्यागी, प्रम के चरण की प्रीती जागी।
रंग पीला मुख घनी उदासी, नैनां गम्भीर प्रभ दरस प्यासी।
नित नित पंथ पिया दा खखोजे, बिन हरी रूप ना दूजा सूझे।
मिल सतगुर सब प्यास बुझाई, प्रम मिलन का लेख लखाई।
निर्मल नाम चित्त लड़ी पिरोई, जन्म जन्म की मैल को धोई।
सिमरे नाम केवल प्रभ एका, निश्चल चित्त धार विवेका।
प्रम का नाम इयूँ चित्त गाए, स्वाती सीप ज्यों प्रीत लखाए।
द्वन्द्व विकार से उपरस होई, परमानन्द चित्त प्रीत परोई।
पूरन भाग सो जन जग आया, मुक्त अमीरस भेद लखाया।
वारापार कठिन संसारा, हर जन पायो केवल निस्तारा।
उत्तम कीरत प्रम की जानी, सरब जगत का ठाकुर मानी।
सत प्रीती प्रभ संग पाई, पूरन जुगत अनुभव लखाई।
अनुभव रूप मुक्त परकाश, सहज सहज मन लेवे निवास।
मन की व्याधी त्याग के, प्रभ चरण पायो विश्वास।
"मंगत" प्रभ के ध्यान से, निर्भय लीना वास ।

प्रवचन

मन का स्वभाव है कुछ न कुछ सिमरण करते रहना। संसारी विषय-वासनाओं का सिमरण करते-करते उनका ही रूप हो जाता है। प्रभु का सिमरण करना इसके वास्ते मुशकिल हो जाता है क्योंकि जन्म-जन्मान्तर से इसका बाहिरमुखी माया से लगाव बना हुआ है। सत के परायण नहीं हो सकता। अधिक विकारों की अग्नि में हर एक जीव अपने आपको हवन कर रहा है। जब तक संसार को दुःख रूप नहीं समझता तब तक इससे छुटकारा पाने का यत्न भी नहीं ढूंढ सकता। कुछ जीव समझते हैं कि गंगा में या अमृतसर से स्नान करके छुटकारा मिल जायेगा। दो पैसे अरदास करके मुक्ति मिल जाएगी।
कबीर कहते हैं :-

राम के कहे जगत तर जाई, खांड कहे मुख मीठा।
पावक कहे पांव जो जराई, जल कहे तृखा बुझाई।
भोजन कहे भूक जो भागे, तब दुनिया तर जाई।
बिन देखे बिन दरस परस बिन, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनी जो होई निर्धन रहे ना कोई।
साची हेत विषे माया से सतगुरु शब्द की हाँसी।
"कबीर" कहे गुर से बेमुख बाँधे जम पुर जॉसी।

दुनियां वाले ईश्वर से भी सौदाबाजी करना चाहते हैं। करें करायें कुछ न, आंखे बन्द करें ईश्वर के दर्शन हो जायें। मायापरस्ती जिस समय बढ़ जाती है उस समय ऐसी हालत होती है। ईश्वर चिन्तन से बेमुख होकर सन्तों के वचनों को महज एक जीवन निर्वाह के वास्ते इस्तेमाल करना कहाँ तक उचित है। धर्म इस समय पेट पूजा का धन्धा बना हुआ है। हर समय अन्धकार की पूजा जारी है। ईश्वर के प्यारे तो त्यागी, अनुरागी दुनियां से अलग रहकर जीवन गुज़ार जाते हैं। बाद में उनकी जूठी पत्तलें चाट-चाट कर बड़े ज्ञानी-ध्यानी कहलाने लग जाते हैं। बड़ी-बड़ी गद्दियों मठ बन जाते हैं। एक ईश्वर सिमरण है, एक संसार का सिमरण है। एक सिमरण बन्धन से मुक्त करता है। संसार का सिमरण बन्धन दर बन्धन डाले रखता है। बन्धन से छूटने के वास्ते हर समय क्षमा, दया, धीरज, त्याग आदि

महागुणों की जरूरत रहती है। जो भी प्राणी प्रेम और श्रद्धा से महागुणों को धारण करता है वह ही निर्विकार होकर शुद्धताई को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य जानें में ही यह जीव शान्ति रूपी परम पदार्थ को प्राप्त कर सकता है इस वास्ते अपने आप को धर्म परायण करते हुए नित्य प्रभु आज्ञा में दृढ़ करना चाहिए। तब ही इस भयानक माया जाल से छुटकारा प्राप्त कर सकेगा। कबीर को ब्राह्मणों ने बड़ा तंग किया (सताया) था कि यह पूजा वगैरा कुछ नहीं करता, खाली पाखंड बना रखा है। कबीर भी गुरु पूरा था, आगे से उसका जवाब पूरा होता था।

न हम पूजें देवी देव, न हम फूल चढ़ाई।
न हम मूरत घरी सिंहासन, न हम घण्ट बजाई ।।
काशी में जो प्राण त्यागे, सो पत्थर भये भाई।
कहे "कबीर" सुनो भाई साधो, भरमे जन भकवाई।।
लख चौरासी जीव जन्तु हैं तों में रमता हम ही रही।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, सत नाम तुम काहे न गही।।

पूर्ण फक्कड़ साधु था, किसी से डरता न था। सन्त हमेशा सच्च ही कहते आये हैं। केवल एक सत् शक्ति को मानना और मनवाना उनका परम लक्ष्य था। अपनी तरफ से अन्धेरा निकालने की सन्तों ने बड़ी कोशिश की है मगर दुनियाँ वालों का अपना ही रास्ता है। हिन्दू मुर्दा-पूज कौम है, जिन्दगी में किसी की नहीं मानते। जब संसार से सन्त चले जाते हैं फिर उनकी मिट्टी को पूजने लगते हैं। जिस-जिस जगह कदम रखते हैं उसको सिर का साहिब बना लेते हैं। क्यों, कहते हो न "तरन तारन साहिब", "पंजा साहिब" वाह-वाह उनका ऊँचा जीवन था। उनके नक्शे कदम पर तो चलना नहीं, खाली उनके नाम के पीछे क्या-क्या उपद्रव हो रहे हैं। उन्होंने हिन्दू कौम की रक्षा का भार उठाया था, यह उसके कातल बन रहे हैं। सत्पुरुष तो प्रेम से मिलकर रहने का सिद्धान्त बतलाते हैं ताकि जीव बड़ी शान्तिपूर्वक मिलकर खुशी-खुशी जीवन गुजार सकें। ईश्वर इस भयानक काल में सब जीवों को सुमति बख्शें ताकि संसार में आने का यथार्थ लाभ समझ सकें।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! अपनी तरफ से आप सारी बातें कह देते हैं कि बोलने की गुंजायश नहीं रहती। एक प्रार्थना है कि ईश्वर को ऐसा मंजूर ही होगा तब ही अनेक ख्याल के जीव पैदा हो जाते हैं। अपना-अपना मजहब पंथ दायरा बनाकर चलने लग जाते हैं। हर एक पंथ मत वाला यह ही कहता है कि मेरी तरफ आओ तब तुम्हें निजात मिलेगी, मैं मुक्ति दिलाऊंगा। ऐसे भ्रम भुलेखे में कई बार पड़ जाते हैं। खासकर पढ़े-लिखे लोगों का कुछ नहीं कह सकते। आप जी हमारे सामने हैं इस वास्ते हम कुछ किसी नतीजे को समझकर चलने वाले बन सकते हैं, वरना चारों तरफ फंसाने का चक्कर ही बना हुआ है।

गुरुदेव : प्रेमी जी ! यह आज की बात नहीं, शुरू से ही दोनों हालतें चलती आ रही हैं। यह मार्ग समझदार बुद्धिमान लोगों का है। राजे लोग राज को छोड़कर शान्ति के वास्ते ऋषियों के कहने के अनुसार चलकर परम स्थिति को प्राप्त होते थे। मामूली साधारण जीवों को जिधर लगाओ उधर चल पड़ेंगे। विरले ही सन्त समझाने वाले भाग से मिल जाते हैं। "अन्धा ते बन्धा", चलने वाले को रास्ता मिल ही जाता है। ईश्वर ने सबको बुद्धि दे रखी है। संसार का लोभ-मोह कुछ करने नहीं देता। जितने भी मज़हब पंथ हुए हैं सबने प्रभु परायण होने की हिदायत की है। प्रभु परायणता का मसला मुश्किल से बुद्धि में बैठता है। इस वास्ते सन्तों ने गुरु परायणता सिखाने की कोशिश की जिस करके अलग-अलग पंथ बन गये। मुक्ति को तो कोई नहीं चाहता। एक लकीर पीटने वाली बात बाद में रह जाती है। गीता से बढ़कर किसी ने क्या फलसिफा बयान करना है। मगर कौन चल रहा है। वैसे ही थोड़ी तालीम मुहम्मद ने दी। जिस्म और जान दो अलग-अलग चीजें हैं। केवल यानि वाहिद एक अल्लाह के सिवा दूसरा उसका कोई सानी नहीं है। यह ईश्वर भक्ति नहीं तो और क्या है? अब क्या सूरत इख्तयार कर गये हैं। जितने भी गुरु-पीर, अवतार, पैगम्बर हुए हैं असल में वे ही सच्चाई को मानने वाले हुए है। बाद में धारा बदल ही जाती है। तुम दूसरों को छोड़ो इस बहस में मगज़ यानि बुद्धि चंचल हो जाती है। तुमको रास्ता ठीक समझ में आ गया है न, किस-किस को जाकर रास्ते का राज समझाओगे? जब रोशनी होती है परवाने आ ही जाते हैं। जिस-जिस के भाग में होगा आप ही

चलकर आयेगा या इनको प्रेरक शक्ति ले जायेगी।

प्रेमी : महाराज जी। गरीबों पर भी निगाह बनी रहनी चाहिए। हमारी बुद्धियाँ हद से ज्यादा कीचड़ में फंसी हुई हैं। आपने ही हिम्मत करके निकालना है।
इसी वास्ते परमात्मा ने आपको यहाँ भेजा है?

गुरुदेव : प्रेमी ! सन्त तो दयालुता के वास्ते आ ही गए हैं। जो कुछ यह कह रहे हैं, श्रवण करके मनन निध्यासन करें। इसी में सब कुछ है। यत्न तुमको करना पड़ेगा। फेंक से पार करने वाले यह सन्त नहीं हैं। सारी उम्र कूड़ कुसत तुम करते रहो पल में ये किस तरह उद्धार कर देंगे। वैसे कोई बड़ी बात नहीं, बुद्धि का रुख ही बदलना है। संसार को तीन काल झूठ असत् और दुःख रूप समझकर ईश्वर को सत् और परम सुख रूप जानकर बारम्बार उसके परायण होवें। एक दियासलाई की तीली बड़े से बड़े घास, लकड़ी के ढेर को खत्म कर देती है। जो भी कर्त्तव्य मन चित्त से किया जाए निष्काम भाव से किया जाए। बस, फिर कोई देर नहीं लगती। सन्त तो सही रास्ता दिखला सकते हैं, उस पर अमल आपने ही करना है।

प्रेमी : महाराज जी ! आपने तो जनता पर कृपा करनी है, आप सर्व समर्थ हैं, आपके आगे कोई बडी बात नहीं। शरीर और आत्मा दोनों का भेद योगी जन जानते हैं? (गुरूदेव से उनके शारीरिक रोग को दूर करने की प्रार्थना) गुरुदेव: प्रेमी! शरीर ने भी अपने कर्म भोगने हैं। कर्म गति बड़ी गहन और विचित्र है। आज बेशक रामचन्द्र जी को अवतार कहें मगर जो-जो कष्ट उन्होंने उठाये वशिष्ठ जैसे गुरु यह न बता सके कि सुबह बनबास होगा या शाही सिंहासन। बाकी उसके भाने में विचरना ठीक है। इलाज में प्रेमियों ने कोई कसर नहीं रखी। इस समय कोई तकलीफ नहीं, मामूली भारीपन किसी समय महसूस होता है। उसका बन्दोबस्त बादाम रोगन प्रेमियों ने रखा हुआ है। जब तक यह शरीर खड़ा है अक्सर कोई न कोई रगड़ा लगता रहेगा। अब इनको दो बार दूध लेना बोझ लग रहा है। दो-चार रोज और देखते हैं। एक दफा सुबह का ही समय निश्चित कर दिया जाएगा।

प्रेमी : महाराज जी ! यह भूख भी एक बला चिपकी हुई है?

गुरुदेव : प्रेमी। महाविकार भूख, प्यास, निद्रा में हर एक जीव लाचार हो रहा है। इन्द्रियों के और भी जितने विकार हैं सब इनके बाद ही शुरू होते हैं।

उन पर काबू पाना ही योग्यता है। रसना इन्द्रिय के वास्ते हजारों किस्म के पदार्थ हैं। किसी भी रस पदार्थ द्वारा यह इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं। आँखें देखने के वास्ते ललचा रही हैं नये से नये दृश्यों को, कान सुनने की चेष्टा कर रहे हैं। नासिका सूंघने का काम कर रही है, त्वचा गर्मी सर्दी को महसूस कर रही है, नरम-सख्त का पता दे रही है। ज्ञान इन्द्रियों, कर्म इन्द्रियाँ अपना-अपना धन्धा करती रहती हैं। कैसा अश्चरज देह मन्दिर प्रमु ने साजा है। इसे बनाकर आप इसमें रहता हुआ भी इस सारे झगड़े से अलग थलग है। इसमें जो बुद्धि है जिस समय वह देह को अपना स्वरूप मान लेती है, अपने निज स्वरूप को मूलकर रंगा-रंग के दुःख-सुख महसूस करने लग जाती है। जब कोई विवेकी सज्जन समझाये तब समझकर इस दुःख भरे संसार से परे होने का यत्न शुरू कर देती है। मगर कोई भाग्यवान संसारी जीव ही अपना रास्ता बदल सकता है। न सृष्टियों का अन्त है, न अनन्त जीवों का पता लग सकता है। युग-युगान्तर से यह लीला हो रही है। अनन्त गुरु, पीर, अवतार, ऋषि, मुनि, ज्ञानी आये, नेति-नेति कहकर अलोप हो गये। अगर यह जीव गौर से अपना हिसाब लगाये तो किस शुमार में यह जीव आता है। वाह मेरे मालिक, बेअन्त तेरी माया है। अच्छा प्रेमियो, आराम करो।

वैराग्य वाणी

इच्छा ताप गया सब मन का, निरइच्छित जाना घामा।
पल पल अन्तर सोब लखाई, सतशब्द पायो सतनामा।।
अविनाशी शब्द घट अन्तर सूझे, सुरत निरत कीना एका।
कर्म त्याग नेहकर्मगत पाई, पद लखयो परम विवेका।।
निर्भय शान्ति मन को होई, अन्तर मगन समाया।।
नाम रसायन रसना खा के, सब जीवन ताप गंवाया।।
साध जना के चरण बलिहारे, जिन जीवन सार दिखलायो।
'मंगत' अन्तर मारग लागा, अकाल पुरख घर पायो ।।

जीवन की सफलता - सत नियमों का पालन

वाणी

अचरज लीला ये जग खेला, पूरन पुरख ने रचयो मेला।
आप ही सबमे रहया वरताई, अपनी गत मित आपे पाई।
आप देव असुर का रूप, आपे रंक आपे भयो भूप।
आपे पण्डित करे विख्यान, आपे श्रवण करे घर ध्यान।
आपे दाता होवे दातार, आपे मांगे भीख भुख धार।
आपे शूर वीर बलवाना, आपे कायर तजे मैदाना।
आपे तपीशर नित तपधारी, आपे भोगी भोग विचारी।
ऊंच नीच में आप समाना, हरती कीटी और चारे खाना।
आपे मगत रूप को धारी, अपनी लीला आप विचारी।
आपे धरती अम्बर परगासे, आपे पावक नीर बलासे।
आपे सरजन दुर्जन होई, सरब जन्त इक लड़ी परोई।
आपे हिकमत हुकम रवाल, आपे सरव में रहे दयाल।
अपना आप पहचाने जोए, सबमें देखे एको सोए।
इन्दर चन्दर भान परगासे, देवी देव कर अरदासे।
गुप्त परगट आप समाई, आपे नाथ और दास कहलाई।
अपनी पूजा आप पुजावे, इत उत आपे आप दिखावे।
अपरम अपार पुरख परताप, आपे कीजे अपना जाप।
निर्मल तत्त सरब समाई, सबसे न्यारा आप रहाई।
बिस्माद ज्ञान अपरम अपारा, अपनी करनी करे विचारा।
आद अन्त ना तिसका कोए, सरव प्रापत न्यारा सोए।
जिस जाना यह तत्त ज्ञान, सर्वज्ञ ब्रह्म करी पहचान।
पूरन पूर सरब इक रंग, विरला बूझे यह परसंग।
इच्छया करम से भयो जन मुक्ता, तत्व सरूप आतम संजुगता।
मोह माया सब गयो अन्धकारा, सरब आतम आए दृष्टयरा।
सब जग रूप ब्रह्म का, भेद भरम नहीं कोए।
'मंगत' सत तत्त खोजिये, फेर जनम नहीं होए।।

प्रवचन

प्रेमी ! और शब्द कोई नहीं रहा था? ऐसे शब्द आम संसारियों के वास्ते नहीं हुआ करते। विचार करने के बगैर ही 'सरब ब्रह्म ही है जरूर मान लेंगे, जिससे खुली छुट्टी मिल जाए। बेशक सारा संसार ब्रह्म का ही स्वरूप है, इस विचार में कोई बनावट नहीं, मगर यह तत्व ज्ञान आम व्यक्तियों का नहीं है। कोई विरला ही ऐसी स्थिति वाला संसार में भाग्यशाली जीव होता है। जबानी ब्रहा कह लेना या बनना आसान है। इम्तहान में विरले उतरा करते हैं। जिस्म और जान यानि प्रकृति और पुरुष यानि जीव और आत्मा इसका निर्णय करते-करते जिन्दगियों खत्म हो जाती है। शारीरिक विकारों पर तो काबू पाया जाता नहीं 'सब ही ब्रह्म है' कहकर भोग योग को एक कर रहे हैं। ऋषि-मुनियों को हजारों बरस जंगलों में रहकर तप करने की क्या जरूरत थी? प्रभु की माया बड़ी बेअन्त और बिस्माद स्वरूप है इसको समझना कोई मामूली बात नहीं। **'ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर'** ऐसा सत्पुरुषों ने कहा। पर ब्रह्मज्ञानी हो तब। भोग ज्ञानी जो है वह भोले-भाले लोगों को **"सर्व ब्रह्म ही है"** का ज्ञान देकर विकारों में आप भी डूबे हुए होते हैं और दूसरों को भी विकारों में प्रवृत्त कर देते हैं। कभी भी अनाड़ी जिज्ञासु को ब्रह्म ज्ञान का उपदेश नहीं करना चाहिए। अच्छे गुरु, सन्त हमेशा जिज्ञासु को विकारों से निर्विकार होने का सबक (शिक्षा) देते हैं। जब तक जीव इन विकारों में डूबा हुआ है उससे किसी ज्ञान विचार पर अमल होना मुश्किल है। जो गुरु उपदेशक जिज्ञासु को पहले सदाचारी जीवन बनाने का भेद नहीं समझाता वह स्वयं दुराचारी है और उसके उपदेश से कभी किसी का कल्याण होने वाला नहीं। ब्रह्मज्ञानी को तीन काल कोई विकार उत्पन्न नहीं हो सकता। सारे संसार के जीव शारीरिक विकारों की अग्नि में तपायमान हो रहे हैं। एक ब्रह्मज्ञानी का हृदय ही परम शान्त स्वरूप होता है। सर्वात्म भावना उनकी ही है और किसी की नहीं हो सकती। तत्व रूप आत्मा से संयुक्त होना ही महान कर्तव्य है और सब अधूरे और दुःखमय कार्य है। आप ससारी जीवों को जब काम, क्रोध, मोह, लोभ का सामना करना होता है सब ज्ञान-ध्यान एक तरफ रख देते हैं। वे इन विकारों की पूर्ति करना ही अपना

फर्ज समझते हैं। जिस कृष्ण भगवान की मिसाल बहुत लोग देते हैं कि सखियों के संग रासलीला की है, एक तरफ रास कर रहे हैं और साथ ही शेषनाग के सिर पर खड़ा होकर भी दिखाया है। उनकी नकल करने वाले महामूर्ख हैं। वे असली समता तत्व के बोधक थे। भगवान ने जो ज्ञान गीता में बयान किया है उसको समझने की कोशिश करो तब उनकी हस्ती (अस्तित्व) का पता लगेगा। पता नहीं उसने रास लीला की भी है या नहीं। पाखण्डी लोगों ने उसे भी अपने जैसे भोगी बनाने की कोशिश की है और लोगों को गलत रास्ता दिखाते हैं। जिसको चरस, भंग पीने को दिल हुआ उसने शिव जी का नाम लेकर दम लगा लिया, महापुरुषों के ज्ञान-विचार की तरफ ध्यान नहीं देना। यह ही ब्रह्म ज्ञान दुनिया वालों ने समझा है। बुजुर्गों का नाम लेकर जो कुलक्षण काम हैं करते जाओ। पहले अच्छी तरह जिन्दगी और मौत के मसले को समझो, संसार क्या है? जीव कहाँ से आया है, किधर जाना है, आत्मा क्या है, शरीर क्या है, ईश्वर क्या है, अच्छे बुर्जुर्गो की संगत करो, सत्संग महापुरुषों का करो जिस जगह सत्-असत् का निर्णय मिले। जिस तरह ससारी कामों में बुद्धि खोलकर चलते हो उसी तरह धर्म के नार्ग में ज्यादा बाहोश (विवेकशील) होकर चलो। जिस देवी-देवता को मानने वाले बनते हो उसका ज्ञान उपदेश चित्त में धारण करो। जिस ज्ञान-विचार को धारण करके वे देवी-देवता बने हैं वैसे ही उसूल धारण करोगे तो छुटकारा होगा। खाली उनके नाम लेवा बन जाने से कल्याण न होगा। संसारी मोह-लोभ में फंसे हुए जीवों को **"मैं ब्रह्म हूं"** कहना शोभा नहीं देता। जब तक संसार से उदासी न हो जाए यानि चित्त मुतनफर (घृणा करने वाला) न हो जाए तब तक सही रूप में प्रभु परायण नहीं हो सकता। वैराग्य और अभ्यास से जब यह मन अहंकार छोड़ देता है यानि देहाध्यास इसका जाता रहता है तब अन्दर ऐसी सत् बुद्धि पैदा होती है जिससे अपने आपको मालिक का अंश जानने लगता है। ऐसा जानते-जानते उसी का रूप हीं जाता है। वैसे ही "**मैं ब्रह्म हूं"** या **"सर्व ब्रह्म ही है"**, ऐसे शब्द कुहने से बुद्धि भोगों में ज्यादा से ज्यादा फंस जाती है और आखिरकार

ऐसा जीव नाश को प्राप्त हो जाता है। जिनके अन्दर ब्रहा अग्नि प्रज्जवलित होती है उसको तीन काल सब ब्रा ही दृष्टि में आता है। इन्द्रियों की चेष्टा पैदा ही नहीं होती। इच्छाओं पर पहले काबू पाने की कोशिश करो। यह सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत सिमरण आदि गुणों को धारण करने पर जोर क्यों दिया जाता है, इसलिये कि ये विचार ही मन, बुद्धि को निर्मल करने वाले हैं। छलागें नहीं लगानी चाहियें। धीरे-धीरे मंजिल पर पहुंच सकोगे। बिना सत् तत्त बोध के इस जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा मिलने वाला नहीं। अनेक तरीकों से महापुरुषों ने समझाने की कोशिश की है। आत्म सुख और शारीरिक सुख दोनों जुदा-जुदा है। आत्म आनन्द नित्य अखण्ड अविनाशी है, शारीरिक सुख जो इन्द्रियों द्वारा भोग-पदार्थों से हासिल किये जाते हैं, अनित्य हैं यानि न रहने वाले, नाश रूप, हर समय बदलने वाले हैं। सारे संसार के जीव इस माया चक्र में अम रहे हैं। आत्म सुख को कोई विरला ही अनुभव करने का यत्न करता है। ईश्वर उस पर कृपा करता है जो उसकी तरफ जाने का यत्न करता है। संसार में अगर कोई महान कार्य है तो वह आत्म ज्ञान प्राप्त करना है।

घट तेरे में जो रहया नित समाई।
खोज करो तिस की, जो सरव रहया रमनाई।।
जब देह नाश हुई, जीव बहु पछताया।
मूढ मति को धार के, नहीं सार को पाया।।
मानुष देह में, सार तत्त करो विचार।
आतम तत्त खोज, पावें निरधार ।।
नित आनन्द सरब परकाशी, घट घट रहया मरपूर।
"मंगत" उस घर जा बसे, जां बाजत अनहद तूर ।।

ईश्वर तुम सबको सत् बुद्धि बख्शें। अब थोड़े दिन की और तकलीफ रह गई है। इस दफा बहुत समय इनका लिया है। कोई बात दिल के अन्दर रखोगे, सुख पाओगे।

वैराग्य वाणी

सत शरधा को पाये के मन का तजा गुबार।
नित ही साची प्रीत में, प्रम दाता कियो विचार।।
अन्तर्मुख हो गाया, पार पुरख निर्वान।
सिमर सिमर मन निर्मय हुआ, पाई शब्द की तान।।
देह अन्तर तत सूझया, निर्देह आतम देव।
तब ये मन निर्मल भया, पाई अचरज सेव ।।
निर्भय सोही शान्ति, निर्भय सोही धाम ।
"मंगत" गुरमुख विरले, पाये लियो बिसराम ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी। ईश्वर का असली नाम क्या है? अगर "मैं ब्रह्म हूं" न कहें तो और क्या कह सकते हैं?

गुरुदेव : प्रेमी ! ईश्वर के नाम सत्पुरुषों ने बहुत तरह के बयान किये हैं। जैसा-जैसा गुण प्रभु की महिमा का विचार में आया वैसा वैसा नाम धरते गये। वास्तव में उसका असली नाम कोई नहीं है। वह अनामी है। हाँ, जिसको किसी महापुरुष से जो आत्ग अनुभवता का रास्ता मिला है, वह ही नाम समझो। खाली ब्रह्म ब्रह्म कहने से कोई कल्याण नहीं। इस तरह आत्म पद की प्राप्ति नहीं होती। जब तक राग-द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मौजूद है तब तक आत्म सिद्धि नहीं हो सकती। नित्य सत्संग और अपने सत् ग्रन्थों का विचार करो। कोई सत्पुरुष मिल जाए तो उससे आत्म ज्ञान लेकर सत्पुरुषार्थ धारण करो। मन में सन्तोष रखते हुए जीवन-यात्रा में जो कुछ निर्वाह मात्र प्राप्त हो उसी को प्रमु आज्ञा में समझते हुए अपना उद्धार करो।

प्रेमी : महाराज जी, इस जीव का उस परम सत्ता से विछोड़ा कैसे हुआ ?

गुरुदेव : प्रेमी। जिस तरह सागर से जब बादल बनकर दूसरी जगह जाकर बरसते हैं, कुछ पानी नदियों में, कुछ नालों में, कुछ तालाबों में, कुछ घड़े-लोटों में चला जाता है। यह पानी पशु-पक्षी, मनुष्य, आदि जो पीते है वह पेशाब, लहू

पसीना, वगैरा की सूरत इख्तयार कर लेता है। कई रंगों में भटकता रहता है। इसी तरह चार खानी के जिस कद्र जीव देखने में आ रहे हैं, सब के सब उस ब्रह्म से बिछड़ कर नाना प्रकार की स्थावर जंगम योनियों में भटकते रहते हैं।

प्रेमी : महाराज जी ! उस ब्रह्म से बिछड़ने का कारण क्या है?

गुरुदेव : ब्रह्म से बिछड़ने का कारण इस तरह समझाने से सिर्फ इतना ही पता लग सकता है। अहम् भाव करके उससे अलेहदगी हुई है। आत्मा सदा सर्वव्यापक और पूर्ण है। शरीर की कैद में आकर जीवात्मा ने अपने आपको सीमित मान लिया है। पूर्णताई के वास्ते कर्म करने में लगा रहता है। कर्म फल की कामना इसे जन्म-मरण आवागमन के चक्कर में फंसाये रखती है। ख्वाहिश (इच्छा) का नाम कामना है। वासना रूपी बीज अन्तरविखे मौजूद रहता है जिस करके इच्छायें प्रगट होकर कर्म जाल में फंसता जाता है। चाहे सुख की कामना ही हो सब दुःख स्वरूप ही समझो। सत्, रज, तम रूपी रस्सियों से जीव ऐसा जकड़ा जाता है कि गुणातीत होने के वास्ते अच्छी तरह सत् यत्न बिना विचार के नहीं बन सकता। संसारियों की हालत देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। किस तरह मस्ताने दीवाने होकर विचरण कर रहे हैं। शुभ-अशुभ कर्म सबके सब बन्धन रूप ही होते हैं। चाहे सोने की जंजीर हो, चाहे लोहे की दोनों का काम जकड़ना है। सोने वाली जंजीर को देखकर खुश होना ही महामूर्खता है।

ममता का नाश - प्रभु सिमरण से

वाणी

प्रम आज्ञा में जो किरया त्यागे, लोक परलोक का भरम जाये मागे।
जीव का संसा सकल मिट जाई, करम करे निह:करम समाई।
मन की इच्छा गुबार तब जाये, पूरन प्रमता प्रभ की जब पाये।
और उपाय ना कोई मीता, बन्ध खुलासी की सुकृत रीता।
करम चक्कर अति दुस्तर भारी, एक पलक नहीं शान्त विचारी।
मान मद में नित गलताना, काल चक्कर में नित भरमाना।
काम क्रोध अति अगन अपारी, बिन सत जुगती नहीं मिले छुटकारी।
ममता भाव यह रोग अपारा, ममता माहीं सब रचा संसारा।
ममता रूप माया का जानो, त्रैगुण भेद में खेल खिलानो।
जतन करे बहु रंग के मीता, ममता मैल से नहीं होए पुनीता।
तप तपस्या बियाबान निवास, जल शयन कभी धूनी उपास।
कमी नांगा होवे कमी वस्तर घारे, कनी मौन रहे कनी बोल उचारे।
वेद कतेव का भयो निध्यासी, भौतक भौत पुन्न दान बिलासी।
नानां रंग का त्याग विचारी, नारी दरभ गृह गाम बिसारी।
कठिन तपस्या में जीवन काढ़े, ममता मैल नहीं उत्तरस पारे।
जो कुछ किया भयो तिसका अभिमानी, तिसका भोग फिर गवण निशानी।
ऐसे जनम अनेक विताये, नानां रंग के करम कमाये।
छूट के ताई जतन बहु कीना, उल्टा जतन करम लपटीना।
शुभ अशुभ जो करम कमाई, तिसका मान फिर गवण फिराई।
शुभ करम से जूनी शुभ पाए, सुख सरूप सम्पत मिलाए।
अशुभ करम जूनी अशुभ देवे, कष्ट सरूप का भोग लखीवे।
करम फल नाश जिस छिन होई, सुख विनास दु:ख रूप लखोई।
करम चक्कर नहीं बिपता जाए, अनक जतन जो जीव धराए।
बिन तत ज्ञान नहीं जाये अन्धेरा, आवागवण चौरासी फेरा।
दीन गरीबी बन्दगी, जिस मन आई समाये ।
"मंगत" ममता भरम मिटे, सत कीरत प्रभ पाये।।

प्रवचन

शरीरो को धारण करके जीव को इनके खेल का सब पता है। मगर शरीर के अन्दर जो बोलनहारा है उसको किसी विरले ने ही समझा है। जन्म से ही यह जीव खाना, पीना, पहनना, देखना, सुनना, हंसना, प्यार, गुस्सा हर बात को अवस्था के मुताबिक (अनुसार) समझता हुआ बढ़ता है। ज्यों-ज्यों शरीर बढ़ता है त्यों-त्यों इसे भले-बुरे की भी तमीज़ होने लगती है। यह मेरा सम्बन्धी है, यह मेरा दुश्मन है, यह मित्र है और भी संसारी विद्या की तरफ बुद्धि जाने लगती है। पशु, पक्षी और जड़ योनियों के जीवों को इतनी तमीज नहीं होती जितनी मानुष चोले के जीव को। जितनी जितनी नीच गति को जीव प्राप्त होता है उतनी उतनी ही तमीज भी उसे कम होती जाती है। केवल मनुष्य जामे (शरीर) में ही इसे अच्छी तरह हर बात का ज्ञान रहता है। मनुष्यों में भी कई ऐसे जड़ बुद्धि जीव होते हैं जिनकी बुद्धि पशुओं से भी गई गुजरी होती है। जैसा-जैसा जीव कर्म करते हैं उनके अनुसार ही उनकी शक्लो-सूरत भी बनती चली जाती है। देखो, एक अच्छा सेवादार, जो अच्छा पुण्य दान करने वाला है, उसे देखकर चित्त प्रसन्न है। एक बकरे काटने वाले जल्लाद की शक्ल देखकर भय लगता है। हर नेको-बद (अच्छे - बुरे) का असर जीव के चेहरे पर पडता रहता है। अच्छा कर्म जिस जगह भी बैठकर किया जावे, सुख स्वरूप ही होगा। दूसरे देखने वाले भी धन्य-धन्य करेंगे। खोटा कर्म करने वाले को हर जगह ही लानत (दुत्कार) पड़ती है। विचार यह है कि संसार में जितने शरीरधारी जीव हैं उन सब में श्रेष्ठ बुद्धि रखने वाला मनुष्य ही है। मनुष्य देही में सत्-असत् का विचार अच्छी तरह हो सकता है। वैसे जीव जितने भी दिन-रात कर्म करता है सब के सब शारीरिक रक्षा, पालन-पोषण के लिए करता है। अज्ञानवश होकर यह समझता है कि इन्द्रियों के भोग ही सब कुछ हैं। इनको हासिल करके उनके द्वारा ही चित्त को शान्ति हासिल (प्राप्त) हो सकती है। इस भूल में कई जन्म-जन्मांतर शरीरों को धारण करते हुए गुजर जाते हैं, इसको तृप्ति, शान्ति नहीं मिलती। एक ऐसे जीव हैं जो इन्द्रियों के सुख-भोग एकत्र करने में शान्ति समझते हैं। इस धन को हासिल करने के वास्ते सात्विक राजस

कर्म करते हुए जीवन गुजारते हैं। कभी-कभी उनसे तमोगुणी कर्म भी हो जाते है, यह दरमयाने दर्जे के लोग हुए, जो कि आम जनता है। कोई जीव ऐसे जड़ बुद्धि वाले भी होते हैं जो चोरी, ठगी कतल वगैरा करके दूसरों का धन-माल लूटकर अपने सुख पूरे करते हैं। यह तीसरे दर्जे के बेहोश तमोगुणी जीव हैं। इन सबसे श्रेष्ठ वो हैं जो भजन बन्दगी करके जनता की सेवा में समय गुजारते हैं, तन मन वचन करके किसी जीव मात्र को दुःख नहीं देते। सेवा और सत सिमरण ही अपना परम धर्म समझते हैं। सच्ची शान्ति को हासिल करने के वास्ते बड़े-बडे सत् कर्म, यज्ञ, पुण्य, दान करते हैं। जो भी अच्छे कर्म करते हैं सब के सब प्रभु परायण होकर करते हैं। प्रभु परायणता ही असली धर्म, बन्दगी, तपस्या है। सब गुरु, पीर, अवतारों, पैगम्बरों का मत यही रहा है। आगे मनमुख लोगों ने कई तरीके अपना रखे हैं। रब्ब की रजा, वाहगुरु का भाना, ईश्वर आज्ञा का एक ही मतलब है। होना न होना, सब उसकी आज्ञा में विचार करना यह गुरमुखों का मत है। कई तरह के तप-तपस्या, पुण्य-दान, तीर्थ-स्नान करके उनका मानी बनना यह मनमुखियों का मार्ग है। मनमुखी जीव कभी भी सच्ची शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकते। इस समय ये हालत है।

शरम धरम दोये छप खलोये, कूड़ फिरे परधान वे लालो।

ये शब्द नानक जी ने कहे हैं। यह कथा इस तरह है कि नानक जी एक दफा किसी गांव में ठहरे थे। वहां पर बहुत सारे साधु-फकीर भी जमा थे। उन्होंने भी वहां जाकर डेरा लगा दिया। वहां पर पठानों के घर में एक शादी हो रही थी। सब उस जगह नाच-गाने में मस्त हो रहे थे। फकीरों को किसी ने अन्न जल तक न पूछा। यह तमाशा देखकर नानक जी ने बहुत महसूस किया और ये शब्द उच्चारण किये :-

जैसी मैं आवे खस्म की वाणी, तैसड़ा करी बखान वे लालो ।
पाप की जंज ले काबलों धाया, जोरी मंगे दान वे लालो।
शरम धरम दोये छप खलोये, कूड़ फिरे परधान वे लालो

सह शब्द और भी हैं:-

मतलब यह कि जिस घर में नानक जी ठहरे हुए थे वह एक ब्राह्मण का था। वह ब्राह्मण कहने लगा, इस सन्त ने बडे क्रोध विच आकर ये शब्द बोला है। सब इनसे हाथ जोड़कर माफी माँगो और कि ये शब्द आप वापिस लौटा लो। सबने ऐसा किया तब नानक जी ने फरमाया, जो तीर कमान से निकल जाता है वह लौटा नहीं करता। तुम इस जगह को छोड़कर तीन-चार कोस पर जो दूसरी जगह है वहां चले जाओ। आप भी नानक जी उस जगह से उठकर दूसरी जगह जा बैठे। काबुल की तरफ से बाबर चढ़ाई करके आ रहा था। उस जगह पहुंच कर उसने हिन्दुओं-मुसलमानों को तलवार के घाट उतारना शुरू कर दिया। जो लोग दूर चले गए थे सब कहने लगे कि जिस जगह फकीरों को दुःख होता है वहां ऐसी ही बरबादी हो जाती है। हम तो सन्तों की कृपा से बचकर आ गए हैं। सन्तों का कहा मानने में सुख होता है। किसी भी जाति या जमात का साधु हो, नमस्कार योग्य हैं। नानक जी ने उस जगह को आकर देखा जिस जगह पर कतलेआम (नरसंहार) हुआ था। देखकर कहने लगे "किधर गई वह शानो- शौकत इस गांव की। दो रोज पहले बड़ी धूमधाम हो रही थी। अमीर कबीर किधर गये जो बड़े करो फर (शान-शौकत) से रह रहे थे। मुगल और पठानों की लड़ाई ने कितनी अन्धेरगर्दी मचा दी है। हिन्दू-मुसलमान तबाह हो गये हैं। करन करावन हार प्रभु आप है। **"जो तुध साई भावे, सो भली कार।"** दुःख-सुख सब उसके भाने के अन्दर वरत रहा है। सब जीव प्रारब्ध कर्मों का फल भोग रहे हैं। नानक जी ने देखा कि सब ओर मुगलों की दुहाई मची हुई है। हद से ज्यादा पठानों का कतल हो चुका है। नानक जी उस जगह की ओर चले गए जिस जगह बाबर का डेरा लगा था। बाबर का एक खास उसूल (नियम) यह था कि वह दिन के समय तो बादशाही करता था और रात के समय पाँव में बेड़ी डालकर खुदा की याद करता था। पांच बार नमाज पढ़कर कुरान का पाठ करके तब रोटी खाता था। नानक जी फौजी कैम्प के एक तरफ बैठकर मर्दाना से कहने लगे कि रबाब बजा। बाबर ने जब आवाज सुनी तो

पता लगा कि कोई फकीर बाहर बैठा है। सिपाहियों को हुकम हुआ कि उसको हाजिर करो। सिपाही जब नानक जी को लेकर बाबर के सामने लाए तो बाबर ने कहा, जो तुम बाहर गा रहे थे, फिर सुनाओ। शब्द सुनने के बाद बाबर कहने लगा, "हे सन्त ! मुझे भांग पीने का बड़ा शौक है।" सोने के प्याले में डालकर आगे करते हुए कहा आप भी इसे नोश फरमाएँ (पियो)। इस पर नानक जी ने फरमाया:-

गांजा भांग शराब सब, उतर जाये परभात।
नाम खुमारी 'नानका' चढ़ी रहे दिन रात ।।

हमने वह भांग पी हुई है जिसका नशा कभी उतरता ही नहीं। बहुत तरह के सवाल-जवाब हुए। आखिर बाबर ने समझा कि यह तो कोई पहुंचा हुआ फकीर है। बाबर ने कहा, "आपको जिस चीज की जरूरत हो कहो, मैं जागीर भी दे सकता हूं।" आगे से नानक जी ने जबाब दिया-जिसका दिया हुआ सब जिया जन्त खा रहे हैं जो खुदा परमात्मा सबका रीजक रोजी रसां है, उसको छोड सन्त और किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते। "कहे नानक सुन बावर मीर, जो तुझसे मांगे सो एहमक फकीर' ऐसा कडक कर जवाब दिया। जब ऐसा जवाब सुना तो बाबर को होश आया और समझा यह तो कोई सच्चा साधु है। इससे विसाले हक (प्रभु-दर्शन) का रास्ता पूछना चाहिये।

तब बाबर ने अर्ज की: सन्त जी ! हमारे मुसलमानी मत में तो लिखा है कि हजरत मुहम्मद खुदा का दोस्त है, जिनकी सिफारिश से बहिश्त नसीब होगी।

नानकजी ने जवाब दिया :

एको साहेव एको खुदाय, खालक सच्चा बेपरवाहे ।
कई मुहम्मद खड़े दरबार, पार ना पायें बेशुमार।
रसूल रसाल दुनियां में आया, जब चाहे तब पकड़ मंगाया।
पाक खुदा और सब बन्दे ।

यह सुनकर बाबर सोच में पड़ गया। नानक जी कहने लगे कि तूने जितने कैदी बना रखे हैं सबको छोड़ दे, अगर तू अपने खुदा की मेहर चाहता है

तो। बाबर, तू अपने मुह से मांग क्या चाहता है? बाबर ने नम्रतापूर्वक कहा, "मेरी बादशाही पुश्त-दर-पुश्त तक चले। तब नानकजी ने कहा तो तुम्हारी बादशाहत सात पुश्त तक चलेगी। बाबर ने प्रसन्न होकर सब कैदी छोड दिये और बड़े आदर-सत्कार के साथ नानक साहिब को वहाँ से विदा किया और वह करतारपुर में आ गये।

जिसको परमात्मा भाग्य देता है उसके अन्दर अक्ल भी वैसी आ जाती है। बाबर कोई मामूली आदमी नहीं था। उसकी जिस्मानी ताकत (शारीरिक शक्ति) इतनी थी कि दो आदमियों को बगल में इधर-उधर दबाकर दौड जाता था और उसे कोई पकड़ नहीं सकता था। फकीरों के आशीर्वाद से वह रंग लगा कि चिरकाल तक मुगल राज करते रहे। बादशाहों के अन्दर भी ताकत होती है, तब जाकर उनके हुक्म के आगे दुनिया झुकती है। किसी धर्म की निन्दा नहीं करते रहना चाहिये। मुसलमानों के अन्दर खुदा का यकीन (विश्वास), आजजी का मादा (नम्रता माव) हद से ज्यादा होता है। यह अलग बात है कि उनके अन्दर लाग बहुत हैं इसलिए अनपढ़ को मौलवी लोग वगैरा उल्टे उल्टे रास्ते पर लगा देते हैं। हर मजहब के अन्दर ऐसे लोग होते आए हैं जो आम जनता को गुमराह कर देते हैं। हिन्दू भी कौन असली ईश्वर को मानने वाले हैं? ये भी पत्थर-पूज, मुर्दो की याद करने वाले है। सच्ची शान्ति, ईश्वर की याद और निर्मानता आजजी (नम्रता) में है। सही ईश्वर भक्त उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। जिन्होंने प्रभु परायण होकर जिन्दगी गुजारी है, चाहे वे पूरब में हुए हों या पश्चिम में सब नमस्कार योग्य हैं। मूर्ख दुविधाधारी हर जमाने में होते आये हैं। हर युग में अत्याचारी हो गुजरे हैं। दुर्योधन ने कब कृष्ण की बात मानी थी, द्रोपदी को सरे दरबार नंगा करने का हुक्म दिया था, शराफत किघर चली गई थी? आखिर कौरवों-पाडवों की दुविधा क्या रंग लाई। मनमुखों का हर समय अपना-अपना रंग रहा है। गुरमुख निर्माणता में ही वक्त गुजार खुद भी शान्त हुए और दूसरों के वास्ते भी शान्ति का मार्ग दिखाया। ईश्वर ही अक्ल बखो, सत्बुद्धि देवे, जिससे अपना भला बुरा विचारकर सच्चा रास्ता पकडकर अपनी मुक्ति (निजात) आप करें।

अमर वाणी

आलख शब्द विचार कर, जो सरव जियां आधार।
साचे गुर की सीख से, उत्तरें भवनिध पार ।।
सदा अजन्मा नित परिपूरण, सो ठाकर निरधार।
मनमुखता को छोड़ के, जप लो बारम्बार ।
साची सिख्या जगत को, सत हुकम करतार।
जो चाहें सत शान्ति, सत नाम चित धार।।
औगुनकारी मन यह, नित रहे तुम्हारे पास ।
संकट से कैसे छुटें, नित धारे विख की बास ।।
छिन धावे आकाश में, छिन धावे पाताल।
मूरख जीव नहीं सूझता, पल पल प्रीती पाल।।
विख अगन को भोगती, जल जल होए अंगार।
सत सीतल होवे नहीं, जुग जुग भरमें सार।।
मत भूलो इस दूत से, जो तीन काल भरमाए।
शमशीर पकड़ विचार की, नित तिस घात लगाए ।।
मनमानी सब छाड के, भावी प्रभ विचार ।
छिन छिन सिमरे सतनाम को, शान्त पायें अपार ।।
देव मुनी नित गाँवदे, पतित पावन सतनाम ।
मन की विपता सब हरे, जीव देवे बिसराम ।।
समाँ अमोलक जान तूं, मानुष देह जो पाए।
सतनाम प्रभ सिमर लो, घालन यह सुखदाए ।।
सत सरूप भगवन्त है, परम आनन्द की खान।
'मंगत' पल पल सिमर लो, जग जीवन लाभ पहचान।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! फिर हम लोगों को किस तरह ईश्वर की भक्ति करनी चाहिये। जो कर्म किया जावे, उसे किस तरह प्रभु के समर्पण करें?

गुरुदेव : प्रेमी ! **जीव दया और आतम पूजा, तिस समान धरम नहीं दूजा।** व्योपार करते वक्त जायज मुनाफा लेना हक है। चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, जब तक व्यवहार की, संगत की पवित्रता नहीं आती तब तक बुद्धि शुद्ध नहीं

होती। नित्य का कर्म जो करते हो उसे पवित्र करो। जो भी तुम्हारे सामने सौदा लेने आये उसे ईश्वर रूप जानो। उसके साथ नेक बर्ताव करो, उसे नाप-तोल में ठीक चीज दो, ठीक पैसे लो, जिससे वह भी खुश हो जाये और तुम्हारा काम भी हो जाए। खोटी कमाई आती हुई अच्छी लगती है, मगर जब उसका जाने का समय आता है तब बहुत दुःख होता है, हक की कमाई तीन काल सुखदाई है। फिर हक की कमाई करके जो भी पुण्य दान-यज्ञ, गरीब की सेवा करो, बिना किसी ख्वाहिश के करते हुए यानि निष्काम भाव से करके ईश्वर के अर्पण कर दो। दीन दयाल तेरी वस्तुए तेरे चरणों में रखी जा रही हैं, ऐसा मन का शुद्ध भाव होना चाहिये। फिर आहार भक्ष-अभक्ष न हो। पवित्र दाल, रोटी, फल वगैरा सेवन करें। लाल जी! जिससे तन मन ठण्डा रहे। दो घड़ी सुबह-शाम मालिक की याद प्रेम विश्वास से जैसी गुरु-पीर ने बता रखी है, उसमें समय दें। किसी का दिल न दुखायें, जबान के पक्के रहना चाहिये, जिससे जो वायदा करो उसे हर कीमत पर निभाने की कोशिश करें। घर में बुजुर्गों की सेवा का लाजमी ख्याल रखें। अपने पुराने ग्रन्थों का, वाणियों का विचार करना, किसी अच्छे बुजुर्ग सन्त महात्मा की संगत में समय देना, आहिस्ता आहिस्ता अच्छे कर्म करते-करते आप ही रंग लग जाता है। कुछ सत्कर्म करने का चाव हो तो आप ही मालिक राह खोल देता है। अच्छा प्रेमियों, जो कुछ सुना है उसे दिल के किसी कोने में जगह देना। नेक अमल की रत्ती भी भाग्यशाली बना देती है। फकीरों ने ईश्वर के हुकम को सुनाना है। मानोगे तो सफलता हो जाएगी। यह गली-गली मांगने वाले फकीरों में से नहीं हैं। जिस कद्र दिल लगाकर वचन मानोगे उतनी ही बुद्धि रोशन होती है, पर उपकारी स्वभाव प्राप्त होता है।

प्रेमी : महाराज जी ! व्योपार में गृहस्थियों को कुछ न कुछ तो आडम्बर करना ही पड़ता है। क्या वह न किया जाए?

गुरुदेव : प्रेमी ! अगर इस दुनियाँ में ठीक चलना चाहते हो तो मुनासबत और मर्यादा की जिन्दगी बिताते हुए जो कुछ भी खाने-पीने के बाद बच जावे उसे जरूरतमन्दों की सेवा में लगा देना चाहिये। फिर तुम देखोगे कि अगर सौ आदमियों की तुमने मदद की है तो हजारों आदमी तेरा गुण गावेंगे

और तुम बुलन्दी पर पहुंच जाओगे। मुनासबत की जिन्दगी का यही उसूल है और यह ही इसका असली मेराज (ठिकाना) है, जिसे सत्पुरुष समता आनन्द की प्राप्ति कहते हैं। प्रेमी जी ! कोई आडम्बर करने की जरूरत नहीं है। एक मोटा-सा उसूल अगर अपना लिया जाये तो सब परेशानियां हल हो जाती हैं। अगर तू अमीर और दौलतमन्द है, घर में लड़की है, तो उसका रिश्ता हमेशा गरीब के घर में करके उसे बराबर का बना ले और उसकी हर तरह से इमदाद करे ताकि गरीब अपनी गरीबी से उठकर अमीर जैसा ही इन्सान बन जावे। अगर लड़के का रिश्ता करना है तो हमेशा गरीब घर की लड़की लावे ताकि समाज में किसी तरह की बुराई पैदा न हो। इस तरह से लड़की वाले जो गरीब हो, उनकी यह इमदाद होती है कि उनकी लड़की एक अमीर घर चली जाये। यह एक ऐसा नुक्ता है कि समाज की काया-पलट देता है और किसी तरह भी गृहस्थियों को परेशान होने की जरूरत नहीं रहती।

एक बार का जिक्र है कि रावलपिंडी (पाकिस्तान) के रहने वाले रईसे-आजम सरदार सुजान सिंह अपने लड़के के साथ कुरी नामक गाँव को लेन-देन के सिलसिले में जा रहे थे। गांव के बाहर एक पेड़ के नीचे थकान दूर करने के लिए पड़ाव डाल दिया। आपस में कुछ घर के विचार चलने लगे कि लड़की बड़ी हो गई है, आगे के वास्ते सोचना चाहिये। इतने में एक खूबसूरत नौजवान खच्चरों पर सामान लादे हुए आता दिखाई दिया। गरीबी की वजह से सामान किराये पर इधर-उधर ले जाया करता था। झट ही सरदार जी ने कह दिया कि ऐसा लड़का मिल जावे तो अच्छा है। उसी वक्त लड़के को बुलाया गया और उससे घर का पता पूछकर वहां से उठे और उसके घर जाकर उसके पिता को नाता दे दिया। लड़के के पिता को धन-दौलत देकर उसको अपने साथ मिला लिया। लड़की की शादी करके लडके को अच्छे काम पर लगा दिया।

प्रेमी ! इस तरह अगर किसी धरती पर गिरे हुए को आसमान पर चढ़ा दिया जावे तो समाज का सही सुधार हो सकता है। ईश्वर सबको सुमति देवे।

सफल सांसारिक जीवन में प्रभु परायणता
वाणी

अगन सरीखा जग का ताओ। लख चौरासी दुःख में मरमाओ।
उठ उठ धायें करें विकार, भवजल सूझे नहीं वारापार।
अनंक भरम में नित भरमाई, पल पल डोले धार चतुराई ।
मोह माया का भयो मद माती, मूढपना धर बने निज घाती।
बस्त अनेक संचित कीनी, नहीं धीर प्राप्त अन्धमत चीनी ।
धार कुबुद्ध नित औगण कीजे, अति भयानक सिर चिपता लीजे।
न मरम जाए न जीव सुख पाई, जन्म अनेक जीव ऐसे विताई।
अगनी खाये अगन परगासे, पल-पल छार में लीजे बासे।
मैं मेरी स्यानफ धारी, गरब गुबार अगन यह भारी।
सत्गुरु मेल जब सोझी पाई, मिले विश्वास परम सुखदाई।
पाप भयंकर जीव के नासे, एक भरोसा मन पाये अबनासे।
झूठ विकार बन्धन तब नासी, भयो विश्वास प्रभु चरन सुखरासी।
ज्यों नदी का वेग नहीं बाँधा जाई, ऐसे मन की जानो प्रमताई।
नीर तुरंग ज्यों गिनत नहीं आवे, ऐसे संशे में मन भरमावे ।
पवन सरूप ज्यों नित झुलारी, ऐसे चंचल मन विरती धारी।
अति अत कठिन मत की धारा, जन्म जन्म का पाप संचारा।
ऐसे दुष्ट से नहीं मिले खुलासी, अन्वमति जीया नित अन्ध मरवासी।
मन के मते में मग्न रहाई।, एक पलक की चैन ना पाई।
नित जीवन को घायल कीजे, सोई स्याना भेद यह लीजे।
सत विश्वास का बन्ध लगाई, मन चंचल को नित फंसाई।
पल पल कीजो सत विचारा, निर्मल टेक साचे करतारा।
दृढ़ निश्चय नित राखो सत स्वामी, चंचल मन तब लेवे बिसरामी।
मन को थामन का यह ही उपाये, प्रभु के चरन चित्त टेक समाये।
सत भरवासा राखो मन मेरे, प्रभु की शरण में सुख घनेरे।
एक निस्वय प्रभ चरन में, जब मन आन समाये।
" मंगत" जाये सब दूषना, जनम मरन दुःखदाये ।।

प्रवचन

जो भी जीव संसार में शरीर धारण करके आया है उसे तीन ताप आधि अर्थात मानसिक दुःख, व्याधि अर्थात् शारीरिक दुःख, उपाधि अर्थात् बैरूनी (बाहरी) सकट जो इत्फाकन (अचानक) आ जाते हैं सता रहे हैं। किसी को आधि रोग सता रहा है, किसी को व्याधि रोग लगा हुआ है और किसी को उपाधि रोग लगा है। चौरासी लाख जिया जन्त सब इन रोगों के रोगी हैं। और योनियों को छोड़ो, इस मानुष जामे का विचार करो। इस चोले को धारण करके हर एक जीव दिन रात सुखों की प्राप्ति के लिए यत्न प्रयत्न कर रहा है। दरअसल सबसे बड़ा रोग इसको जन्म मरण का लगा हुआ है। हर एक जीव आशा त्रष्णा को पूरा करने में लगा हुआ है, इसे पूर्ण करने के लिये ये दिन रात यत्न-प्रयत्न करता रहता है। इस अज्ञानता को लिये हुये सब जीव चल रहे हैं। इसे इस चक्कर का पता ही नहीं और न ही इसे पता है कि इससे कैसे छुटकारा पाया जा सकता है। अगर कोई जीव संध्या वन्दना करता भी है उसमें उसका स्वार्थ छिपा हुआ है, जीव को पता ही नहीं कि ईश्वर की प्राप्ति किसलिये करनी है।

किसी भी व्यक्ति को खड़ा करके पूछो कि इस धाओ-धा (दौड-धूप) से शान्ति मिली है? कोई तसल्ली वाली बात नहीं करेगा। अगर किसी के अन्दर शान्ति आई भी है तो प्रभु के प्यारों के अन्दर आई है। इस प्रकृति रूप संसार में आकर जीव ऐसा भूल में पड़ गया है कि उसे कोई होश नहीं, किधर से आए, किधर जाना है। यह जीव चेतन शक्ति को छोड़कर कई तरह की मनमानी कर रहा है। अपनी वासना को पूर्ण करने के लिये पत्थर, मढी, मसान की पूजा तर्पण में लगा रहता है। इससे न भ्रम दूर होता है, न सुख मिलता है।

न भरम जाए ना जीव सुख पाई।
जनम अनेक जीव ऐसे विताई ।।

जिस परम तत्व को जानने से बुद्धि निर्मल होती है उस परम तत्व आत्मा को समझने की कोशिश नहीं करता। जन्म-जन्मान्तर तक इसी तरह भटकता रहता है। सही सार को नहीं पाता। जब तक आत्मा का बोध नहीं होता. जन्म-मरण के चक्कर से छूट नहीं मिलती।

आवे दया खोतया, कच्चीयों ले आवनीयाँ पकीयाँ ले जॉनीयां
ईट्टा नहींओं मुकना तूं नहीयों छूटना।

यह पंजाबी में कहावत है। शायद कई प्रेमियों को समझ न आई हो। ईटों

के पकाने का भट्ठा होता है, उस पर जो गधे कच्ची ईटों को लाते हैं और पक्की ले जाते हैं. न भट्टे की इंटें खत्म होती हैं, न गधे की जान छूटती है, क्योंकि भट्टे वाले एक तरफ से भरते रहते हैं दूसरी तरफ से खाली करते रहते हैं। फर्ज करो कि भट्ठा बन्द भी हो जाए तो भी जो पक्की ईंटें होती हैं, उसे दूसरी जगह पहुंचाने के वास्ते काम लेना शुरू कर देते हैं। मनुष्य भट्टे के गधे की तरह उम्र भर काम करके मर जाता है। उसे प्रभु सिमरण के लिए वक्त ही नहीं मिलता। हू-ब-हू यही हाल संसारी जीवों का है। सारी उम्र कमाई कर-कर के मर जाते हैं, माल पुत्र और जवाई खा जाते हैं। आपको टूटे जूते और धोती टोपी के सिवा कुछ हासिल नहीं होता। कहते हैं-

परमेश्वर दूँ भुलयाँ, व्यापन सभे रोग।

एक परमेश्वर को भूलकर जीव अनेक तरह की चिन्ता-फिक्र में गिरफ्तार हो जाता है। ईश्वर पर जब कोई यकीन (विश्वास) ही नहीं मन किस तरह ठहरे, क्योंकि मन को चंचल करने के तो लाखों सामान नित्य नये से नये बन रहे हैं। मगर संसार की कोई वस्तु भी इसे तसल्ली (तृप्ति) नहीं दे सकती, अगर तसल्ली चाहते हो तो पहले अपने अन्दर जो भोग वासना की अग्नि प्रचण्ड हो रही है पहले उसको शान्त करने का उपाय सोचो। अगर सांसारिक वस्तुओं से इसे शान्त करने का यत्न करोगे तो ये आग पर घी का काम करेगी और अग्नि अधिक प्रचण्ड होगी। नुमायशी जीवन इसे बढ़ाने वाला है, इसलिये अपनी जरूरतों को कम करो, सादगी धारण करो। सत्संग में जाकर सत् विचार लो और सत् सिमरण में लग जाओ। संसार की चमक-दमक को देखकर मोहित हो जाना खोटी बुद्धि वालों का काम है। सात्विक बुद्धि रखने वाले उसकी तय तक जाने की कोशिश करते हैं। मर्यादा के खान-पान को धारण करके सार तत्व आत्मा को जानने के लिये ज्यादा समय देते हैं। गांधी के सादा जीवन से शिक्षा लो, उसके बचनों पर ध्यान दो वह राज्य कर्मचारी कैसे त्याग, मैत्री जीवन वाले चाहता था, वैसे बनो। मगर अब किस कद्र बढ़-चढ़ कर गैर-मुल्की, विलायत वालों की नकल करके मात करने पर तुले हुए हैं। उनकी रीस करके धन-दौलत मशीनरी बेशक बढ़ा लें, जो पुराने ऋषियों का मिशन था वह लोप हो जाएगा, स्वप्न के समान शान्ति का नाम रह जायेगा। अभी क्या, आगे चलकर देखना कितने ये लोग दुःखी होंगे। मकड़ी जैसे अपने ही बनाये हुए जाले में फंसकर दुःख पा पा कर नाश को

प्राप्ति होती है उसी तरह ये नुमायशी जीवन बढ़ाकर वासना को भी बढ़ा रहा है जो तंगी की जिन्दगी पैदा कर देगी। दूसरे बड़े देशों को देखो, कैसे वे अपनी वासना को बढाकर दूसरों की नाश का सोच रहे हैं। मगर प्रकृति का नियम है, जो दूसरों का नाश करता है उसका अपना भी नाश हो जाता है, इसलिये अपने कर्म शुद्ध करो। अपने प्रारब्ध कर्म जीव खुद बनाता है। आज का कर्म शुभ-अशुम किया हुआ कल आने वाले रोज के वास्ते प्रारब्ध कर्म हो जाता है। इस वास्ते सही सोच और सही कोशिश हो तो नतीजा सही निकला करता है। न व्यवहार की पवित्रता है, न आहार ठीक है,न संगत अच्छी हुई तो किस तरह धीरज सुख को जीव हासिल कर सकते हैं। मर्यादा का जीवन बनाकर चलोगे तब ईश्वर की याद भी बन सकेगी। रोग का इलाज भी करते चलो और बद-परहेजी भी कायम रहे तो सेहत किस तरह हो सकेगी। ईश्वर ने हर एक जीव को बुद्धि दे रखी है। बुद्धि से सही सोच करके सत् कर्म करोगे तो कोई कर्म दुःख न देगा। गुरु अवतारों की शिक्षा को लेकर चलोगे तो शान्ति ही शान्ति है। उनकी भी अपने जैसे हार श्रंगार करके और सिर्फ धूप दीप से ही सेवा कर दी। जो वे कह गये हैं उस पर अमल न किया। तब न तो यह लोक सुधरेगा न परलोक ही, सुखों से वंचित रहोगे। ईश्वर ही सबको सुमति देवें। फकीरों के पास यह ही जायदाद है। जो भी इनके वचनों पर अमल करेगा, आशीर्वाद उनके साथ रहेगी। ईश्वर कृपा से दर्शन-मेला संसार में होता रहता है। सूरज का काम है रोशनी देना। इस रोशनी में जैसे मर्जी कर्म कर लो। फकीरों का काम है ईश्वर के हुक्म को सुनाना। जिधर भी प्रेरक शक्ति ले जाती है, जाना पड़ता है। जैसे उसकी आज्ञा से विचार निकलता है लोगों के आगे रख देते हैं। इस पर अमल करके सही जिन्दगी बनाने का तुमने फैसला करना है। ईश्वर मेहर करें।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! आपकी ही हम सब जीवों पर खास कृपा होनी चाहिये। सन्त अनादिकाल से इस भारतवर्ष की रक्षा करते आये हैं। कुछ दिन जो आपके विचार सुने हैं. इसी तरह का सत्संग विचार हर जगह हो तो आप ही अपना सुधार शुरू कर देंगे। आप जीवों के होते हिन्दुस्तान का भाग्य खराब नहीं हो सकता?

गुरुदेव : प्रेमी सुन। ऋषि, मुनि, सन्त, अवतार शुरू से ही कृपा करते आये हैं। कृष्ण के जमाने में उसकी थोड़े से ही उंगली पर गिने जाने वाले सज्जनों ने बात सुनी होगी। हर तरीके से उस भगवान ने समझाने की कोशिश की है। राम के जमाने में उसके साथ कैसी बीती। सत्युग में देवताओं असुरों के युद्ध होते रहे। यह तो जमाना ही कहते हैं रोशनी का आया है। हिन्दुस्तान की क्या हालत थी, अनेक हिस्सों में बंटा हुआ था। अब पाच-सात साल से काफी समय के बाद एक हुआ है। कब अवतारों की किसी ने सुनी। सुनते तो आज यह हालत न होती। फिर भी दूसरे मुल्कों से भारत में अभी भी बड़े सतोगुणी स्वभाव वाले जीव मौजूद हैं। अध्यात्मवाद का यह केन्द्र था। धर्म को जानने वाले ज्यादातर भारत में ही हुए हैं। दूसरे मुल्कों की क्या हालत थी, जहालत की जिन्दगी गुजारते थे। तीन-चार सौ साल से सूझ-बूझ वाले हो रहे हैं। वे भी प्राकृतिक सुख को असली समझते हैं। ईसा का उपदेश उसके जमाने में किसी ने नहीं सुना। मुहम्मद साहिब को मक्का से कई बार निकलना पड़ा। आखिर मदीना में जाकर रहना पड़ा। दुनियादार कभी भी सत्पुरुषों को उनकी जिन्दगी में अच्छी तरह नहीं मानते। बाद में हमेशा होश आती है। जब संसार से चले जाते हैं तब उनकी मूर्तियाँ थापकर पूजा शुरू कर देते हैं। इस वक्त ईसाई, बौद्ध और मुसलमानों की ही दुनिया में ज्यादा आबादी है। हिन्दू सिर्फ इस कोने में ही टल्ली खड़काते रहे हैं। सैकड़ों किस्म के मत इस हिन्दू जाति में हैं। कितनी-कितनी कुर्बानी एकता के वास्ते सत्पुरुष कर गये हैं। एक आत्म-तत्व सबमें देखने का उपदेश भी मौजूद है। मगर जातिवाद ही खत्म नहीं होता। हर जीव का अपना-अपना अलग स्वभाव मत और चाल-ढाल है। ईश्वर की माया विचित्र है। अपनी तरफ से सत्पुरूषों ने कोशिश करने में कोई कसर नहीं रखी। दुनिया इसी तरह चलती आयी है, इसी तरह चलती जायेगी, गुरूमुखों को अपना सुधार करके गुरूमुखता फैलानी चाहिये। अपनी तरफ से हर जीव मात्र से प्रेम रखो, जो तन-मन से सेवा बन सके सो करो। दो घड़ी मालिक की याद में समय दिया करो। आहार व्यवहार की पवित्रता पर खास ध्यान देकर चलोगे तो कभी दुःख नहीं देखोगे। ईश्वर की सत्ता से ही सब जीव मात्र जिन्दगी ले रहे हैं। दीन दयाल ही कृपा करें।

प्रेमी : महाराज जी ! सत्पुरुष कहते हैं कि परमात्मा की मर्जी के अन्दर ही

सब कुछ देखना चाहिए। होना न होना सब उसकी आज्ञा में है तो हमें हुक्म क्यों दिया जाता है कि नेक काम करो, बुरे मत करो। करने वाले हम कौन होते हैं। जब सब परमात्मा ही करन करावनहार है और अगर हम करते हैं तो सन्तों की यह बात कैसे समझ में आवे

"हुकुम रजाई चलना 'नानक' लिखया नाल।"

गुरुदेव : प्रेमी । तुम्हारे सवाल के तीन पहलू हैं। पहली हालत में जब तक मनुष्यों में ईश्वर विश्वास कम है तो उनसे कहा जाता है अच्छे व नेक कर्म करो और बुरे छोड़ दो। ऐसा करते-करते उनकी बुद्धि निर्मल होती जाती है और वे आगे की हालतों को समझने लगती है, लेकिन इस मिथ्या अभिमान में गिरफ्तार रहती है कि मैं बड़ी चीज हूं, फला-फलां कर्मों के करने वाला हूं इत्यादि। इस करके वह प्राणी जन्म-मरण के चक्कर में तो पड़ता है, लेकिन उसकी बुद्धि अधिकारी अवस्था के पास पहुंच गई होती है, इतना होने पर भी वह इस कर्म चक्कर से छूट नहीं सकता। अब सवाल यह उठता है कि वह कैसे निर्बन्ध और नेहःकर्म अवस्था प्राप्त करें, यानि इस जन्म-मरण के गहरे अजाब से उसे छुट्टी कैसे मिले। तब सत्पुरुषों ने हुक्म फरमाया है कि इस नेह कर्म अवस्था को प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि वह दूसरी हालत में अपने सब नेक कर्म परमात्मा के समर्पण करता जावे तो वह उनके नतीजों से छुटकारा ना जायेगा, यानि अपने आपको निर्बन्ध बनाने के लिये, जन्म-मरण के चक्कर से छुड़ाने के लिये और नेहःकर्म अवस्था प्राप्त करने के लिए समर्पण बुद्धि धारण करे। तुम्हारे सवाल का तीसरा और आखिरी पहलू यह है कि ऐसी समर्पण बुद्धि धारण करता हुआ जीव होना, न होना, करना न करना, सब ईश्वर-आज्ञा में देखता हुआ उस परमात्मा का हर घड़ी, हर लम्हा चिन्तन करता रहे। जब ऐसे निश्चय को बुद्धि प्राप्त होगी तब कर्त्तापन अभिमान से निर्बन्ध होकर अपने निज स्वरूप अखण्ड अविनाशी शब्द में नेहःचल हो जावेगी। इस स्थिति को ही सम् पद निर्वाण शान्ति कहा गया है।

सार विचार यह है कि कर्त्तापन के अभिमान से बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व में आसक्त हुई नाना प्रकार की कामनाओं को धारण करके जन्म-मरण रूपी संसार में फिरती है। इस महा अन्धकार कर्तापन के नाश करने के वास्ते प्रथम निश्चय प्रभु आज्ञा में समर्पण कर्म यानि प्रभु को कर्ता जानना और अखण्ड प्रेम करके

चिन्तन करना ही कल्याण के देने वाला साधन है। इसी को भक्ति कहते हैं। जब समर्पण बुद्धि परिपक्व हो जाती है, तब नेहःकर्म स्वरूप आत्मा में स्थित होकर आनन्दित होती है। ईश्वर को कर्ता जानना कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है। वैसे बुद्धि कर्तापन की अभिमानी होकर खुद ही कर्म करके द्वन्द्व रूपी दुख-सुख धारण करती है। यह ही संसार का चक्कर है। वैसे तो प्रकृति तीन गुणों के खेल को आप ही कर रही है। इसमें सिर्फ जीव हौमें (अहम्) करके फंसा हुआ है। इससे छूटने के लिए ही प्रभु आज्ञा में समर्पण कर्म करने से छुटकारा प्राप्त होता है। वैसे प्रभु तो नेहःकर्म स्वरूप है।

वाणी

मन यह अति विकराल है, सहज नहीं पकड़े धीर।
अनंक जतन कर राखिये, तो भी अन्ध दिलगीर ।।
भव सागर की धार में, सब ही भरमत जाएँ।
कोई गुरमुख उभरे विरले, जो नाम प्रमु लिव लाएँ।।
मिथ्या नाम और रूप को, नित कलपे अन्धकारी।
एक पलक ना धीरज पावे, नित संकट को धारी।।
राजे राणे गुनी जन केते, नित ही भरम भुलाये।
अत सम्पत प्रापत कीनी, तो भी चित तिरखाये।।
दुर्मत रोग लागा वड भारी, सब जन त्रास लखायें।
'मंगत' नाम रतन जिन चाखा, सो जन शान्त समायें।।

जैसा कर्म तैसा फल

वाणी

अवगत माया खेल खिलाए, भव बन्धन में फेर फिराए।
मानुष जनम पायो सुखरासी, अपने आप की करो खुलासी।
नित सत्संग सत कथा विचार, अपने जनम का करो सुधार।
साची कीरत का लेख लखाओ, सतपुरुषों की सीख समाओ।
अपनी ममता दुर्मत को त्याग, साध जनां की चरनी लाग।
बन्धन माया का मिटे सन्ताप, सत सिख्या चित माहीं कमात।
क्यों भयो बौरा देख जगत तमाशा, पलक घड़ी का नर सकल बिलासा।
इस्थिर रूप अबनाश विचार, जिसका सिमरन देवे सुख सार।
करम वासना में क्यों लिपटाया, यह धुआं अंबार भ्रम अधिकाया।
आद जुगादी सत रूप भगवन्ता, भगत कमाओ पायें परसन्ता।
अगन सकाम तब ही नर नासे, जब हरी चरन प्रीत विलासे।
करम चक्कर कर मन से त्याग, साचे नाम की कीरत लाग।
करम का खेल नित मिथ्याकारा, मूल बिना सब रचा पसारा ।
छाड गुबार पाओ सत्संग, अगन विनासे पाये चित्त ठण्ड।
संशे अनेक जीव के जाई, दृढ़ विश्वास प्रभु चरण ध्याई।
प्रभु की भगत स्वास्थ नासे, मुक्त सरूप परमारथ वासे ।
यह ही विचार करो दिन-रात, अविनाशी प्रभु के चरण समात।
करम जंजाल नहीं पारावार, अनमत जीव नित होवे ख्वार।
पाप पुन्न करे बहु भाँती, इच्छा धार नहीं मिटे भरान्ती।
पाप पुन्न जो भी करे, फल भोगे निश्चय मीत ।
'मंगत' छूट ना पाइये, यह करम चक्कर की रीत।।

प्रवचन

संसार रूपी सागर में अनेक प्रकार के जीव शरीर धारण करके विचर रहे हैं। और यानियों को छोड़कर जिस कद्र प्राणी मनुष्य नजर आते हैं उनमें से बहुसंख्यक ऐसे होते हैं जो संसार के परायण होकर ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कोई विरले सत्यवादी ही अपने जीवन में सत्कर्मों को करते हुए सत् सयम में पूर्ण दृढ़ता से पवित्र निश्चय द्वारा सत् शान्ति की खोज यानि प्राप्ति के वास्ते यत्न जारी रखते हैं। जीवन यात्रा अमीर-गरीब छोटे-बड़े सबकी गुजर जाती है, चाहे कोई सन्मार्ग पर चल रहा है या छल-कपट में विचर रहा है। पहला सफल जीवन बनाकर खुश होता है, दूसरा अपनी बरबादी आप करता है। जीवन उन गुरमुखों का ही अच्छा रहता है जो इस शारीरिक यात्रा में ही अपना भला आप करते हैं। लोक-परलोक दोनों उनके सुधर जाते हैं। सत्संग में आने का लाभ यह ही है कि प्रेमी महाप्रभु का सविश्वास और सन्निधियास प्राप्त करें और इन्हें धारण करके सर्व कल्याण प्राप्त करें। अपने सुखों को बाँटते हुए दूसरे के दुःखों को निवारण करते रहना चाहिये। सब बड़े-बडे ग्रन्थों की सार यह ही है नाम सिमरण और सेवा धारण किये जायें। इस जीवन संग्राम में कायरता को छोड़ अपने कल्याण के मार्ग में लग जाना चाहिए। कर्त्तापन यानि अहंकार का पर्दा सहज नहीं टूट सकता। जब तक व्यक्ति किसी सत् यत्न (युक्ति) द्वारा अपना गर्व खत्म नहीं करता तब तक आत्म साक्षात्कार असम्भव है इसलिए सन्तों ने सहज मार्ग ये बताया है कि ईश्वर को कर्ता-हर्ता समझो और संसार में जो कुछ भी हो रहा है सब उसी महाशक्ति की लीला जानो। स्वयं को हर समय अकर्ता समझने वाला व्यक्ति शरीर के रहते हुए भी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। उसे किसी अवस्था में भय या शोक का अनुभव नहीं होता। इसलिए अपने आपको निमित्त मात्र समझते हुए बारम्बार ईश्वर को कर्ता हर्ता जानकर ऐसी सत् भावना में दृढ़ता से जो चलता है वह इस संसार चक्र से छूट जाता है। ऐसा जीव अपने घर, परिवार, महल, अटारी, जो भी उसके पास है, वह सब कुछ प्रभु की देन समझता है। अपने को दासा भाव में रखता हुआ वह आखिरकार अपने अहंकार को खत्म करके मुक्त पद को पा लेता है।

'मैं-पने में जीव बंधा हुआ है। बन्धन में डालने वाली मैं-भावना हर घड़ी मैं-मेरी अर्थात् मेरा घर, मेरी सम्पत्ति, मेरा भाई, मेरा लड़का, मेरा मकान, मेरा

शरीर आदि असत् भावों को ग्रहण कर क्लेश का कारण बनती है। अहंकार रूपी पर्दा कभी भी समाप्त नहीं होता। कर्तापन को खत्म करना कोई आसान काम नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि वह संसार में एक मुनीम या बैंक के खजांची की तरह होकर विचरे। जिस तरह एक मुनीम लाखों-करोड़ों रुपयों का हिसाब साहूकार का अपने पास रखता हुआ सब लेन-देन करता है और उसकी रक्षा भी करता है मगर लगाव नहीं रखता। देने वाले को देकर दुःखी नहीं होता। लेने वाले से लेकर सुखी नहीं होता। हर घड़ी उसके ध्यान में यह रहता है कि मैं इस धन का मालिक नहीं हूं, इसका स्वामी कोई और है। इस वास्ते धन को आसपास रखते हुए भी उस धन का मोह लोभ उसे नहीं है। न उसे लाभ से सरोकार है, न हानि से। ऐसे बेलगाव जब जीव जीवन व्यतीत करता है तो वह अहंकार की मलिन से छूट जाता है, इसके विपरीत धन का मालिक चाहे कितनी दूर बैठा हुआ हो, उसे हर घड़ी अपने धन की चिन्ता बनी रहती है। जब लाभ की बात सुनता है तो फूला नहीं समाता, जब किसी हानि का पता लगता है तो बड़ा दुःखी होता है। वैसे ही जो जीव इस संसार को अपना मानते हैं। वह ही हर्ष शोक को प्राप्त होते हैं। अज्ञानता में जीव हर चीज को अपना मानकर दुःखी सुखी होता रहता है। ऐसा भाव उनके चित्त में किसी घड़ी नहीं आता कि इस संसार की रचना करने वाला परम पिता परमात्मा है। अर्जुन को बार-बार मोह बन्धन से छुड़ाने के लिए भगवान कृष्ण ने कहा, "तू अपने मन और बुद्धि को मुझमें लगा दे। इससे तू निश्चिन्त होकर मुझ में ही निवास करके मेरे धाम को प्राप्त हो।" यहाँ मुझ का अर्थ आत्मा से है। ऐसा समर्पण भाव ही परम भक्ति है। मनुष्य जीवन को सफल बनाने के लिए संसार से दूर जाकर या संसार में रहते हुए, निष्काम भाव से तप करना और मैं ही ब्रह्म हू, ऐसा भाव बनाना कल्याणकारी है। किन्तु सत् तत्व को अनुभव किये बिना ऐसी भावना बन भी नहीं सकती। खाली नामलेवा "अहम् ब्रहा अस्मि" अहंकार की तरफ ले जाता है। पहले इस स्थिति को सत् यत्न द्वारा प्राप्त करे फिर ऐसा कहना बन सकता है। ऐसे सत्पुरुष ब्रह्म स्वरूप होकर सदा निरभिमानता, क्षमा, दया, उदारता के स्वरूप होते आए है। जब भृगुजी ने विष्णु की छाती में लात मारी थी, आगे से भगवान विष्णु ने ऋषि चरण पकड़कर कहा था, "हे प्रभु ! आपके कोमल चरणों में दास की कठोर छाती से तकलीफ तो नहीं हुई है?" इतना कहना

था कि ऋषि जी पानी-पानी हो गये। क्षमा करना मामूली बात नहीं होती। यह प्रसंग क्या सिखलाता है?
एक बार भक्त एकनाथ जी गोदावरी से स्नान करके लौट रहे थे। उनसे ईर्ष्या करने वाले एक सज्जन ने उन पर थूक दिया। चुप करके एकनाथ जी स्नान करने के लिये फिर लौट गये। स्नान करके फिर उसी रास्ते से निकले। दोबारा उसने थूक दिया। उन्होंने फिर वापिस नदी की तरफ जाकर स्नान किया। इस तरह कहते हैं कि एकनाथ जी पर उस राक्षस वृत्ति वाले पुरुष ने सौ बार थूका। हर बार एकनाथ जी वैसा ही करते रहे। उतनी बार ही गोदावरी पर जाकर स्नान किया। अन्त में उनकी नम्रता देखकर थूकने वाले का हृदय पिघल गया। अन्तिम बार रास्ते में ही हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कहने लगा, मुझे माफी दी जावे। आगे से एकनाथ जी ने कहा "भाई । तुमने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। आगे मैं सिर्फ एक बार गंगा स्नान किया करता था, आज तुम्हारी कृपा से गंगा मैया के सौ बार दर्शन हो गये।" यह भक्ति का स्वरूप है। क्षमा का स्वरूप सन्त ही पेश कर सकते हैं।
एक बार सन्त तुकाराम गन्ने बेचने के वास्ते घर से चले तो रास्ते में कीर्तन करने वाली मण्डली मिल गई। उन्होंने सारे गन्ने भक्तों में बांट दिये। एक गन्ना बच गया, वह लेकर घर पहुंचे। जब यह वृत्तान्त उनकी धर्मपत्नी को पता लगा तो क्रोध में आकर उसने गन्ने को भक्त जी की पीठ पर दे मारा, गन्ने के दो टुकड़े हो गये। आगे से भगत जी बोले- **"ओ हो ! मेरे से भूल हो गई है। मुझे तुम्हारे लिए और अपने लिए दो टुकडे करके लाने चाहिये थे। एक टकड़ा तुम ले लो, एक मुझे दे दो।** भक्तों का हर एक वर्ताव शिक्षा लेने वाला होता है। जब तक संसार में जीवन है भगवान से सम्बन्ध रखकर जियो, तभी सुख मिल सकेगा। जिस तरह दुनिया के काम निश्चित समय पर करते हो उसी तरह निश्चित समय पर सत् के परायण होना चाहिये। आम तौर पर जीव दुनियाँ के कामों को जरूरी समझते हैं। जब सिमरण-पाठ का समय आता है तो उसे टाल देते हैं, क्योंकि इस कर्म को अनावश्यक समझा जाता है। सत् नियम में दृढता ही आनन्द की ओर ले जाती है। मिलकर बैठने और वण्ड के खाने का अर्थ

सबसे प्रेम भाव रखना और बांटकर खाना है। इससे परस्पर प्रेम भाव बढ़ता है। दूसरों का माल लूटकर एकता का भाव कभी भी नहीं बन सकता। संसार में धर्म-परायण होकर विचरने में लोक-परलोक सुघर जाता है। बुद्धि को ससार की तरफ से हटाकर संसार के बनाने वाले में लगा देने से काम बन जायेगा। ईश्वर तुम सबको सत् बुद्धि बख्ख्खों। शरीर रूपी संसार को धारण करके आने का मतलब यह है कि अज्ञानता को दूर किया जावे, अपने वास्तविक सत् स्वरूप की सूझ प्राप्त की जावे। सत्संग में या सन्तों की शरण में जाने का मतलब यही है कि सत् सूझ प्राप्त हो। जो सुनते हो उसका विचार किया करो, खाली सत वचन कह देने से काम नहीं हो जाता। सत् शान्ति शरीर, मन, इन्द्रियों की गुलामी में नहीं। मन पर जब सवारी करोगे तब इसका सुधार होगा। भक्ति से, योग से, निष्काम कर्म से, निष्काम सेवा से जिस तरह मन को ठहराव मिलता हो, वैसा ही करो। सही ढंग, तरीका द्वारा सच्ची शान्ति प्राप्त करें।

उलटा नाम जपत जग जाना।
बालमीक भयो ब्रह्म समाना ।।

जिन पदार्थों को आनन्द देने वाला समझते हो, ये ही परम दुखदाई हो जावेंगे जब इनसे अलग होना पड़ेगा। प्रभु नित जीवन यात्रा में सफल बुद्धि बों। जिस कद्र इस मार्ग में चला जा सके, पूर्ण लगन से तन्मयी हो जाना चाहिये।

वैराग्य वाणी

नाम प्रभु का हिरदे ध्याओ, सब पूर मनोरथ पायें।
साजन दुर्लभ यह कथा पुरातन, गुनी मुनी बतलायें ।।
पूरन भाग पाए तिस साजन, जिस प्रभ सेती नेहों लाया।
सहज सो गुरमुख निस्तर भया, त्याग यह विषमी माया ।।
अनजाना होके विचरिये, प्रभु चरनी प्रीत लखाइये।
जग से होवे बन्ध खुलासी, प्रभ परगट अन्तर ध्याइये।।
जीवन की तू आस धरी, नहीं मरना मूल विचारया।
माया भरम भुलेखे अन्दर, विच जुए जन्म को हारया।
घनी सयानफ नित करी, पग फूंक-फूंक घरन्त।
'मंगत' ओढ़क सब पछताये, बिन सिमरे भगवन्त ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी। आप किसी समय भी कोई पुस्तक आदि पढ़ते दिखाई नहीं दिये, यह सन्तों के वचन, साखियां कब की याद कर रखी है ?

गुरुदेव : प्रेमी जी । बचपन से स्मरण शक्ति ऐसी तेज थी दूसरी दफा कभी स्कूल का सबक भी याद नहीं किया था। सिर्फ एक बार नजरों से गुजर गया, याद हो जाता था। घर पर आकर अपना निजी प्रोग्राम चलता था। अब तो लेखा ही आपे से बाहर है। चौदहाँ लोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो योगी के चित्त को भ्रम में डाल सके। अन्तरविखे वह शोभा प्रगट हुई है-अनिर्वचनीय। इस भेद की कैसे व्याख्या की जावे। जब जानोगे तब मानोगे। तुम्हारे वास्ते यह ही उपदेश है-**"सूरज सेती सच्चा रहो"** वाली स्थिति बनाये रखो। जो समझाया गया है तन-मन से उसके परायण हो जाओ। जितनी आज्ञा मानने में दृढ़ता बनेगी उतना ही परम पद नजदीक होता जावेगा। जिस कद्र मेहनत करोगे संसार में आने का लाभ प्राप्त करोगे।

प्रेमी : महाराज जी ! **"सूरज सेती सच्चा रहो"** इसका क्या अर्थ है?

गुरुदेव : प्रेमी ! एक महात्मा पठोवार इलाका चोहा भगतां (यह स्थान रावलपिण्डी जिला, पाकिस्तान में है) में बाबा सूरज नामक हुए है। अब भी उनका खानदान भगतों का खानदान कहलाता है। बाबा सूरज जी की सेवा में एक मुसलमान सेवादार दूध लाया करता था। एक दिन वह पूछने लगा-साई जी, मुझे अल्लाह वाला रास्ता बताएं। उन्होंने फरमाया-

नाम शवहानी जात अहीर, सूरज मिलया सच्चा पीर।
अल्लाह कहो ना कहो, सूरज सेती सच्चा रहो।।

मतलब यह कि तुम अल्लाह को याद करो या न करो, सिर्फ जितना समय हमारी हाजरी में रहते हो, सच्चे दिल से रहा करो। तुम्हारी सच्चे दिल से की हुई सेवा तुमको नियत बरखोगी। तुम्हारी यही इबादत और बन्दगी है। प्रेमी । सच्चे जिज्ञासु को चाहिये कि मन, वचन, कर्म से गुरु भगति कमावे।

प्रेमी : महाराज जी ! सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरण के साधन आपने बतलाये हैं। सेवा कैसी करनी चाहिये। आजकल तो पता ही नहीं कि किसकी सेवा की जावे, किसकी न की जावे। इस पर रोशनी डालने की कृपा करें।

गुरुदेव : प्रेमी । यह सब साधन जीव के कल्याण के वास्ते हैं। सेवा का मार्ग ही एक ऐसा साधन है जो कि सब प्रकार के विकारों से छुटकारा देने वाला है। इस मोह-माया के घोर अन्धकार से निकलने के लिए सेवा रूपी दीपक ही

एकमात्र सहारा है। सेवा का पहले अर्थ समझो, सेवा क्यों की जानी चाहिये? केवल किसी अन्धे-मोहताज को दो पैसे दे देने से ही सेवा नहीं होती है। सेवा पर विचार दो घड़ी में नहीं हो सकता। जीव को हर समय तीन प्रकार की वासना यानि कामना बनी रहती है। शारीरिक भोगों में हर घड़ी गिरफ्तार रहता है। सेवा, पर-उपकार में धनी धन खर्च करके लोभ-वृत्ति कम कर सकता है। श्रद्धा प्रेम से निष्काम सेवा करके ही शान्ति मिल सकती है। चाहे किसी गरीब, अनाथ की करे, चाहे किसी समाज, देश, संसार की सेवा में तन, मन, धन द्वारा समय दे। इस नियम को धारण करने वाला ही विजयी हो सकता है। अपने परिवार की सेवा स्वार्थ में बंधा हुआ रात-दिन मजदूरों की तरह लगा रहता है। आखिरकार जब अन्त समय आता है तब पता चलता है कि क्या खोया, क्या पाया। जो इस सत सेवा के नियम में नहीं विचरते वे कामनायुक्त होकर हर समय लोभ, मोह, मान, मद-ईर्ष्या आदि अवगुणों में तपायमान होते रहते हैं। कुदरत की जितनी भी चीजें सूरज, चाँद, धरती, पानी, आग दिखाई दे रही है सबकी सब निष्काम भाव से सब जीवों की सेवा में लग रही है। एक मनुष्य ही ऐसा है जो रात-दिन अपने स्वार्थ को पूरा करने के वास्ते लगा रहता है। ऐसे नारकीय जीव किसी गिनती में नहीं होते। नाम उनका ही चला आ रहा है जिन्होंने संसार में आकर ईश्वर का भजन किया। संसार और संसारियों की सेवा मन, वचन, कर्म से जैसी बन सकी, करते रहे। अपने दिल को टटोलकर देखें, कहां तक किसी दुःखी, अनाथ, बेवा, किसी भूखे पडौसी की सेवा की है। अगर किसी संगत, समाज में दान देते हो तो खूब बोलकर सुनाते हो, मेरा भी यह लिख लेना। पहले सेवा का स्वरूप समझो, फिर सेवा करके देखो। किस कद्र मानसिक शान्ति व पवित्रता प्राप्त होती है। प्रेमी जी! कुछ करने से ही लाभ होगा। खाली इस तरह पूछते-पूछते उम्र गुजार देने में कहां तक खुशी मिल सकेगी। शरीर सेवा करने से ही पवित्र होता है। धन को अच्छे कर्मों में लगाने से उसकी सफलता होती है। भजन, सिमरण, ध्यान ईश्वर का करने से मन की शुद्धि होती है। इस तरह करते-करते सत्स्वरूप आत्मा को अनुभव कर लेता है। एक सेवा के न धारण करने से कोई भी दूसरे साधन अच्छी तरह न बन सकेंगे। सेवा ही एक ऐसा साधन है जिसलिए तन-मन-धन अर्पण करना पड़ता है। मन वचन कर्म से प्रभु परायणता में दृढ़ होने से ही सेवा धर्म पूरी तरह बन सकता है। जिस कद्र इस मार्ग में चला जाए, पूरी लगन

से तमन्य होकर चलना चाहिये।

प्रेमी : महाराज जी ! बहुत बार देखा है कि आप बड़ी उदासी से बैठे हुए होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आप नाराज या नाखुश हैं।

गुरुदेव : प्रेमी जी ! तुमने अच्छा अन्दाजा लगाया है। वाकई यह हर समय संसार की अधोगति का विचार सामने रखते हुए उदास रहते हैं। इन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता। जिसे संसारी लोग सुख व आनन्द रूप समझते हैं, इनको दुःख और अशान्त रूप नजर आते हैं। संसार की कोई चीज सुख सम्पत्ति इनको मोहित करने वाली नहीं है। इन्होंने किसी से नाराज होकर क्या लेना है? कोई इन्हें रोगी कहते हैं, कोई कुछ, इधर किसी प्रकार का दुःख, रोग, चिन्ता नहीं है। इनका दुःख बहुत ही निराला और आश्चर्य वाला है। जैसी जैसी उदासी इनके अन्दर आई हुई है, ऐसे उदास चित्त विरले ही जीव हुए हैं, जिन्होंने इस उदासीनता को अपनाया है और परम तृप्त होकर संसार से गये हैं। हजारों प्राणी उनकी शिक्षा द्वारा सत् विचारों को पाकर निर्मोह, निर्लोभ हो गये। वे परम पद के अधिकारी थे। दुनियाँ वाले इनको पागल, दीवाना, जादूगर नाम देकर पुकारते रहे। वे सबकी सुनते रहते थे। किसी की बातों में नहीं आते। संसारी और फकीरों के रास्तों में बहुत भेद है। संसारी घड़ी भर एक चित्त होकर विचार नहीं करते कि यह स्त्री, पुत्र, नौकर-चाकर, मान-प्रतिष्ठा नाना प्रकार की सम्पत्ति आखिर है क्या चीज । अच्छी तरह विचार की आँखों से देखा जावे तो यह सब विनाश रूप हैं। जीव इन सबके वास्ते किस तरह दिन-रात जाया (व्यर्थ) कर रहा है। शरीर सहित किसी वस्तु ने इस जीवड़े के साथ नहीं जाना। अच्छी तरह विचारोगे तो इनकी सार कुछ नहीं पाओगे।

सच्चा धर्म - स्वरुप और लक्षण

वाणी

सत धरम का सुनो निधान, मानुष जनम को देवे कल्यान ।
धरम सरूप का निश्चा जोई, सकली विपता जीव की खोई।
धरम मूल धरम आधार, धरम ही बन्ध छुड़ावन हार।
धर्म का रूप चिन्ह आकार कोई नाही, समूह सत कर्म सो धर्म लखाई।
अत सत करम में धरी परीती, साच धरम की पाई नीति।
मज़हब पन्थ के नहीं धर्म आधार, धरम सहित चले चक्कर संसार।
प्रभ की निर्मल रीती जोई, धरम सरूप कहलाए सोई।
शान्त मारग जो जतन लखाई, धरम सरूप जानो गुनी राई।
जिस जतन से मन निर्मल होई, सो साधन नर धरम कहलोई।
जिस वस्तु से मन तृप्ताये, निरना धरम का सो वस्त कहलाए।
पाप करम जिस भान्त से नासे, कल्यान सरूप सो धरम विलासे।
जीव की भरमन अविद्या जाये, साधन सार धरम जब पाये।
अनेक सरूप धरम ना धारी, कल्यान का मारग एक लखारी।
पूरब पच्छम का जीव जो होई, कल्यान धरम सब एक लखोई।
जिस जुगती से जीव कामना जाये, मारग धरम सो सत कहलाये।
जिस करनी से जाय गुमाना, सत सरुप सो धरम पछाना।
जिस साधन से काल परहरे, सो साधन रूप धरम उच्चरे।
जो मुशक्कत करे बन्ध खुलासी, मारग धर्म सो सत परगासी।
हंग बुद्ध विकार को छेदे, मारग धरम का तब जन बेधे ।
एक परमेश्वर पर आयो विश्वासा, सो जन मारग धरम निवासा।
कल्यान का उद्दम जब जीव चित्त धारी, मारग घरम तब लेख विचारी।
अपने बन्धन का जब करे उपाये, मारग धरम शान्त तब पाये।
भय भरम जब मन निवारी, सत धरम तब कथा विचारी।
धर्म का रूप ना जीव कोये, ना कोई मज़हब और पन्थ।
'मंगत' यतन जो मुक्त का, सो धर्म कर वाचें ग्रन्थ।।

प्रवचन

शरीर रूपी संसार को धारण करके हर एक जीव अपनी समझ के मुताबिक रात-दिन संसार को फैलाने में लगा हुआ है। जैसी जैसी जिसकी जितनी समझ है वैसा-वैसा जरूरत के मुताबिक (अनुसार) वह सामान जीवन निर्वाह का एकत्र कर रहा है, चाहे मनुष्य है चाहे पशु-पंछी है। चरिन्द-परिन्द-हैवान जो भी है हर एक शरीरधारी का यतन अलग-अलग है। हर शरीरधारी की बुद्धि किसी सुख आराम और ठिकाने की तलाश में घूम रही है। जरा गौर (ध्यान) से सबके जीवन को देखा जावे तो मालूम पड़ेगा कि सब ही अशान्ति में विचर रहे हैं। जिन शारीरिक सुख पदार्थों की खोज की दौड़ लगी हुई है उनकी प्राप्ति हो जाने पर भी किसी को आराम नहीं मिल रहा। इस बात का ठीक तरह पता नहीं लग रहा कि इन्हीं साजो-सामान द्वारा मुकम्मिल शान्ति मिल जायेगी या नहीं, यह सरब सुख मुकम्मिल हैं या ना-मुकम्मिल। इस अज्ञानता में सब जीव भटक रहे हैं। पशु आदिक की भटकना तो बनी ही रहेगी क्योंकि उनके अन्दर ज्ञान की कमी है। सूझ-बूझ सिर्फ पेट भरने तक की है। मनुष्य तरह-तरह के विचारों वाले हैं ज्यादातर शारीरिक सुखों की प्राप्ति के वास्ते लगे रहते हैं। उसके वास्ते धन-सम्पत्ति ज्यादा से ज्यादा एकत्र करते हैं क्योंकि धन के होने से सर्व पदार्थ अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। इस बात का इल्म (ज्ञान) कम लोगों को लगता है कि इन्द्रिय भोगों से मुकम्मिल शान्ति मिल सकती है या नहीं। ऐसी सशययुक्त बुद्धिया परेशानी हैरानी में पड़ी रहती हैं, कोई विरली ही होशमन्द बुद्धि सही रास्ता ढूंढने की कोशिश करती है। वैसे सब जीव जैसे प्यासे आते हैं वैसे ही आखिरकार शरीर छोड़कर चल देते हैं। इस दौड़-धूप में पूरी तसल्ली नहीं मिलती। तृष्णा रूपी अग्नि सब जीवों को तपायमान कर रही है। पैदायश से लेकर आखिरत तक भ्रम में ही निकल जाता है। न किसी खाना खाने में तसल्ली मिलती है, न पीने में, न किसी भोग रस से तृप्ति मिलती है, चाहे अधिक से अधिक धन प्राप्त कर ले, बहुत परिवार बढ़ा ले। बहुत कीर्ति वाला बन जाये, पर चित्त की अशान्ति बढ़ती ही जाती है। चक्रवर्ती राजा बनकर भी चैन नहीं। गरीबों में तो लाचारी बनी ही रहती है।

तृष्णा लागी अग्नि, पल पल होए अंगार।
मिले ना पलक की शान्ति, कोटक किये विचार ।।
अधिक धन माल प्राप्त पायो, और अधिक परिवार।
पाई कीरत घनी जग माहीं, मिटयो ना मन अन्धकार ।।

मन का अन्धकार बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों संसार की मान बड़ाई में लीन हो जाता है। ऐसा कभी विचार ही नहीं आता, धर्म भी कोई चीज है। ऐसा माया-मोह में अन्धा होकर विचरता है, अपने समान किसी को देखता ही नहीं। जिस भी जीव ने संसार में उच्चता पाई है धरम धारा पर चलकर ही चित्त की शान्ति प्राप्त की है। जहां पर सांसारिक सुखों की जरूरत है वहा पर धीरज नहीं आ सकता। बड़े महान पुरुष संसार में वे ही कहलाया करते हैं जिन्होंने सन्तोष रूपी धन इकट्ठा किया है। ऋषि, मुनी, अवतार, गुरु, गुसाई और वेद ग्रन्थ का सार उपदेश यह ही है कि संसार में आकर जीव को अविनाशी धन एकत्र करना चाहिये जिसके द्वारा लोक-परलोक में उसकी परम शान्ति बनी रह सकती है। ग्रन्थों में दस प्रकार के लक्षण बयान कर रखे हैं- 'धीरज धार सत मारग बेधे, त्रैगुन जाल दुस्तर को छेदे।" सबसे पहले **'धृति'** यानि धीरज-यह तब ही आ सकता है जब चित्त चंचलता त्यागकर अपने किसी सिद्धान्त, श्रद्धा, विश्वास पर टिक जाता है उसे धीरज कहते हैं, जो कि हर जीव को प्राप्त नहीं हो सकता। मन की स्थिरता और अटल धारणा से ही धीरज प्राप्त होता है। इसके बाद **'क्षमा'** का दूसरा अंग है। दूसरों की गलतियां (अपराध) माफ कर देना। यह गुण तब ही प्राप्त हो सकता है जब सत् धर्म में विश्वास होगा। जब किसी सत् मार्ग पर चल रहे होंगे तब उस धर्मी के अन्दर क्षमा का गुण प्रवेश कर सकता है। धर्म वालों के अन्दर कुदरती तौर पर क्षमा और शील होते हैं। धर्म से हीन जीव जिद्दी, हठ वाले, क्रोधी हुआ करते हैं। तीसरे **'दम'**-मन को दमन यानि काबू में रखने को दम या दमन कहते हैं। चौथा **'अस्तेय'** चोरी का त्याग अस्तेय कहलाता है। मन-वचन-कर्म से चोरी का त्याग करना जरूरी है। पांचवां 'शौच'-तन-मन-धन की शुद्धि, किरत-कमाई और खान-पान की शुद्धि ही शौच है। जब तक आहार की शुद्धि न हो विचार, आचार की शुद्धि नहीं हो सकती। छठा **'इन्द्रिय निग्रह'** -सरब इन्द्रियों के रस स्वाद पर मर्यादा रखने वाले ही धर्म के सार को समझ पाते हैं। इन्द्रियों पर जब्त कर लेते हैं। सातवां-**'बुद्धि'** को स्थिर करना जो हर एक धर्म वाही का फर्ज है। धर्म के मार्ग पर चलकर ही बुद्धि स्थिर यानि निश्चल हो सकती है। आठवां

'विद्या'-धर्मात्मा पुरुष ही असली विद्वान होते हैं, विद्या के सार को जो जान लेते हैं। नवां **'सत्य'**-मन, वचन, कर्म द्वारा सच्चाई को मानना और सदा मीठा बोलना। कड़वा कभी न बोलने की कोशिश करना। दसवां अक्रोध- क्रोध न करना। यह ऐसे धर्म के लक्षण हैं, जिनको मानकर ही. असली मायने में मनुष्य बन जाता है। मनुष्य से देवता हो जाता है। यह मुख्तसर (संक्षिप्त) सा विचार सबके सामने है जो कि हर एक मनुष्य के वास्ते जरूरी धर्म है। इन धर्म के अंगों को और छोटा रूप देकर इस तरह समझाया जा रहा है। सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरन यह पांच मुख्य धर्म अंगों में सब तरह के निर्मल विचार आ जाते हैं। यह ज्यादा पढे-लिखे नहीं। मोटे-मोटे विचारों द्वारा बतलाया जा रहा है ताकि सबको समझ आ जाए। रोजाना संसार की असारता और सत् की महानता पर विचार हो रहे हैं। जो जिसको अच्छे लगे धारण करके जीवन अपना पवित्र करे। प्रेमियो! दो-तीन रोज और रह गये हैं, समय निकालकर संगत में हाजिर होकर लाभ लिया करो। ईश्वर सबको निर्मल सुमति बख्खो। जिन्होंने सच्चाई का अनुभव किया उनको ही ऋषि, मुनि, ज्ञानी, योगीजन कहा गया है। सब ज्ञान, ध्यान मनुष्यों के वास्ते ही ब्यान कर गये हैं। उसी का जीवन कृतार्थ होगा जो अपने गुरुओं के वचनों पर दिलो-जान से अमल करेगा। अमली जीवन वाला ही परम सुखी हो सकता है।

वैराग्य वाणी

अती बखेडा जन्म का मीता मिल साध संगत पाई सारा।
आवन जावन सकल तमाशा यह माया भरम गुबारा ।।
करम भोग न देवे प्रसन्नता मृग तृष्ना दुःख भारी।
प्रभ चरण कॅवल की शोभा जानी तब उतरे भव निध पारी।।
सुकृत सीख मन तन समाई सत करतार ध्याया।
पूरन करम अनमत का जागा प्रभ भगति मारग पाया।।
एक पलक न विसरे स्वामी छिन छिन नेहूं कमाई।
डोलन त्याग मन नेचल होवे घर साचा साहिब दरसाई।।
दर्शन पाये मन भया आनन्दित इच्छा रोग सब नासा।
'मंगत' अन्तरगत तत्त सूझा आद पुरख अबनासा ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! इतने धर्म न माने जा सकें तो फिर क्या करना चाहिये?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! सबसे बड़ा दुश्मन क्रोध है। इसे कम करने की कोशिश करो। किसी के बारे में दुर्भाव न रखो। किसी गुण का अभिमान न आने दो। किसी के गुण-दोष प्रकट करने की कोशिश न करो। जो अपने मित्रों के साथ भी धोखा कर जाता है, पीठ पीछे उनकी निन्दा व बुराइयों करता है। उल्टा-सुल्टा बोलने की खराब आदत वाला है। अपने साथ भला करने वाले का भी जो विरोधी है, जो प्राप्त शुदा खान-पान और कपड़े आदि वस्तुओं को खुद ही अकेले उपभोग करने वाला है. ऐसा मर्यादा से हीन जीव धर्म के मानने वाला नहीं बन सकता। अब तुम आप ही विचार कर लो किस तरह जीवन को पवित्र बनाना है। जो-जो भी महापुरुषों ने सुधार के नियम बयान कर रखे हैं सबको अपनाकर ही मनुष्य से देवता बन सकता है। अहंकार और क्रोध करके इस जीव के अन्दर निर्वाणता नहीं आ रही। किसी को अपना रहबर मानकर चलने में हतक (बेइज्जती) समझाता है। सत्संग में जाकर ही इस बात का ज्ञान मिलता है कि जीव कौन है ? कहाँ से आया है? किधर इसने जाना है? जो संसार में देखने में आ रहा है, यह क्या है? इसके बनाने वाला कौन है? किसने इतना बडा पसारा फैलाया हुआ है? अपने गुण अवगुणों का पता लगता है। गुरमुख मनमुख बनने का विचार मिलता है। अच्छी तरह सोचो, मानुष जामा क्यों मिला है?

प्रेमी : महाराज जी ! जिन्दगी में पहली बार ऐसा सत्संग सुना है। मन्दिर में जब कभी जाते हैं, कीर्तन सुन आते हैं, वाह-वाह कर देते हैं। हमें तो धर्म के मामले में कुछ मालूम नहीं। जितने भी अवगुण बयान फरमाये हैं, थोडे बहुत अवगुण हर मनुष्य के अन्दर रहते हैं। आपकी कृपा हो जाये तो कुछ छुटकारा हो सकता है।

गुरुदेव : प्रेमी, वासनायें और तृष्णायें सब ही विष रूप हैं। इनकी लालसा में पड़े हुए जीव नित ही तृखावन्त रहते हैं। कभी तृप्ति किसी भोग से नहीं हो सकती, आखिरकार दुर्गति को प्राप्त होते हैं। ईश्वर सबको ठीक रास्ते पर चलने की बुद्धि बख्शे । प्रेमियो ! सत्संग को परम सखा समझना। सबसे बड़ी गंगा सत्संग ही है जिसमें बैठकर सत् बुद्धि प्राप्त होती है।

भेख अहंकार का सूचक है, उद्धार का नहीं

वाणी

पाखण्ड धार नहीं सत तत सूझे, देह के भोग में नित ही लूझे।
देह के भेख से नहीं बने आचारी, जो घट अन्तर नहीं सार विचारी।
देह के भेख से नहीं होये बैरागी, जो घट अन्तर नहीं विरह प्रभ जागी।
देह के भेख में नहीं सन्यास, जो घट अन्तर नहीं परकाश।।
देह के भेख नहीं योग को पाई, जो अन्तर नहीं शब्द ज्ञाई।
ज्ञानी गुरु होवे अवतार, जोगी जंगम तपी तप धार ।।
साधक सिद्ध सेवड़ा होए, उदास बैरागी भेख बसोए ।
नानां मत पंथ विचारी, बहु बिध ज्ञान विवेक को धारी।।
सबका साधन मूल है एक, साचे शब्द का कथो विवेक।
शब्द भेद जो चित्त नहीं पाया, झूटे भेख में नित भरमाया ।।
दीन दुनी दोनों गंवाई, साचा शब्द जो नहीं अर्थाई।
कयूँ ना पाये मूल ठिकाना, भेख धार जुग जुग भरमाना ।।
देह के भेख से सरे नहीं काजा, जो अन्तर नहीं शब्द अनुरागा।
मन की दुर्मत कभुं ना जाये, बहुरंग धार भेख वटाये।।
अन्तर जुगत नहीं जानी सार, सत शब्द पुरख निरंकार।
झूटा संजम तप कमावे, इन्द्री भोग में नित भरमावे ।।
देह अभिमान नहीं जाय विकार, जो रमावें नित ही छार।
प्रेम भगत बिन सब दुःख पायें, धार भेख अन्तर भरमायें ।।
साचा भेख दीनता जान, कोटाँ मधे कोई करे पछान।।
मन की ममता ना मिटी, बहु रंग भेख बनाये।
"मंगत" दुर्मत जाल से, पलक ना छूटन पाये।।

प्रवचन

जो-जो जीव वासनाओं को पूरा करने के पीछे पड़े रहते हैं उनकी तृष्णा यत्न प्रयत्न करने पर भी शान्त नहीं होती। इन्द्री भोगों की लालसा की वासना मात्र ही दुःख का अम्बार खड़ा कर देती है। जिस मोक्ष (निजात) के वास्ते कई तरह के साँग बना रहा है असल में दीर्घ वासनायें ही सत मारग में रुकावट हैं। सुख भोग जाहिरन बडे सुन्दर मालूम होते हैं पर इनका नतीजा कर्मफल जब मिलता है तब दुखी होता है। भोग भोगते समय तो ठीक लगते हैं पर इनका अंजाम अच्छा कभी नहीं हुआ। बेमर्यादगी ही दुःखों को लाती है। वासना युक्त जीव हर समय कुसगो में ग्रस्त रहता है। कोई ही गुरमुख इनसे अलग होने का यत्न करता है। चाहे सिर पर जटा बढ़ाये, भगवे रंग के वस्त्र क्यों न धारण कर ले, मृग आसन पर बैठने वाला क्यों न हो, कण्ठी मालाएं धारण कर रखी हों, दुष्टवृत्ति को कोई भी यह साधन ढक नहीं सकता। सिर पर जटा बढ़ा ले या रुण्ड मुण्ड हो जाये, तृष्णा रूपी रोग इन तरीकों से दूर नहीं हो पाता। अहंकार बढ़ता ही जाता है। और भी कई तरह के साधन इस मोह को दूर करने के वास्ते किये जाते हैं। सब कुछ करके भी मैं त्यागी, मैं नॉगा, मैं सन्यासी भाव उसी तरह बने रहते हैं, निर्वाणता नहीं आती। बडी-बडी भस्म रमा लेते हैं। जमीन पर सोते हैं, शरीर पर मैल जम जाती है। कभी पानी में खड़े रहते हैं कभी जागते रहते हैं। इस तरह करने से मन की शुद्धि नहीं हो सकती। शारीरिक भेख भेखान्तर मन की शुद्धि नहीं होने देते। इनको छोड़ो। जो विवेकहीन पुरुष मन, वचन, कर्म से शरीर के बनाव श्रगार में मग्न रहते हैं वे अपने लिए दुःख ही खरीद लेते हैं, मन की शान्ति नहीं पाते। समय तेजी से निकला जा रहा है, रात पर रात बीत रही है। प्रेमियों! अपनी आखिरत का बार-बार विचार करो। ऐसा समय फिर न मिलेगा। मानव जीवन में ही अपना उद्धार आप करने का यत्न करो। शरीर बहुत देर रहने वाली चीज नहीं है। इस वास्ते इस छिन-भंगुर शरीर का लगाव, मोह कम करके वासना से निर्वास होने का यत्न करो। संयम न रखने वाले जीव चौबीस घण्टे मोह को बढाने के फेर में रहते हैं। ऐसे मनमुख जन्म-जन्मान्तर तक सत् बोध प्राप्त नहीं कर सकते। सन्तों के पास जाने का मकसद (ध्येय) यह ही है कि वहाँ से जो कुछ सुना जाये उस पर अमल किया जाये। आज जो भोगवाद बढ़ता जा रहा है इसका आखिर अंजाम जो होगा दुनियाँ वाले देखेंगे।

पंचा दा कहया सिर मथ्थे, परनाला उत्थे ही उत्थे।

सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग, सत् सिमरण के बारे में रोजाना कहा जाता है। जीवन को अमर बनाने वाले उसूल हैं। सबसे बड़ा दुःख पहले शरीर का पैदा होना है। युवा और बुढ़ापा भी दुःख स्वरूप है। कई तरह के रोग भी दुःख स्वरूप हैं। बार-बार मरते रहना भी दुख रूप ही है। जिस प्राणी को देखो वह ही क्लेश पा रहा है। यह शरीर अनित्य है। तीन काल अपवित्र है। दुःख और क्लेशों का घर है। जीवात्मा सदा इसमें रहने वाला नहीं। एक रोज अचानक इस चोले को छोड़कर ही जाना होगा जिस तरह किराये के मकान को एक दिन छोड़ना पड़ता है। यह शरीर खून, पित्त, नाड़ी, हडड़ी, मांस कई तरह की चीजों से बना हुआ है। आखिरकार इसका अन्त होकर रहेगा। अन्त होने से पहले-पहले सोच करने वाला ही साधु है। इस संसार में जितने प्राणी हैं सब अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्मों के कारण ही दुःखी-सुखी हो रहे हैं। कर्मों का फल भोगे बिना कभी छुटकारा होने वाला नहीं। कहते भी हैं यह शरीर पानी का बुदबुदा है, नाशवान है, छिनभंगुर है, एक दिन छोड़ना है। हर समय संसार को सत मानकर ग्रस्ते चले जा रहे हैं। जो संसार में ग्रस्त नहीं होते वे ही साधक पुरुष जानने चाहिये। हर समय अपनी बेहतरी सोचनी चाहिये। इस आधि व्याधि के मन्दिर को हर समय दुःख स्वरूप जानकर इसके मोह से छूटने का उपाय करना ही मानुषपना है। ईश्वर तुम सबको निर्मल सुमति बखों। संसार में आने का यथार्थ लाभ समझें। दूसरों के लिए या अपने लिए जो कुछ भी रात-दिन अच्छे-बुरे कर्म करके खुश रखने की कोशिश करते हो, सब कर्मों का भुगतान इस अकेले जीव ने ही करना है। भोगते समय कोई हिस्सेदार नहीं बनेगा, न बन सकता है। जिन बुरे कर्मों का संस्कार डालकर पालन-पोषण में लवलीन रहता है वह ही इसका पीछा नहीं छोड़ते। इस वास्ते हर घड़ी, हर समय अपने उस बनाने वाले प्रभु को याद रखा करें जो तीन काल रक्षक है। सदा ही पतित उद्धार है। मालिक सबको सत सोझी बख्शे।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी। आपने अनेक तरह के भेख का खण्डन बड़े अच्छे तरीके से किया है मगर यह जो बाना साधु का बनाया गया था किसलिये ऐसी प्रथा चलाई गई थी?

गुरुदेव : प्रेमी ! जो मनुष्य आत्म आनन्द में ही रमण करने वाला है वह हर घड़ी तृप्त रहता है, उसे कुछ भी, किसी भेख से, कोई मतलब नहीं है। मेख जरिया गुजरान आहिस्ता आहिस्ता बनते जा रहे हैं। जिसने विरह अग्नि में अपनी सब ख्वाहिशें दग्ध कर दी है वह ही भगवा वस्त्र ओढ़ने का हकदार है। वह भी लाल मिट्टी में रंग के, न कि रेशमी कपड़े रंग-रंग कर पहनने वाले को साधु कहा जा सकता है। आत्मा से ही आत्मा का उद्धार करो, आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। जिसने भी जिस जगह रहकर अपने सत यत्न द्वारा शक्ति लगाकर अपने आपको जीत लिया है उसका आत्मा उसका बन्धु है। अपने आप का दमन करना अति कठिन है। कोई भेख इसमें सहायक नहीं हो सकता। मतलब यह था मोटा-मोटा पहनकर, थोड़ी से थोड़ी अपनी गुजरान का जरिया (साधन) बनाकर ज्यादा से ज्यादा आत्म आनन्द में जाने का यत्न करता रहे। भेख में सिवाय अहंकार बनने के और कुछ प्राप्ति नहीं होती। शिक्षा अपनाने में उद्धार है। किसी नकल उतारने में दम्भ भरा रहता है। एक आत्मा को जीतने वाला लाखों योद्धाओं पर जीत पाने से श्रेष्ठ है।

प्रेमी : महाराज जी। तितिक्षा का मतलब क्या है?

गुरुदेव : प्रेमी। इसका थोड़े में मतलब यह है कि गर्मी-सर्दी, सुख-दुख. मान-अपमान वगैरह को बरदाश्त करता है वह साधु ही है। ऐसा साधक हर हालत में अपने आपको सम अवस्था में रखता है, जो भी दुःख सुख अपने ऊपर आये यह ही समझे कि ईश्वर ने मुझे परीक्षा में डाल रखा है जो चीजें उसे सुख रूप में प्राप्त हों उनको बांट दे। दुःख को जो मित्र समझता है, बरदाश्त करता है वह ही सत्वृत्ति है। कुछ करना ही बेहतर है, जिस करने में जीव का उद्धार हो। प्रमु की कभी आज्ञा हुई तो विचार हो जायेंगे।

वैराग्य वाणी

देह ममता को धार के, नहीं कुछ सार पछानी।
संशे में औधी गई उठ चला निरासा प्राणी ।।
देह के सुख के कारने यत्न किये बहु भान्त ।
पलक में सब विनस गई नहीं चित्त पाई शान्त ।।
अन्धमत भूला अत घना नहीं सरजहार विचारया।
माया मोह को धार के विच जूए जन्म को हारया।।
सुन सत पुरुषों की सीख मन अब तो हो सुचेत।
सरजनहार पहचान के नित राखो तिसकी टेक ।।
ज्यों चलावे सुख कर माने नम्र भाव चित्त धार।
पल-पल कर तिसको बन्दना, जाय बन्धन संसार ।।
सब कुछ हुआ तिसका जान अपना त्याग गुमान।
"मंगत" भगती रंग रंगे तब पावे कल्यान ।।

जीवन की सफलता प्रभु नाम सिमरण में

वाणी

एह बिध धरम कमाओ मीता, सुफल जनम आगे सुख रीता।
नित सत्संग सत् कथा विचार, सत करम नित हिरदय धार।
पूरन विश्वास प्रभ चरण में राखो, सकल जगत प्रभता तिस जापो।
सन्ध्या प्रात:काल नित ध्याओ, दृढ़ नियम यह गुरमुख पाओ।
शुद्ध ब्योहार करो दिन राती, कपट विकार कभी न चाखी।
इक दिन जग से चलना विचार, ताँ सों सत् कर्म नित धार।
दीन दु:खी की सेवा धारो, परम प्रीत सब संग विचारो।
जतन जतन कर सत् धर्म कमाओ, दुरलभ शान्त परम गत पाओ।
इन्द्री विकार से मन को ठाको, सत किरिया नित अन्तर राखो ।
साहिब चरन संग प्रीत अधिकाई, सिमर सिमर परम सुख पाई।
सकली दात प्रभ हुकम पछानी, भूलकर हिरदय ना धरें अभिमानी।
सरजनहार जो पुरख अबिनाशी, भाव प्रीत जप नाम सुखरासी।
करम विकार नर सहज ना जाई, आवागमन का फेर फिराई।
सत परतीत प्रभ नाम जब पावें, करम विकार की मैल तब बहावें।
मन अपने में मान नहीं राखो, सत धरम की कीरत नित चाखो।
झूट देही का पावें विछोड़ा, सिमर दयाल सरब गत पूरा।
उठत बैठत प्रभ चरन चित्त रहाई, सत विश्वास पावे परम सुखदाई।
सुपन समान जग देखन आया, नाम विसार के अन्त पछताया।
गरब गुबार में अन्धमत होई, धरम विसार नर पावें ना ढोई।
मानुष जनम का फल अधिकाई, सम्पत धरम जो हिरदय आई।
सत मारग की रसना पाई, सत नाम की प्रीत लखाई।
सत यतन नित हिरदे धारी, महा विकार रूप गरब निवारी।
नेहचल चित्त सत शान्त परगासी, मानुष चोला तब भयो सुखरासी।
प्रेम प्रीत सतनाम ध्याई, कोट विघन पल नाश समाई।
बिपत हरन मंगल करन प्रभ का नाम अपार ।
'मंगत' जो ध्याये नित प्रेम से तिस चरनी बलिहार ।।

प्रवचन

जो भी जीव इस शरीर रूपी संसार में आया हुआ है उस शरीरधारी के अन्दर भोगों की बासना बनी रहती है, जो कि अधिक बन्धन और अधिक दुःख स्वरूप मलीनताई के देने वाली होती है। इस वास्ते हर घड़ी सत् विश्वास को धारण करके शारीरिक मोगों में मर्यादा धारण करना ही निर्मल कल्याण को देने वाला सत् यत्न है। सब सांसारिक जीव भोग-वासना की अग्नि में रात-दिन तपायमान हो रहे हैं। आज तक किसी को भी बिना आत्म शान्ति के परम प्रसन्नता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि आत्म सत्ता सदा शान्त स्वरूप और सुख स्वरूप है और सर्व सांसारिक संग अशान्त और खेद रूप हैं-

मैं जानां दुःख मुझको, दुःखी सभयां जग।
ऊंचे चढ कर देखया, घर-घर एहो अग्ग ।।

जब तक जीव संसार के, शरीर के और शारीरिक भोगों के परायण रहता है तब तक पूर्ण निश्चय से सत् स्वरूप प्रभु के परायण नहीं हो सकता। असत् परायणता ही भोगमयी जीवन की तरफ जबरन जीवो को ले जाती है। भोगमयी जीवन की स्थिति धारण करने से उसका नतीजा यह होता है कि रात-दिन जीव-वासना के जाल को फैलाने में लगा रहता है। इस तरह यत्न-प्रयत्न करने से भी इसको मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं होती। गौर से देखा जाये, न तो बड़े से बडे राजा को शान्ति है न प्रजा को। हर लमह हर जीव अधिक लालच के फैलाव में आकर एक-दूसरे की नाश का विचार सोचने में लगा रहता है। ऐसे भयानक काल में हर एक गुनी पुरुष को विचार करके चलना चाहिये। सत् परायणता के बल से ही अपने आपको सत् मार्ग में दृढ़ करने का यत्न करें। बढ़े हुए लालच को त्यागकर जीवन की धारा को मर्यादा में लावें। मन, वचन, कर्म द्वारा नित ही सब जीव मात्र की कल्याण सोचें। जब तक सत् भावनाओं में दृढ निश्चय नहीं बनता मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी। हर एक जीव की अन्दरूनी चाहना यह ही रहती है कि किसी तरह मन में धीरज, सन्तोष, शान्ति आ जाये। ऐसे तब ही हो सकता है जब जीव सत् यत्न को जीवन में अपना कर्त्तव्य समझेंगे। सब शुभ गुण सत्पुरुषों की कृपा द्वारा सत् शिक्षा से हासिल हो सकते हैं। जीते जी मरने के बगैर न सांसारिक सुख मिलते हैं न परम पद की प्राप्ति होती है। सत् की प्राप्ति के वास्ते सही मार्ग इख्त्यार करके ही जिन्दगी में जिन्दगी मिल सकती है।

पहले मरन कबूल कर जीवन की तज आस।
हो जगत की रेनुका तब आओ हमारे पास।।
वस्तु कहीं ढूँढे कहीं कह विध आवे हाथ।
कहे कबीर तब पाइये जब भेदी लीजे साथ ।।

मनमुखता किसी हालत में किसी के वास्ते लाभकारी नहीं हो सकती। गुरमुखों के वास्ते सत्पुरुष सदा से गुरमुखी मार्ग दिखाया करते है। इस मिथ्या संसार में अगर जन्म की मौज हासिल करनी है तो उनके कहने के मुताबिक अपना जीवन बनाने की कोशिश करो, तब जाकर संसार में आने का यथार्थ लाभ मिल सकेगा। ममता भाव नित ही दुःख स्वरूप है। समता भावों के अन्दर रहकर सुखी हो सकते हो। नित ही हृदय में उस मालिक की याद बनाये रखें। मान, अहंकार को नजदीक न आने दें। दीनता यानि निर्माणता द्वारा सत् शब्द में प्रेम अनुराग बन सकता है। प्रभु की भक्ति में जो लवलीन रहने का यत्न करता है उसके सर्व पाप दोष नष्ट होते आये हैं। ब्रह्म स्वरूप शब्द का भेदी अन्तर्मुख होकर माया से अतीत होता है। खाली बातों से सत् पद प्राप्त नहीं हो सकता। ज्ञान ग्राही होकर पूरी कोशिश से सुरती को ठिकाने लगाना होगा तब जाकर आत्म तत्त में स्थित हुआ जाता है। पहले जीवन में कर्म-अकर्म के भेद को समझो। सारा समय संसारी धन्धों में लगे रहकर शरीर जब थक कर आलस्य निद्रा में चला जाता है फिर क्या ध्यान-ज्ञान बन सकता है। शारीरिक सुख के वास्ते नाना प्रकार के कष्ट उठाये जाते हैं। आला से आला (अच्छे से अच्छे) भोगों को भोगकर भी मन संसार से उपरस नहीं होता, बल्कि वासना बढ़ती ही जाती है। इन्द्रियों का बल कम हो जाने पर भी मन से तृष्णा खत्म नहीं हुई, इसका कारण कभी किसी ने अन्तर्मुख होकर विचार में नहीं लाया, न ही इन मिथ्या भोगों से उपरस होकर आत्म भोग की तरफ जाने की किसी गुनी ने कोशिश की है।

कोटां मधे जन कोई विवेकी पावे भेद अपार।
'मंगत' जिस जन सोझी पड़ी तिस चरण जाऊं बलिहार।।

बड़ा ही भाग्यशाली जीव है जिसे सारा संसार मिथ्या भासे और केवल एक सत् का सरब पसारा जाने। इस तुच्छ जीवन में धन्य उसका वैरागी जीवन है जिस जीव की प्रीति रोम-रोम में रहने वाले राम के चरणों में लग रही है-

एक राम दशरथ का बेटा, एक राम घट घट में लेटा।
एक राम का सकल पसारा, एक राम सब ही से न्यारा।
ऐसा राम जिस चीन्हया सोही जान अवतार।

जिन सत्पुरुषों ने ऐसी रोम-रोम में रहने वाली शक्ति का अनुभव किया उनको परमेश्वर स्वरूप राम ही जानें। ऐसे परम विवेकी सन्त सत्पुरुष संसार का उद्धार करने के वास्ते ही शरीर को धारण करके आते रहते हैं। भेष-भेषान्तर से सदा अलेप रहकर जीवों के सुधार का यत्न-प्रयत्नं समय-समय पर करते आये हैं। जिस्म में सूक्ष्म योग की गति द्वारा सुरती सत् शब्द में आरूढ होती है। उसका राज सत्गुरु, सन्त सत्पुरुष बताने वाले होते हैं। किस तरह रोम-रोम में व्यापक रहने वाली शक्ति रम रही है, जिस शक्ति के हजारों नाम सन्तों ने राम रहीम आदि रख रखे हैं। इस देह के अन्दर ही निर्देह अवस्था को जानना है, जिसे जानकर जीव परम गति को प्राप्त होता है। परम तृप्त भी तब ही होता है। अन्तर विखे सत्स्वरूप को अनुभव करके मग्न हो सकता है। जिसने इस सारी द्वन्द्व रचना के जाल को छेदन किया है वह पूरा सत्गुरु सत्धाम का भेदी जानने वाला है। ऐसे सत्पुरुष जब मिले उनकी चरण-शरण में आने-जाने से सत्मार्ग पर चलने की राह खुलने लगती है। वह ही वडभागी जीव है जिसने जीवन में ही सत् भेद को प्राप्त किया है।

प्रेमियों ! दो रोज और इस जगह हैं, लाभ ले लो, फिर दर्शन मेला प्रभु आज्ञा पर ही हो सकता है। ईश्वर निर्मल सुमति सबको बख्शें।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! फकीरों, सन्तों का पता कैसे कर सकते हैं। जिस तरह आपने इधर इस जगह आकर संगत को तरह-तरह के विचारों से असलियत समझाने की कोशिश की है, अनाथों के नाथ हैं?
गुरुदेव : प्रेमी जी ! इन्होंने जिस-जिस तरह समझा है, संसार और कर्ता का निर्णय समझा दिया है। जिस तरह हंस पानी और दूध का निर्णय कर देता है उसी तरह गुरमुखों का काम है सत् को सत् करके जानें और झूठ माया संसार से इतनी ही प्रीती रखें जिससे निर्वाह अच्छी तरह होता जावे। फकीर बनना बड़ा मुश्किल है।

उदर समाना अन्न ले तन समाना चीर।
अधिक संग्रह ना करे ताका नाम फकीर ।।

आजकल जिस सन्त ने रेशमी कपड़े पहन रखे हो वह बड़ा महात्मा है। संसारियों से भी ज्यादा नुमाइश सन्तो-महन्तों के डेरों पर बनी हुई है। सत् पर यकीन कैसे बैठे। संसार में रहते हुए मर्यादा का जीवन बनाओ। सत्य को सत्य करके जानो और सत् करके चलने की कोशिश करो। सच्चाई के ग्राहक सदा बने रहो। अपने गुरु आप बनो। भटकने की कोशिश न करो।

प्रेमी : महाराज जी ! हमारी विनती स्वीकार नहीं हुई?

नोट - प्रेमी ने सद् उपदेश के लिए प्रार्थना की थी। फिर कुछ दिन वह दर्शन करने नहीं आया था।

गुरुदेव : प्रेमी जी !

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं कैसे आवे हाथ ।
कहें कबीर तब पाइये जब भेदी लीजे साथ।।

जब किसी संसारी काम को सीखने के वास्ते भी उस्ताद की जरूरत पड़ती है तब वह जिज्ञासु बार-बार उसके पास जाकर हाथ-पैर जोड़ता है, किसी तरह राज समझ आ जाये। इस मार्ग के वास्ते तुमने क्या कोशिश की है? सत्रह रोज के बाद आज देख रहे हैं। जैसे लोहे की लोहार सार लेता है ऐसे शिष्य को, प्रेमी को गुरु को समझना चाहिये। गुरु शिष्य का विचार कर लेता है। अब चलते-चलते यह समझाने वाला किस्सा नहीं। फिर कभी इधर आना हुआ विचार कर लेना। इनका और इधर आने का मतलब ही क्या है। कोई गुरमुख अपना जीवन बना ले, इनका आना सकार्थ हो जाये। अपना निश्चय पुखता (पक्का) बनाते जायें। हर समय अपने आपको सत् परायण करते हुए इस जीवन यात्रा को व्यतीत करते जावें। शुद्ध भावना से ही सत् धर्म में विजय प्राप्त होती है। कारोबार से फ्रागत पाकर जैसा भी फिलहाल नाम सिमरन का प्रोग्राम जो बना रखा है उसमें वक्त देते जावें। इसी तरह प्रभ कृपा और गुरु कृपा सहायक बनती चली जावेगी। अगर किसी दूसरी जगह आने के वास्ते लिखा जावे तो क्या समय निकाल कर आ सकते हो?

प्रेमी : महाराज जी ! जब जैसा हुक्म करेंगे, सेवादार चरणों में हाजिर हो जायेगा।

प्रेमी : महाराज जी ! पिछले दिनों सत्संग में वाणी पढ़ी गयी थी-

धर्म बडा परिवार है सबसे साँझ बनाये ।
वैर बदी सकली मिटे सबमें एक दिखाये ।।

धर्म ही के प्रकाश से जाये मन अन्धकार ।
धर्म ही साचा मित्तर है जो देवे नित जयकार ।।
धर्म ही निर्मल धन है जो लूट सके ना कोये।
जिस जिस धरती पग धरे आनन्द मंगल होये।।
मन्दभागी नित दुखिया जो नर धर्म से हीन ।
आठ पहर जलता फिरे धार के कर्म मलीन ।।

श्री महाराज जी । आपके यह अनुभवी मुख वाकामृत वाकई अमृत से मरे हुए हैं। कलेजे में उतरते जाते हैं। धर्म धारा पर ही बहुत बड़ा शब्द उच्चारण कर रखा है। आखिर में फरमाया है -

रंचक धर्म जिस जानया किये पाप सब दूर।
'मंगत' मन निर्मल भयो पाये दरस हजूर।।

गुरुदेव : प्रेमी । तुमने अच्छी तरह शब्दों को कण्ठ कर लिया है। जिस प्रेम शौक से पढ़ रहे हो उसी तरह इन वचनों पर अमल भी करना है। यह वचन प्रभु आज्ञा समझो। धुर की वाणी है। जो-जो जीव इनका श्रवण, मनन, निध्यासन करेगा वह अमर हो सकता है। समय-समय पर प्रभु से साधारण जीवों के वास्ते आसान भाषाओं में गुह्य ज्ञान आत्म सम्बन्धी वचन प्रकट हो जाते हैं। इन पर टीका-टिप्पणी कोई किसी मत का आदमी नहीं कर सकता।

प्रेमी : महाराज जी ! यह मन बड़ा चंचल है, किस तरह एक चित्त से उस प्रभु को कर्ता-हर्ता जाने, होना न होना उसकी आज्ञा में विचार करें? बाहर से जुबानी कह देने से कि जो हो रहा है मालिक तेरी मर्जी (आज्ञा) से हो रहा है, इससे क्या लाभ है?

गुरुदेव : प्रेमी !

बुल्हे नूं लोग मति देंदे, 'बुल्लाह' जा तूं वह मसीती।
विच मसीतां दे कुज होन्दा जो दिलों नमाज ना कीती।
बाहिरों पाक कितयां की होन्दा जे अन्दरों ना गई पलीती।
बिन मुर्शद कामिल मिलयां 'बुल्लाह' तेरी एवें गई इबादत कीती।

जब तक कोई भी यत्न मन चित्त से होकर नहीं किया जाता तब तक न संसारी व्यवहार में सफलता मिलती है न ही परमार्थ पथ पर चलकर कामयाबी मिल सकती है। हर तरफ जाने के वास्ते उस्ताद की जरूरत है। उस्ताद भी मिल जाये, मन अपना ही कुमार्ग पर डटा रहे फिर भी कुछ नहीं बन सकता।

गुर लोभी शिष लालची खेलन दाओ पर दाओ।
कहें कबीर दोनों डुबे बैठ पत्थर की नाओ ।।

गुरु भी पूरा हो, शिष्य भी पूरी जिज्ञासा रखने वाला हो, फिर मन की चंचलता गुरु उपदेश से दूर होने लगती है और फिर ईश्वर को भी कर्ता हर्ता मानना शुरू कर देता है। हमेशा सुनते ही नहीं रहना चाहिये। कुछ करने वाला स्वभाव भी बनाना चाहिये।

वैराग्य वाणी

माटी का कलबूत यह अन्त माटी समात।
सरजनहार ना जानया क्या बने पछतात ।।
काया रूप है हाँडिया विषय भोग का भात।
आठ पहर जलती रहे अगन तृष्ना साथ ।।
जैसे खाल लुहार की फूंके बिना प्राण ।
करनी बिन मानुष जो, विचरे पशु समान ।।
हीरा नाम विसारया कांच के सम्पे ढेर ।
अन्त काल यह अन्धमति फिरे चौरासी फेर।।
आसा जीवन की करे देखे काल सरूप।
अमृत इच्छा मन करे बीजे विख का कूप ।।
चार दिनां दा जीवना उठके मूढ़ विचार।
राज सिंहासन छाड के, करें भूमि पाये पसार।।
नील मनी ढलाइयो, कंचन गढ़ ओसार ।
खाली हथ्थी चल गये, जिनके घने अम्बार ।।
पोशाक पहने पीताम्बरी अंग सुगन्ध लगाये।
काल शिकारी मारया तब भसमी गयो समाये ।।
सिर पर छतर सुहावना चमके चूनी अपार ।
सो सिर खाकू संग मिले उठके दृष्ट निहार ।।
पानी का यह बुदबुदा छिन में बिनसे जात।
'मगंत' बिन हरी सिमरने सब ही कूड़ लखात ।।

विकारों से मुक्ति - कर्त्तव्य पालन में, शरीर पूजा में नहीं।

वाणी

मुकत सरूप हर नाम चितार, सत कर्म निश्चय से धार।
साखी कर्ता देह का जोई, तिसका नाम मन माहीं परोई।
अखण्ड सरूप नित परगासी, जो सिमरे निरभय निवासी ।
इच्छा करम रोग सब जाये, पूरन रूप हरी चरन ध्याये।
करम फल इच्छया ममता को छोड़, कारन कर्ता के चरनी चित जोड़।
तिसकी आज्ञा में सब कुछ देखो, आपा त्याग सत रूप को पेखो।
पल पल तिसकी सिफ्त विचारो, सत करतार चित माही चितारो।
मिथ्या देह का अभिमान विनासे, सत सरूप घट में परगासे।
अखण्ड प्रीती सत नाम कमाओ, पल पल आज्ञा तिसकी चित्त पाओ।
निष्काम करम का सेवन कीजो, सब कुछ भावी प्रन की लखीजो।
करम अभिमान होए विनासा, अखण्ड सरूप देखे परगासा।
सत शील हिरदय विचारों, पर उपकारी जीवन धारो।
देह के करम जो छिन छिन होई, प्रम की आज्ञा में लियो परोई।
आपामत गुबार त्याग, दीन गरीबी रसना में जाग।
सरय शक्ति सत् रूप विचार, छाया भरम नित आप लखार।।
आप त्यागे सरूप समाये, गुरमुख जीवन सार को पाये।।
ऐसी जुगती में निश्चय धारे, नित सत नाम की प्रीत विचारे।
सत सरूप में आये विश्वासा, तिसकी आज्ञा में लिया वासा।
सरब आधार सेवे प्रभ देव, आप मिटाये पाये सुख सेव।
करम जंजाल देही अभिमान, निरमान भाओ में पाई कल्यान ।
सबसे नीच आप पछाने, निष्काम प्रीती नित सेव बखाने।
सरब जीयाँ पर मेहर वरतावे, मान त्याग परम सुख पावे।
सत आधार सत करम विचारे, तज अभिमान उतरे भव पारे।
करता भाओ त्रैगुन मिटाई, दीन गरीबी रसना घर पाई।
मिथ्या देह विकार से निरमल भयो तिन चीत ।
"मंगत" आज्ञा प्रभ में जो करम त्यागे नीत ।।

प्रवचन

शरीर रूपी ससार को धारण करके यह जीव इस शरीर की कामनाओं में दौड़ रहा है और अपनी तसल्ली चाह रहा है। शारीरिक सुखों के लिए हर वक्त बेताब रहता है, आखिर शरीर खत्म हो जाता है और सुख भी खत्म हो जाते हैं। यह जीव वैसे ही रोता हुआ चला जाता है जैसे रोता हुआ आया था। सत्संग में इस बात को सोचना है कि यह शरीर क्या है? शरीर एक ढाचा प्रतीत हो रहा है लेकिन यह पच्चीस विकारों पर खड़ा है। शोक, मोह, भय, लज्जा और कीर्ति यह आकाश के अश हैं, जहाँ बाकी मादों (भौतिकवाद) की साइंस का मुतालया आपने किया है वहाँ इस सांइस को भी देखें। दौडना, अकड़ना, धारना, सुकड़ना और कान्ति अग्नि के विकार है। खून, वीर्य, थूक. पेशाब और पसीना यह जल के विकार है। चाम, नाडी, हडड़ी, मज्जा और बाल यह धरती के विकार हैं। मतलब यह पच्चीस किस्म के विकार हैं। बुद्धि इनमें जकड़ी हुई है। इन ही पच्चीस विकारों के अनुकूल और प्रतिकूल पहलू में मनुष्य हर वक्त दौड़ते रहते हैं। दिन-रात इनको ही पूरा करने की कोशिश में लगे रहते हैं। भक्ति का मतलब है कि बार-बार किसी को याद करना। राजा को बार - बार याद करना उसकी भक्ति है। देखना यह है कि आजकल लोग किस की भक्ति कर रहे हैं। वास्तव में यह जीव इस शरीर की भक्ति कर रहा है। यह इस तरह कभी शरीर से गाफिल नहीं होता (अर्थात इसको भूलता नहीं) और अगर इसको किसी देवता पर निश्चय भी है तो महज (केवल) शरीर के सुखों को पूरा करने की खातिर है। मतलब यह है कि ईश्वर को भी यह जीव अपने सुखों के लिए ढूँढता है। इस किस्म के अन्धविश्वास को धारण करके शारीरिक भक्ति जीव कर रहे है मगर-

आये प्यासे गये निरासे बड़े भूप संसार।
इस मन को तृप्ती न होई कित गुन कियो विचार।।

दरअसल (वास्तव में) यह सदी (शताब्दी) शरीर की भक्ति की है। छोटे लोगों को छोड़ दो बडे-बडे लोगों का यह हाल है कि पाँच विकारों को पूरा करने में हर वक्त लगे रहते हैं, कभी मोह की चिन्ता में हैं, सोचते हैं कि पुत्रों का क्या बनेगा। चाहे लड़कों को ख्याल हो या न हो लेकिन बूढ़ों को हर वक्त यह ख्याल रहता है। किसी वक्त किसी दुश्मन को मारने का ख्याल आता है, कोई बही खाता लिखते रहते हैं। गर्जेके यह जीव पाँच विकारों की पूजा करता रहता है इसलिये इसको धर्म का निश्चय नहीं आता है। जीव को हर

वक्त विकारों की चिन्ता ही लगी रहती है। इस तरह वक्त गुजर जाता है, मगर बनता कुछ भी नहीं है। ख्वाहे कोई आसमान पर है ख्वाहे जमीन पर है, वासना खत्म नहीं होती है। महापुरुषों ने सोचा कि दुनियाँ कहां जा रही है। कोई जानता नहीं कि खुशी कैसे हासिल हो सकती है। कोई कहता है कि इबादते खुदा करू ताकि मुझे पुत्र मिले जो खुशनसीब हो (भाग्यशाली हो)। कोई डाकाजनी से खुशी चाह रहा है। कोई नम्बरदारी कायम करना चाहता है मगर कोई भी अपने मुद्दा (ध्येय) में कायम नहीं होता। इसका पता ही नहीं कि उसका मुद्दा या मकसद (मतलब) कैसे हासिल हो सकता है। यह ही मूर्खताई है। चूंकि नतीजा (परिणाम) से नावाकिफ है सही तौर पर यह नहीं समझता इसलिए नादान माना गया है। जब नतीजा जाहिर होता है तब फकीरों को ढूँढ़ता है, उस वक्त उसको कौन बचाये। महापुरुषों ने कहा है कि जिस भी काम को करना हो पहले उसके नतीजे को सोचना चाहिये, क्योंकि संसार बहुत बड़ा है अगर गलती की तो ठीक न होगा। जो विवेकी पुरुष हुए हैं उन्होंने सोचा कि शरीर क्या है और शरीर के अन्दर रोशनी किस चीज की है जिससे यह शरीर चल रहा है।

बुद्धि हर वक्त शारीरिक सुखों की खातिर दौड़ रही है। आखिर शरीर खत्म हो जाएगा और जब शरीर से जीव निकल गया उस वक्त हैरान हो गया। उस वक्त इसे मालूम हुआ कि जैसी दुनिया देखी थी और जैसी समझी थी वैसी नहीं है। जिस शरीर के लिए जीव हर वक्त कोशों है आखिर यह भी खत्म हो जाएगा। आखिर इन्सान कैसे और किस बुनियाद पर सुखी होगा? महापुरुषों ने सोचा कि यह एक बड़ा धन्धा है। जब यह शरीर प्राप्त होगा चिन्ता खड़ी होगी। हाकिम और महकूम (राजा, प्रजा), दोनों चिन्ता में हैं। जब सब नकशे को देखा तो समझा कि तसल्ली कहीं भी नहीं है। फिर महापुरुषों ने सोचा और गौर किया कि दुनियाँ बहुत भारी झगडा है, जब एक चीज को हासिल करते हैं तो दूसरी का फिकर सामने खड़ा हो जाता है जिससे कि इस शरीर की प्यास बुझे। उस वक्त उन्होंने मर्ज का इलाज मालूम करने की कोशिश की। उनको विचार आया कि इस शरीर की बनावट से पता लगता है कि इसे किस महान शक्ति ने बनाया है और यह किस नियम पर खड़ा है। हम खुद (स्वयं) तो इसके किसी काटे हुए या बिगड़े हुए ऐज़ा (अंग) को ठीक नहीं कर सकते हैं। फिर दो धाराएँ खड़ी हुई. एक शरीर की और दूसरे

जिसके सहारे यह शरीर खड़ा है। यह जो सॉस अन्दर बाहर आ जा रहा है इसको अन्दर खींचने वाला कौन है? सॉस के जुदा होने पर फौरन ही शरीर खत्म हो जाता है।

जीवित माटी माइयां भी माटी नहीं सार किया विचारी।
निकले प्राण मिट्टी विच जाना लम्बे पाओं पसारी।।

यह मूर्ख जीव किसी और चीज के सहारे खड़ा है। जब महापुरुषों ने गोता लगाया तो उन्होंने एक शक्ति को अनुभव किया, जिससे यह शरीर रोशन है, जो निर्विघ्न है, पूर्ण है और सत् है। जिसकी शक्ति से सब अन्सर खड़े हैं। जिस वक्त सत् को अनुभव किया शान्त हो गया। पहले तो तृण-तृण से भयभीत था, लेकिन बाद में -

आसा तृष्णा मन में रही न कोय, जब नाम पदार्थ खाई।
अन्तर बाहिर भया प्रकाशा, दुर्मति अन्धकार गंवाई।।

जितनी भी तकलीफात पहले थीं वह सारी गायब हो गयीं। उस स्वरूप में अचिन्त और प्रवीण हो गया। उसको अन्दर क्या मिला? उसने परमेश्वर को जाना। उन्होंने समझाया कि यह जीव स्वभाव से ही कैद है। परमेश्वर के परायण हो जाओ। जब तक परमेश्वर के परायण न होंगे तब तक शान्ति न मिलेगी। जिसकी वजह से यह शरीर जीवित है उसकी तहकीकात करो। ऐ मनुष्य' तू शरीर के कायम रखने में दिन-रात लगा है, लेकिन जिस शक्ति पर यह शरीर चल रहा है वह क्या चीज है, उसको जानो। ऐसा विचार करके महापुरुषों ने कहा कि शरीर के अन्दर एक सत् शक्ति है जिसकी वजह से यह असत् शरीर खड़ा है, वह शक्ति विलक्षण है। जब ऐसा विश्वास हो तो अच्छे पुरुषों के पास जायें, तब भयानक विकारों की आग गायब होगी। उस वक्त पता चलेगा कि जो काम वह कर रहा है वह ठीक नहीं है। फिर वह आज्ञा मानकर अपने आप को दुरुस्त करता है। जब सत् विश्वास अन्दर आया तो शान्त हो गया।
मनुष्य दो किस्म के हैं, एक मोहवादी और दूसरे सत्वादी। मोहवादी शरीर के विकारों को पूरे करने में लगे रहते हैं। शरीर के भोगों और विकारों से जिसको घृणा हुई है वह सत्वादी है। ऐसा सत्वादी जानता है कि दुनियाँ का असर बेशक बहुत बुरा है, इसलिए वह निर्मल कर्म करने का यत्न करता

है और कुबुद्धि को तर्क (छोडना) करना चाहता है। ऐसा आदमी इन्सानों की कतार में असली मनुष्य है। इस जीवन का बेहतरीन पहलू यह है कि सत् विश्वास अन्दर आये। जब सत् विश्वास आएगा परमेश्वर को देखेगा। बुद्धि जागृत होगी, शारीरिक तसब्बर ऐसा कम किया जायेगा कि परमेश्वर के निकट पहुंच जाये, ताकि खुद भी ठीक हो और दूसरों को भी ठीक करे। ज्यों-ज्यों परमेश्वर के निकट पहुचेंगे उसी कद्र त्याग व आनन्द को अनुभव करेंगे। वह इन चीजों का समुद्र है और यह चीजें उससे प्रकट होती है। जितने भी अवतार हुए है दुनियाँ उनके आगे इसीलिए झुकी। बिजली के बल्ब में जैसे बिजली आ जाती है और कमरे को रोशन करती है इसी तरह परमेश्वर को अनुभव करने से क्रूर कर्मी भी देव कर्मी हो जाता है। इस शरीर में जब परमेश्वर की रोशनी आती है तो उसकी ऐसी हालत होती है -

पहले यह मन काग था करता जीवन घात।
फिर यह मन हंसा भया चुन चुन मोती खात।।

यानि पहले इसकी काग वृत्ति थी। हर एक अच्छी-बुरी चीज को खा जाता था। मगर अब हंस वृत्ति हुई तो शुद्ध गिजा ही खाता है और गुण ही ग्रहण करता है। ऐसा जब निश्चय दृढ़ हुआ उस वक्त उससे खौफ (भय) गायब हो गया। महापुरुषों और आम लोगों की बुद्धि में क्या फर्क है? महापुरुषों की बुद्धि ने अभिमान पर अबूर पाया है। भृगु ने जब ब्रह्मा, विष्णु और शिव का इम्तिहान लिया तो उन्होंने विष्णु की छाती पर लात मारी तो बजाय नाराज होने के विष्णु ने कहा कि ऋषि जी मेरी छाती सख्त है, आपके पांव को तकलीफ तो नहीं हुई? जब भृगु ने यह बात सुनी तो उसने कहा कि वर मांगो। तब विष्णु ने कहा कि आपके पांव का निशान मेरी छाती पर लगा रहे। ईश्वर परायण मनुष्यों की कठोरता खत्म हो जाती है। लेकिन मायावादी पुरुष लाचार है। महापुरुषों ने चेतावनी दी है कि परमेश्वर और जीव को न मिलने देने वाला अहंकार है। इसलिए महापुरुषों ने इसको दूर करने के लिए कहा है। इस अहंकार को नाश करने की कोशिश करें। ज्यों-ज्यों अहंकार खत्म होता है त्यों-त्यों मनुष्य ईश्वर के नजदीक (निकट) पहुंचता जाता है। देवी का रूप आपने देखा होगा। हाथ में हथियार हैं। सर्पों का हार पहना हुआ है। शेर की सवारी है। यह देवी नहीं अहंकार है। अहंकार से रहित देवी के लक्षण हैं। सर्वाजीत पुरुष के ये लक्षण हैं। कबीर साहिब ने कहा है

कंचन तजना सहज है सहज नारी का नेह।
मान बड़ाई ईर्षा दुर्लभ तजना एह ।।

अहकार को छोड़ना मुश्किल है, जिन्होने सही समझा है वह बर्फ के पानी की तरह खत्म होकर पानी बन जाते हैं। मनुष्य में त्याग होना चाहिए। ईसा की तरफ ध्यान दें, उसमें असली त्याग था। प्रेम होना चाहिये। असली प्रेम तब ही होता है जब जहरीली चीजों से भी प्रेम बना रहे। यह ईश्वर-वादियों के लक्षण है। शरीर की ही पूजा ठीक नहीं, पहले उस चीज की पूजा जरूरी है जिसके सहारे यह शरीर चल रहा है। दुनियाँ में इस वक्त जितने भी सामान पैदा किये जा रहे हैं वे अन्धकार ही फैला रहे है। बेशक यह कहा जाता है कि यह रक्षा के सामान हैं। अच्छा जीवन अगर कोई बनाये तो सुख है। अपने आपको ईश्वर परायण बनायें और गलत वासनाओं को न उठने दें। जितना भी परमेश्वर का निश्चय बढ़ता जायेगा उतना ही मनुष्य निर्माण हो जायेगा। प्रधान नुक्स जीवों में यह है कि हर शख्स अपनी त्वचा के श्रंगार में लगा रहता है। इस पिंजर यानि शरीर का जितना भी श्रंगार करता है उतना ही अहंकार बढ़ता है और वह गैरत और लज्जा पर पानी फेर देता है। स्त्री जो श्रृंगारी है, वह कलंकित है। अगर घरेलू आराम की इच्छा है तो सादगी की तरफ जीवन को ले आओ। सिनेमा मत जाओ, इससे कुछ हासिल न होगा। नशे का त्याग करो, क्योंकि नशा भी बुद्धि को खराब करता है। वक्त को आवारागर्दी में जाया ना करो, अपने बुजुर्गों के जीवन का मुतालया (अध्ययन) करो, अगर ईश्वर पर निश्चय हो तो दो घड़ी उसे याद करो। ईश्वर की शक्ति पूरी तरह समझा रही है, लेकिन तू नहीं समझ रहा। ऐसा जो परम दयालु ईश्वर है उसको याद करो। ऐसे रास्ते पर चलो जिससे खुशी मिले। यह रास्ता ही कल्याणकारी है, संसार के मुतालया से पता चलता है कि अय्याश लोग हमेशा दुःखी रहते हैं। चक्रवर्ती भी खुशी की तलाश में है, गरीब भी आराम की तलाश में है। मूर्ख और आलम भी तसल्ली चाह रहे हैं। लेकिन सिवाय प्रभु प्रेमी के किसी को भी तसल्ली नहीं है। बाकी सब शरीर के सुखों में ही मर रहे हैं -

जब लग जरा रोग नहीं आया, जब लग काल नहीं गरसे काया।
तब लग सिमरो सारंग वाणि, निर्मल जीवन की कथा बखानी।

जब तक शरीर ठीक है आपको मौका है कि अपना कुछ सुधार लो। बिजली तो इस वक्त बहुत पैदा की जा चुकी है। लेकिन इस वक्त जो अक्ल इन्सान में है, वह रोशन नहीं। जुगनू में शायद ज्यादा रोशनी है, लेकिन इन्सान में रोशनी नहीं। लोग हर वक्त दूसरे का खून पीने की ख्वाहिश में लगे हैं। आपको चाहिये कि शरीर से सुगन्धित कर्म करो ताकि अपने आपको तसल्ली हो और लोगों को भी आपसे फायदा पहुंचे। सत्, सेवा, सादगी, सतसंग, सत् सिमरण इन पांच उसूलों को धारण करें। कामिल पुरुष वह ही है जिसने इन उसूलों पर अपने जीवन को ढाला है। शरीर आखिर मिट्टी में मिल जाना है। शरीर की भक्ति ठीक नहीं। वेश्याओं की तरह हर वक्त बनाव श्रृंगार में नही लगे रहना चाहिये। गांधी की क्या शक्ल थी और क्या वे बनाओ श्रंगार किया करते थे?

शरीर की पूजा नहीं करनी चाहिये। कर्तव्य की पूजा की जाये। कर्म सुन्दर करो जिससे सारा खानदान खुश हो। अपने पिछलों से गति कराने का ख्याल मत रखो। अगर आप इन पांच उसूलों की वृद्धि करोगे तो असली खुशी पाओगे। ईश्वर सबको सुमति देवे ताकि अपने आपको समझते हुए मुनब्बर (रोशन) जीवन पेश करें, वरना तो शरीर एक दिन अवश्य ही खत्म हो जाना है।

प्रभु परायण होकर कर्म करने में सुख है, में कर्ता में दुःख है।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! हम कर्म किस तरह करें जिनके करते-करते छुटकारा हो जाए। जब तक शरीर खड़ा है कर्म तो हर हालत में करने पड़ेंगे, चाहे अभिमान सहित करें, चाहे निरहंकार होकर करें?

गुरुदेव : प्रेमी। बड़ा अच्छा तुम्हारा विचार है। प्रेमी जी। पहले कर्मों का अच्छी तरह विचार करें कि कौन कर्म करने लायक है, कौन छोडने लायक है। जब यह नबेड़ा कर लोगे तब सफलता को देने वाले कर्म करोगे। प्रभु अर्पण तो सत्वादी जीव ही सकल कर्मों का नतीजा कर सकता है और लोभ मोहवादी जीव को कोई ज्ञान ही नहीं होता। सबसे अच्छा सुखदाई मार्ग यही है, जो भी रात-दिन में जीव कर रहा है प्रभु परायण होकर सत्कर्म करता जावे। नित ऐसी भावना बनी रहे, फिर खरा-खोटा, शुभ-अशुभ जैसा भी बन

जाये उनका विचार न करे। जो नतीजा (परिणाम) प्राप्त हो, राग द्वेष न खड़ा करे। जो कर्म करोगे उसका नतीजा अच्छा और बुरा जरूर सामने आएगा। अच्छी तरह हो जाये तो राग न खड़ा करें, बुरा बने या हानिकारक बन जाये तो द्वेष न धारण करें। मगर यह सत् भाव जबानी-जबानी नहीं दृढ़ होगा। बिना किसी युक्ति के मार्ग का पता नहीं लगता, न ही मंजिल मकसूद तक पहुँच सकता है। साथ-साथ साधना की जरूरत है, तब प्रभु भावी को हृदय में दृढ कर सकेगा और इस जन्म-मरण के चक्कर से खुलासी मिल सकेगी। इस दृश्यमान ससार में नाना प्रकार के कर्म हो रहे हैं। इस सारे चक्कर को प्रभु भाने में देखते हुए ग्रहण और त्याग की वासना को ही न उठायें। होना न होना, लाभ-हानि, खुशी-गमी, सुख-दुख, संजोग-वियोग, प्राप्त-अप्राप्त हर दो हालातों को प्रभु आज्ञा में जाने और अन्तर से हर समय प्रभु आज्ञा में स्थित रहें। जितनी यह दृढता बढ़ती जायेगी उसी कद्र निष्कामता आती जावेगी। ज्यों-ज्यों अन्तर विखे सत् शब्द में मुरतगर्क (लीन) होगा, अज्ञानता खत्म होती जावेगी। तब ही संसार में आना सफल होगा जब निष्काम शब्द स्वरूप को अन्तर में अनुभव करेगा तब जाकर सारा लोभ मोह जाल खत्म होगा, जिस करके प्रभु भावी में दृढ़ नहीं हो सकता था। इस दुर्गम माया को तरना सहज हो जाता है। तब यह जीव प्रभु परायण सच्चे मानों में होने लगता है मन चित्त में शरनागति आ जाये, शरनागत की ईश्वर सदा रक्षा करने वाला है। लालच जीव को कुछ करने नहीं देता। हर समय यह जीव अपनी हिकमत अमली पर विश्वास रखता है, मैं यह करूंगा तब सुख मिलेगा, इत्यादि। हर समय जो शारीरिक सुखों की विचारधारा दृढ कर रखी है यह खुदी ही जीव को हैरान परेशान रखती है। सब संसार के जीव खुदी में खड़े हैं। लोभ, मोह की अग्नि हर एक जीव को तपायमान करती रहती है। मन की मूढमति हालत ही तरह-तरह के पाप कर्मों की तरफ रागिब करती है। स्वार्थवादी जीव लालच में आकर नाशवान दुखों-सुखों को देखता हुआ जलता, तपता रहता है। अति सन्ताप में यह जीव फंसा हुआ है। जो भी शुभ-अशुभ कर्म करेगा उसका फल तो अवश्य भोगना ही पड़ेगा, ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी। ज्ञानी इष्ट-अनिष्ट में सुख-दुख नहीं मनाता। दोनों हालतों को प्रभु भाने में विचार करता है, अज्ञानी हर हालत में ही अशान्त रहता है।

माया का चक्कर किसी फैसले पर पहुंचने नहीं देता। इस द्वन्द्व विकार से छुटकारा पाने के वास्ते निष्काम कर्म की धारणा जरूरी है। सत्पुरुषों की कृपा से जो मार्ग मिले उस पर चलकर सही मानों में वैराग्य और अभ्यास में लगकर जीवन उन्नत कर सकता है।

निष्काम कर्म की साधना, करे जीव की कल्यान ।
'मंगत' शारणागत नित होइये, परम पुरुष निर्वान।।

अर्थात् निष्काम यानि कामना रहित कर्म की साधना से ही जीव की कल्याण होती है। निष्काम कर्म की साधना प्रभु शरणागत होने करके दृढ़ होती है। इसलिए नित्यप्रति उस परम पुरुष, मुक्ति दाता की शरणागत होना चाहिये।

वैराग्य वाणी

जग बेला फुली फुलवाड़ी रंग रंग भौंरे आये ।
फिरी रुत खिज़ाँ की मीता कोई नैन देखत नहीं पाये।।
ऐसा जीवन जगत का जानो ज्यों नदी नॉव संजोग।
जिस बिध करनी जो करी तिसका सुख दुःख भोग।।
उठ जाग मुसाफिर साँझ भई नित अपने पन्ध को काट।
दिन वतीत तो हो रहया फिर सिर आई रात ।।
सत साजन संग मेल करो नित साची रास कमाओ।
दुर्लभ फेरा जग में पाया नित लाभ जीवन का पाओ।।
जिस साजन ने बनत बनाई नित तिस हुकुम पछानी।
'मंगत' सो ही सुगड़ सयाना सार जीवन तिस जानी।।

जीवन की सफलता ईश्वर भक्ति से

वाणी

वरत अमोल जगत में भारी, मिल सत्संग लियो शब्द विचारी।
अपरम मानक यह शब्द आनन्दा, कोट रवि सम जोत परचण्डा।
लाख उपाये करे दिन राती, बिना शब्द मन तृखा समाती।
शब्द नीर जब घट माही पीना, मूल पछान तब इस्थिर थीना।
ग्रन्थ वेद गुनी करें विचारा, घाल शब्द उतरें नर पारा।
मानुष जन्म का एही फल मीता, शब्द ज्ञान नित रहे रमीता।
शब्द पछाने सो देवन का देवा, अबनाशी पुरुष की करे नित सेवा।
कठिन जंजाल माया विस्तारा, शब्द पछाने उतरे जन पारा।
पूरन योग रिद्ध सिद्ध दाता, एक शब्द मन जपे अजापा।
साध के चरनी नित दण्डवत कीजो, सेव टहल तिन मन में सीजो।
साध के वचन तन मन धारो, शब्द अगोचर मिले निर्धारो।
मन की व्याघ जब अन्तर रहाई, युग-युग भरमे नहीं मिले शब्द सुखदाई।
खिमा गरीबी जो मरन विचारी, श्रद्धा सेवा भाव भगत आचारी।
सत् पुरषन के सुने इतिहासा, गुरू के वचन रखे अधिक विश्वासा ।।
पर दुःख हरना कार कमाए, अपने सुख पर लात चलाये।
सकल जियाँ पर कीजे दाया, नित नित तिनके चरण समाया।
गरभ तजे होवे धूड़ समान, अबनाशी शब्द कियो तिस पछान।
सेव बन्दगी प्रेम आचारा, दया गरीबी का करे ब्योहारा।
सम दृष्ट का सबक विचारे, महागुनी सो उतरे पारे।
एक सरूप में नित जीवन जीवे, एक आधार मन अन्तर लेवे।
करता हरता ठाकर पहचाने, तिसकी आज्ञा छिन छिन चित माने।
भरम विनासे सत रूप समाये, जाँ से आया ताई मेल मिलाये।
दुर्मत भरम का खण्डन कीजे, सत् शब्द अमीरस पीजे।
मुक्त महा सुख गुर शब्द विचारे, सो सत् साधु नित हूँ बलिहारे।
बार बार विचारया सब जग बिख की खान।
'मंगत' शब्द कमावना जग जीवन सार निधान।।

(ग्रन्थ श्री समता प्रकाश-नखेत्र पर्वत गोष्ठ)

प्रवचन

ससार में जो जीव शरीरों को धारण करने के वास्ते आते हैं, वे सब शरीर धारण करके अपने ही शुभ-अशुभ कर्मो का भुगतान करने के वास्ते नाना प्रकार के दुःख-सुख, रात-दिन हासिल करते रहते हैं। दुःख हो चाहे सुख, दोनों तरह की इच्छाओं का नतीजा है। जीव इच्छा करके ही कर्म करता है। इस चक्कर से फिर नई से नई इच्छा पैदा होती रहती है, जिनका कोई हिसाब नहीं कर सकता। संसार का पारावार कोई नहीं जानता, कब संसार की बुनियाद रखी गई थी और किसने रखी थी। बेअन्त जीवों की संख्या है। चार खानी के जीव जन्म-मरण के चक्कर में पड़े हैं। सबका शरीर पाँच तत्वों का है। कोई शरीर ऐसा नहीं जिसकी बनावट तीन या चार तत्वों की हो। मनुष्य योनि सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। मनुष्यों के अन्दर भी कोई आला (उत्तम) है, कोई अदना (निकृष्ट), कोई बहुत बुद्धिमान है, कोई कम अक्ल रखता है। हर जीव स्वार्थ की अग्नि में तपायमान हो रहा है। बहुत जीव जिनको कोई रास्ता नहीं मिलता, मोह लोभ की अग्नि से किस तरह छुटकारा पा सके? पाँच विकार हर एक शरीर धारी के अन्दर कमोबेश (न्यूनाधिक) प्रगट दिखाई दे रहे हैं। विकारमई अवस्था में राग, द्वेष, ईर्ष्या, निन्दा, बखीली, वगैरह कई तरह के अवगुण स्वतः ही पैदा होते रहते हैं। कोई किसी की तरक्की पसन्द ही नहीं करता। अगर किसी के पास धन ज्यादा दिखाई देता है, कम धन वाले उसे देखकर जलते हैं। किसी का मकान बहुत आला है, जिनके पास जरा गिरा हुआ या कमजोर हालत में जगह है वह ऊंचे-ऊचे महल माड़ियों को देखकर जलते हैं। किसी की सेहत अच्छी है, बीमार रोगी आदमी उसे देखकर अन्दर ही अन्दर कुढता रहता है। अगर कोई बड़ा समझदार, अच्छी बद्धि रखने वाला है तो उसे थोडी समझ वाले देख-देख कर तपते रहते हैं। कोई अच्छा बोलने वाला है तो सब लोग उसकी इज्जत करते हैं। जिनको बोलने का ढंग नहीं आता वे बेचारे अपनी जगह पर सोच में रहते हैं। कोई बड़े सन्तोष धीरज वाला जीव है। कोई किसी की गाली-गलौच को सहन कर लेता है, कोई किसी की अच्छी तजवीज (सुझाव) को भी नहीं सुनना चाहता। हूं, मैं उसकी सलाह क्यों लू?

खोद खाद धरती सहे कूट काट बन राय।
कुटल वचन साधू सहे और से सहा न जाय। ।

नाना प्रकार के अहंकारों की किस्में हैं। हर जीव पांच तप्वक शरीर में

अहंकार की वजह से ही खड़ा है। जैसा-जैसा अहंकार दृढ़ होता जाता है। वैसा ही जाहिरी स्वरूप उसका बनता जाता है। अहंकार को तोड़ने के वास्ते हर समय प्रभु परायणता की जरूरत है। जिस कद्र प्रभु परायण होगा उतना मन निर्मल और उतना शुद्ध हृदय होगा।

सकल मनोरथ त्याग के, प्रभ आज्ञा चित्त धारी ।
ज्यों वरतावे सुख कर पूजे, यह छूटन राह सुखकारी।।
ज्यों ज्यों प्रभ का हुकम मनावे, मनुआ धीर समाये ।।
'मंगत' निर्मल भगती यह ही, मिल सतगुर भेद लखाये।।

सबसे उत्तम प्रभु परायणता, गुरु परायणता है और जिस कद्र तरह-तरह के देवी-देवताओं के परायण जीव हैं, वे सब स्वार्थ पूर्ति की तरफ चले जा रहे हैं। प्रभु और गुरु परायण जीवन से निष्काम सत् सेवा और सत् सिमरण बन सकता है। जिस समय निष्कामता आनी शुरु होती है, धीरे-धीरे शब्द स्वरूप पारब्रह्म परमेश्वर की सत्ता मालूम पड़ने लगती है। जिस सत् शब्द की महिमा बार-बार सन्त वाणियों में आती है वह सत् शब्द तब ही अनुभव होगा जब तन मन सेवा और सिमरण में ज्यादा से ज्यादा दिया जावेगा। सत् शब्द की महिमा वेद, ग्रन्थ, गुणी, मुनि, सन्तजन करते आये हैं। बिना सत् शब्द की अनुभवता के मन की तृष्णायें शान्त होने वाली नहीं होतीं। यह तृष्णायें ही सांसारिक जन्म-मरण का कारण जुगा-जुग से बनती चली आती हैं। जिनका न आदि है न अन्त। उस सत् की अनुभवता के वास्ते मनुष्य जीवन ही है, और किसी योनि में इसे यह सत्-शब्द बोध ही नहीं हो सकता। शब्द स्वरूप यानि नाद सरूप परमेश्वर को अनुभव करने की खातिर राजाओं ने राज त्याग दिये। गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, गोपी चन्द, भर्तृ, राजा जनक इत्यादि बहुत पहले हो चुके हैं। हजारों ऋषि मुनि, पीर पैगम्बर, गुरू, गुसाई नाद स्वरूप को अनुभव करके ही परम पद को प्राप्त हुए हैं। जिसके अन्दर नाद स्वरूप प्रकट हो 'जावे, बडे उच्च भाग उस जीव के जानो। वह शाहों का शाह बन जाता है। असल में उसी ने पूर्ण रूप में संसार से विजय प्राप्त की है। बड़े-बड़े त्यागी, वैरागी सत्पुरुष उस सत् स्वरूप की प्राप्ति करने के वास्ते राख रमाने वाले बन गये। हर समय शरीर को तुच्छ से तुच्छ करके जाना, तस्वीरों पर बुद्ध भगवान, महावीर स्वामी और भी कई सत्पुरुष घोर जंगलों और शिव जी महाराज कैलाश पर्वत पर घोर समाधि में विराजमान

दिखाये जा रहे हैं। उनको कौन, क्या विपदा पड़ी थी, नहीं, हर समय आत्म तत्व में मग्न रहने वाले सदा कल्याण स्वरूप बन चुके थे। समाधि अवस्था ही परम सुख स्वरूप है, जिसकी महिमा सद्ग्रन्थ, वेद शास्त्र गायन कर रहे हैं। जिसके अन्दर अलख पुरुष प्रकट हो जावे वह ही अवतार जानो। उसने असली परम गति भव दुस्तर संसार से तरने की पाई है, वह हर समय ही जन्म-मरण से रहित अजन्मा स्वरूप है।

सत् सरूप खोजन कियो, सुन सत्गुर उपदेश।
'मंगत' तन मन पार्व सत् शान्ति, मिट जाये सकल कलेश।।

ज्यादा लम्बे चौड़े ज्ञान ध्यान को छोड़ो, केवल प्रभु परायण होने की हर समय कोशिश करो। वचन द्वारा मीठा सरल विचार बोलो, दुःख-सुख, लाभ-हानि में सम बुद्धि बनी रहे।

मीठा बोले निओं के चले, रव तिनां दी बुकली जंगल क्यों ढूँढे।

विनय, प्रार्थना के अन्दर कूट-कूट कर प्रभु परायणता भरी है। प्रभु परायण होकर ही प्रार्थना बन सकती है। जो चित्त मन, प्रार्थना, विनय से खाली है वह आत्म तत्व को अनुभव ही नहीं कर सकता। जिस तरह पहले खेत को अच्छी तरह शोधन कर लिया जाता है, फिर समझदार जमीदार, माली बीज बोता है, वह उग कर सही फल देने वाला बन जाता है, इसी तरह चित्त रूपी धरती को संकल्प-विकल्प रूपी झाड़-झंखाड़ से निर्विकल्प करने के लिए प्रभु परायणता बहुत जरूरी है। सर्व सुख-दुःख, लाभ-हानि, संयोग-वियोग प्रभु आज्ञा में हर समय विचार करे।

रब्ब रजाई चलना, पावे मोक्ष द्वार।
'मंगत' बिना हर गगत के, मिले नही छूट तत्काल ।।

अहंकारी जीव के अन्दर नम्रता हो ही नहीं सकती। विनय, नम्रता के बगैर तीन काल तत् ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। बिना तत् ज्ञान के धर्म का रूप दीख नहीं पड़ता। जिस गुरु भक्त या जिज्ञासु के अन्दर मनोहर मीठा भाव नहीं होता वह परमेश्वर की भक्ति को नहीं समझ सकता, न गुरु के नजदीक प्रिय बन सकता है। न ही और कोई अच्छा कर्म कर सकता है।

गरभ तजे होंवें धूड़ समान, अविनाशी शब्द लियो तिस पछान।

मतलब यह कि रचक भर भी अभिमान अन्तर में न रहे। अहंकार ही अज्ञानता का मूल रूप है। इस अन्धकारमयी जीवन से शुद्धता प्राप्त करनी है। यह

जरूरी नहीं है कि बड़े-बड़े वेदों या ग्रन्थों का हर समय स्वाध्याय, पठन-पाठन करने वाला ही इस अहंकार से मुक्त हो सकता है। नहीं, बल्कि जो बहुत पाठ और ऊंचे लम्बे चौड़े विचार करते, सुनाते दिखाई देते हैं उनके अन्दर बहुत अहंकार रहता है।

मेरे जैसा कोई ज्ञानवान नहीं है। किसी न किसी अहंकार में हर जीव ग्रस्त रहता है। इससे छुटकारा जब लहना ने प्राप्त कर लिया था तब गुरु नानक जी ने फरमाया था-लहना तू लेना असाँ देना है। झट गले से लगा लिया। अगर नानक जी के इशारे को उनके लड़के समझ जाते तो बेड़ा पार कर लेते। लहना हर इशारा गुरुदेव का समझता था, जब गले से लगाया तब उस समय उसका नाम अंगद देव रखकर तिलक कर दिया। मतलब यह है कि जो चित्त अभिमान से खाली हो जाता है वह ही परम पद का उत्तराधिकारी होता है। प्रभु सरनागत होने से सब रोग सोग और दुर्मति रोग से छुटकारा पाया जाता है। ईश्वरी शक्ति सदा ही सुखदाता है। मूर्ख मन किसी समय निर्माण होने की कोशिश नहीं करता। इसी वास्ते महापुरुषों ने सत् नाम सिमरण पर जोर दिया है क्योंकि नाम के बिना यह कमज़ात मन ठौर-ठिकाने पर नहीं पहुंच सकता। सत् नाम के बिना न योग हो सकता है, न अरोग बन सकता है, न बिना नाम सिमरण के अन्तर में आत्म ज्योति को अनुभव कर सकता है। जब तक आत्म जोत शब्द स्वरूप अन्तर विखे प्रकट नहीं होती राग-द्वेष से मुक्ति नहीं मिल सकती। बगैर नाम सिमरण के कोई शून्य अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। नाम सिमरण करते-करते ही अनाम रूप में लय हो सकता है। सब तरह की अज्ञानता, भ्रम, अविद्या से छुटकारा पाने के वास्ते सत् नाम का सिमरण करना जरूरी है। चाहे आज से इस सत् यत्ल की तरफ चलना शुरू कर दें चाहे दस जन्मों बाद इस ईश्वर आज्ञा में स्थित हों। यह बात तू आज समझ ले, दस साल बाद समझ ले या चार जन्म बाद समझ ले, आखिर यह ही समझना पड़ेगा। जब तक प्रभु परायण न होगा तब तक संसार से विजय पानी अति कठिन है। हर सांसारिक कार्य करने के वास्ते युक्ति की जरूरत है। बिना सत् युक्ति के न निष्काम हो सकते हैं, न अन्धकार से रोशनी की तरफ जा सकता है। मंजिल बड़ी दूर है मगर जब लना शुरू कर देगा नजदीक होना शुरू हो जाता है। मर-मर के -ख्वाहिश, निर्बीज अवस्था तक गुणी-मुनि, ऋषि लोग पहुंचे हैं। फिर

हमेशा के वास्ते अबदी जीवन यानि नेहःकर्म अवस्था को पाकर अमर हो गया सब तरह की दुविधा दुर्मत से खुलासी पाने का मार्ग नित्य तलाश करते रहो। आये दिन न ऐसे सत्संग प्राप्त होते हैं और न ही सन्त हमेशा मिला करते हैं। आइन्दा मेल हो, न हो मगर यह वचन जरूर याद रखे। जीवन में कुछ अपने आपका सुधार करना फर्ज जानें। इस कर्त्तापन अहंकार ने ही सब जिया-जन्त को भुलेखे के अन्दर डाल रखा है। इस बात को समझकर प्रभु आज्ञा में हर घड़ी, हर समय दृढ़ता धारण करें। कर्म रोग आसानी से खत्म होने वाला नहीं है इस वास्ते तन मन प्रभु अर्पण करना पड़ेगा। बारम्बार मन चित्त के अन्दर प्रभु परायणता दृढ़ करनी है। जिस सत् भाव से सरब बन्धन कट सकते हैं। निर्बन्ध अवस्था को पाकर फिर कुछ पाने योग्य नहीं रहता। सत्गुरु कृपा से युक्ति प्राप्त हो जाने पर सब कार्य सहज हो जाता है। सत् युक्ति प्रभु नाम में सत् श्रद्धा और सत् विश्वास की दृढ़ता बढ़ाती है, जो किसी समय सिमरण करते-करते निष्काम और शून्य अवस्था तक पहुंचा देती है। बारम्बार सत् सिमरण में मन चित्त देना ही सच्ची सेवा है। सच्ची सेवा भाग्यशाली जीवों को प्राप्त होती आई है। ईश्वर सब जीवों को सत् बुद्धि बख्शें। संसार में आना सफल करके चलें।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! आज जो आपने शून्य अवस्था के बारे में फरमाया है, क्या शून्य का मतलब जड़ रूप हो जाना है ?

गुरुदेव : नहीं प्रेमी ! जड़ नहीं हो जाना पड़ता। जिस अवस्था में कोई भी संकल्प-विकल्प उठ नहीं पाता, केवल अपने सत् स्वरूप में कैवल्य रूप हो जाता है। अनादि काल से जो सुरति अपने को सत् स्वरूप से बिछुड़ा हुआ समझती रही थी, अपने आपको आप ही जानकर फिर अभय पद को प्राप्त हो जाती है। सब तरह के सन्ताप, इच्छा, चिन्ता, भय, मोह से खुलासी पा जाती है, जिस अवस्था को महावीर स्वामी ने शून्यंगकार कहकर पुकारा है, बुद्ध ने निर्वाण कहकर समझाया है, जिसे अकल सलीम वाला भी कह देते हैं। प्रेमी जी ! यह बातों से समझाने वाली अवस्था नहीं है, जो पहुंचा है उसने असल समझा है। जिसे अनिर्वचनीय कहा गया है, क्योंकि उस अवस्था का बयान करने के वास्ते कोई ऐसी चीज दुनियाँ में दिखाई नहीं देती जिसको सामने रखकर बताया जा सके कि ऐसी वह अवस्था है। वह अपने अनुभव योग्य

अवस्था है। अभी संसार में रहकर मर्यादा धारण करो। यह जीवन यात्रा किसी तरह सफल बन जाये। रुखसत होने से पहले पूर्ण तसल्ली पा लो। अभी से शुरु करोगे तब जाकर यह सफर सफल कर सकोगे। पूछते-पूछते उम्र गुजार देना कोई अकलमन्दी वाली बात नहीं होती।

वैराग्य वाणी

साचा नाम सिमर सुखदाई, जो सकले ताप मिटाये।
मानुष से भयो देवता जो, राम चरण चित्त ध्याये।।
सब साधन से ऊँच है, साचा नाम विचार।
प्रेम प्रीत चित्त में बसे, पलक न विसरे सार ।।
ब्रह्मा विशन महेश्वर, एक नाम चित गायें।
चार वेद उस्तत करें, नाम कथा अरथायें ।।
जिस साचा प्रभ नहीं सिमरया, धर के झूट अभिमान।
जाये प्यासा अन्त को, ले भरम बिख खान ।।
सत सरूप विसराये के, जीव परम दुःख पाये।
आवे जावे जगत में, फिर फिर जून भुगताये ।।
सदा अशान्त मन रहे, धार के विख की बास।
कूड़ विकार ना नर मिटे, बिन सिमरे अबनाश ।।
छाड़ सयानफ़ बावरे, राम चरण चित्त लाओ।
सो ही सरजनहार है, पतित पावन सुखराओ।।
नाम सिमर सुख उपजे, मन में धीरज आये।
गवन मिटे संसार की, जो सत् सेव कमाये ।।
उठत बैठत सिमर लो, ना करो पलक भरवास।
पल पल औधी जात है छीजत हैं नित साँस ।।
घड़ी अमोलक सो गुनी, जो प्रेम भगत चित्त आये।
'मंगत' लाभ इस देह का, पल पल लयो कमाये।।

ईश्वर प्राप्ति की कुंजी - प्रभु भक्ति

वाणी

पूरण भाग तिस जन ने पाई, सत् पुरुषों की जो सरन लखाई।
मूढ़मति सब मन की जाये, सत् सिख्या जो गुनी कमाये।
मिथ्या भरमन सकल विनासे, सत् साधू का जो वचन उपासे।
अत अन्धकार जाये अभिमान, साध की सेवा करे कल्यान ।
सत् विश्वास जिस गुरमुख पाया, साध की सीख प्रभ मेल मिलाया।
बन्धन से जन मुक्ता भयो, साध वचन अमृत फल दीयो।
पूरण सन्त के चरण बलिहारी, त्रैगुण मेट जिस जपा मुरारी।
अपनी भरमण सकल त्यागी, अखण्ड शब्द घट अन्तर जागी।
निर्मल प्रीत पल पल कमाई, उपरस जीवन सतनाम लखाई।
अगम निगम का भेद पहचानी, तिस साधू संग परम गत जानी।
निर्मल सीख मन तन परोई, कर्म जाल सब दुर्मत खोई।
सब जीवों संग हेत विचारी, स्वारथ त्याग भयो उपकारी।
मान मद की मैल गँवाई, दीन भाव घट अन्तर पाई।
प्रभ दाते संग केवल प्रीती, अन्तर्गत रसना सत पीती ।
गुरमुख मारग भेद पछाना, सत्गुर सीख से भयो कल्याना।
अवनाशी पुरुष तत्तनाद अनादी, अन्तर परगट भयो विस्मादी।
सकली सेव ने फल दिखलायो, पारब्रह्म घट में दरसायो।
निमख निमख कर पूजूँ देवा, गुर परसाद पाई सत् सेवा।
अजर पुरुष जोत निर्वानी, अन्तरगत में करी पहचानी।
पुरण गुर की सीख से, सत्नाम की सार लखाई।
'मंगत' मन तन शान्ति, घट परगट पुरख ध्याई।।

प्रवचन

शरीर रूपी संसार को धारण करके यह जो बुद्धि या जीव है इस शरीर के फैलाव को ही अपने विचार और निश्चय में फैलाती है। वैसे तमाम पशु मनुष्य, स्थावर, जंगम जीवों के शरीर पाँच तत्वों के ही बने हैं मगर शरीर की क्रिया भिन्न-भिन्न और यत्न भिन्न-भिन्न हैं, इसका क्या कारण है? यह जो बुद्धि है यह बे-ठिकाना होती हुई इस शरीर के सुखों को प्राप्त करने के लिये दौड़ रही है। इस बात की इसे समझ ही नहीं आती है कि इस शरीर के सुख मुकम्मिल हैं या इनसे शान्ति मिल सकती है कि नहीं। इस अज्ञानमयी जीवन का कारण संशययुक्त बुद्धि है जिस तरह कि किसी बीमार को न तो बीमारी की और न ही सेहत की समझ आती है, उस वक्त वह खातमा की तरफ जा रहा होता है। यही हालत उस बुद्धि की होती है जो संशययुक्त है। उस वक्त यह न तो बीमारी और न सेहत को जानती है। और ऐसे ही आगे बढ़ रही होती है। इस दौड़ से उसे तसल्ली तो मिलती नहीं और न यह सीधे रास्ते पर चलती है, बल्कि शरीर खत्म हो जाता है। और यह जीव जैसा प्यासा आया था वैसा ही प्यासा चला जाता है। केवल सत्संग में आकर ही इस बात का निर्णय समझ आता है कि बीमारी क्या है और सेहत क्या है। इस बात को जानने के लिए जिस वक्त गहरे गौर से विचार किया जाएगा तो मालूम हो जाएगा कि बीमारी क्या है?

तृष्णा अगनी लागी मीता, पल पल करे अंगार।
सत सील होवें नहीं, कोटक करे विचार ।।

तृष्णा की आग की तपश पल पल उठ रही है और शीतलताई यानि शान्ति नहीं मिल रही है। जन्म से लेकर मरण तक सब ही इस बहम में बहे जा रहे हैं और एक-दूसरे के पीछे चले जा रहे हैं। लेकिन यह ठीक नहीं। इसलिये महापुरुषों ने कहा कि सही समझोगे तो आपको इस संसार में तसल्ली मिल जायेगी। शरीर का यह जो पिंजर है इसने बहुत कुछ खाया-पिया लेकिन तृष्णा खत्म न हुई। बहुत कमाया लेकिन तृप्ति नहीं मिली। महापुरुषों ने कहा है-

अधिक धन प्राप्त कियो, अधिक पाया परिवार।
मान मद पाई बहु कीरत, पर मिटे ना मन अन्धकार ।।

बड़े-बड़े यत्न-प्रयत्न किये। राजा, महाराजा, चक्रवर्ती भी बन गये, लेकिन आखिर को वे भी प्यासे और निरासे ही गए और उनका कुछ न बना। सौ-पचास बरस गुजर गये लेकिन अन्धेरा वैसा का वैसा ही रहा। विवेकी पुरुषों ने सोचा कि पहले तो मूर्खताई की वजह से यह नासमझ था, मगर जब विचार किया तो पता लगा कि यह जीवन नहीं बल्कि मूर्खताई है। जब यत्न करके सही सूझ प्राप्त की तो पता लगा कि खेल क्या हो रहा है। और सत् स्थिति प्राप्त होने पर यह हालत हुई कि अगर कोई चीज मिल गई तो खुशी नहीं और बिगड़ गई तो गम नहीं।

जिस वक्त एक बच्चा पैदा होता है तो कितनी खुशियाँ मनाई जाती हैं। लेकिन काल वश होकर वह मर जाता है तो उसके पैदा होने की इतनी खुशी नहीं की होगी जितना कि मरने का गम होगा। यह ही संसार का रूप है। गो हर एक जीव रोजाना यत्न-प्रयत्न करके दुःखी हो रहा है लेकिन फिर भी बुद्धि इस उम्मीद में उस तरफ दौड़ रही है कि आज नहीं तो कल शायद आराम हो जाये। विवेकी पुरुषों ने कहा-

नाशवान शरीर में, जीव सुख नित माँगे।
धार दुर्मत अन्धकार को, कोट चले हैं नांगे।।

जीव नाशवान शरीर में सुख चाह रहा है मगर ऐसा कभी नहीं हुआ कि नाशवान शरीर के सुख पूरे हों। इस अन्धेरे की तरफ सब लोग चले जा रहे हैं मगर शान्ति किसी को प्राप्त नहीं हुई। शान्ति कहीं बाहर से नहीं आती, जब मनुष्य समझने की कोशिश करेगा तो खुद-ब-खुद उसे पता लग जावेगा कि यह तो इसके पास ही है। विचार करने पर उसे पता लग जाएगा कि पहले जब वह बच्चा था तो वह माँ-बाप के पास रहा। अट्ठारह बरस तक मनमानियां कीं। उसके बाद जब जवानी आई तो जवानी के मद में किसी को कुछ न समझा और जब बुढ़ापा आया साठ वर्ष की उम्र हुई, शरीर जर-जर हो गया मगर तसल्ली नहीं आयी। जब तक यह जीव बीमारी से गाफिल है वह कभी सेहतयाब नहीं हो सकता। जब तक बुद्धि अन्धेरे में फंसी हुई है उस वक्त तक आराम नहीं हो सकता। महापुरुषों ने कहा है-

जो देखन में आये साजन, सो ही नित तप्ताये।
राजे राने भूप भिखारी, सब काल चक्कर भरमाये ।।

इस समय सब लोग बे-आराम नजर आ रहे हैं। जितना भी सांगोपांग है उसमें आनन्द चाह रहे हैं और उसके लिए यत्न प्रयत्न कर रहे हैं मगर आनन्द किसी को नहीं मिला। विवेकी पुरुषों ने कहा है -

जो छिन में बिगड़े छिन में विनसे, सो कहाँ सुख दिखलाये।
अन्धमति को धार के, क्यों हीरा जन्म गंवाये।।

यह जीवन रेत का टीला है, इसमें क्या हासिल हो सकता है। अब विचार करना है कि इस जीव की वास्तविक चाहना क्या है? जीव की वास्तविक चाहना अखण्ड शान्ति की है मगर जो यत्न प्रयत्न कर रहा है इससे अशान्ति ही प्राप्त हो रही है। इसको अपने कर्म ही दुःख दे रहे हैं। यह जीव देवी-देवताओं के पीछे भाग रहा है मगर मूर्ख को पता नहीं कि उसके कर्म हो ठीक नहीं हैं। देवी-देवता उसको कैसे बचा सकते हैं। महापुरुषों ने सोचा कि इसकी दुरुस्ती कैसे की जाए। जब बीमार ही अपने को तन्दरुस्त (ठीक) हो ठी नहीं हैं। देवी-देवता उसको कैसे बचा सकते हैं। महापुरुषों ने सोचा कि इसकी दुरुस्ती कैसे की जाए। जब बीमार ही अपने को तन्दरुस्त (ठीक) समझ रहा है और बीमारी को ही तन्दरुस्ती समझ रहा है उसे कैसे रास्ते पर लाया जा सकता है। उन्होनें सोचा कि तृष्णा ही बीमारी है! यह ही पूरी नहीं हो रही। शाह व भिखारी एक ही हाल में हैं। कलंगी वाला भी प्यासा है भिखारी भी प्यासा है। हर एक व्यक्ति तसल्ली के लिए ही सांग ओ पांग कर रहा है। इस बात का विचारकर उन्होंने कहा –

राजा, राना, भूप, भिखारी, सब ही नित भरमाये।
मन की अगन ना शीतल हाये, कोटक करे उपाये।।

उन्होंने समझा कि आग किसी की भी ठण्डी नहीं हो रही है। धनी लोग वासना से बचने के लिए कोशिश करते हैं लेकिन वह उसे मिटा नहीं सकते। दूसरे लोग समझते हैं कि धनी लोग सुखी हैं। वे समझते हैं कि खाने-पीने के लिए उनके पास काफी सामान है। पहनने के लिए सुन्दर चमकीले, भड़कीले वस्त्र हैं। सोने के लिए मच्छरदानी का प्रबन्ध है अर्थात हर किस्म के सुख के सब सामान प्राप्त हैं इसलिए आम लोग यह ही समझते हैं कि वे लोग सुखी हैं मगर ऐसा समझना मूर्खता है। वे लोग हरगिज सुखी नहीं हैं। जो भी अमीर गरीब लोग हैं सब ही धोखा करने वाले हैं। एक-एक बात को सोचते हुए उनकी रातें बीत जाती हैं, नींद हराम हो जाती है। विचार

करने पर पता लगेगा कि वे बहुत अन्धेरे में हैं और उन्हें आराम बिल्कुल नहीं है। विचारवानों ने सोचा और कहा -

रोगी सोगी सब दिखलाये, विपत में जो देखन मैं आई।
दुर्लम भागवान सो जग माही, जो सत्गुरु मेल मिलाई।।

सब ही बीमार हैं और जो ज्यादा साँगोपांग करने वाले हैं वे मासूम (नादान) हैं। जिस तरह बच्चे को अन्त की खबर नहीं होती उसी तरह ऐशोईशरत (रंगरलियां) करने वाले लोग तुच्छ बुद्धि वाले हैं और हर वक्त पिंजर को संवारने में लगे रहते हैं। अपनी वास्तविकता का पता नहीं।

जीवित माटी, मोयां भी माटी, ऐसा ज्ञान विचारी।
निकले प्राण, मिट्टी विच बासा, लीने पाओं पसारी।।

आँखे खोलें तो सही रास्ते का पता चलता है। जब कोई बूढ़ा लाला मरने लगता है तो उसके रिश्तेदार कहते हैं, लालाजी! कहो हरे राम। सारी उम्र तो लाला उनके लिए अन्धेरा ढोता रहा, गलत काम करता रहा और अब कहते हैं लालाजी, राम-राम कहो। अब कहने से क्या बनता है। यह संसार का मेला हैं। जो बाहोश लोग हैं उन्होंने समझा कि यह पिंजर यानी शरीर एक दिन छोड़ना है। इसके साथ हर वक्त का लगाव न रखें। इन्होंने लगाव को कम करना ही अपना धर्म बनाये रखा। अगर किसी की सौ बरस की आयु हो भी गई है तो वह ज्योतिषियों के पीछे भाग रहा है कि वे उसे और बढ़ायें लेकिन बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी। जब मनुष्य एक छिन के लिए भी इस शरीर के सुखों से गाफिल (अचेत) नहीं, जब वह उसे छोड़ेगा उस वक्त उसका क्या बनेगा। रोटी खाते समय अगर एक चटनी ही कम हो तो वह बहुत तंग होता है, लेकिन जब शरीर छोड़ेगा तो कितना दुःख होगा। कितनी मुश्किल उस समय आयेगी। महापुरुषों ने कहा –

जीव सत त्याग मृतक को पूजे, देखो यह अन्धकार।
जीवन दाता न चेतिये, लेना सिर पर विपत अपार ।।

यह कभी न सोचा कि इस पिंजर का जीवन किसके सहारे है। सब मिट्टी की ही पूजा कर रहे हैं। सभी अन्धेरे में पैदा हुए, उसी में मर जायेंगे। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को यही कहा कि जो नित्य वस्तु है उसको जानने की

कोशिश करो। सत्सग में सच झूठ का निर्णय ही होता है। निर्णय यह ही है कि हर एक जीव अपनी शारीरिक कल्पनाओं में जकड़ा हुआ है और उन कामनाओं को पूर्ण करते-करते यह शरीर खत्म हो जाता है मगर कामनायें खत्म नहीं होती और जीव निराश ही जाता है। विवेकी पुरुषों ने सोचा कि शरीर के परे भी कोई चीज है, जब उसकी खोज की तो उस वक्त इसका मायावाद यानि अहंकार नष्ट हुआ और उस चीज का निश्चय कर बैठा। उस वक्त उन्होंने उस प्रकाश को अनुभव किया जिससे यह शरीर प्रकाशमान हो रहा है। जब तक जीव शरीर के अजाम से नावाकिफ है तब तक मायावादी है और जब शरीर के आखिरी अंजाम को समझता है उस वक्त सत्यवादी होता है। आजकल के लोगों में सत् का अभाव हो गया है। जितना-जितना सत् का विश्वास होगा उतना-उतना असत् का वेग नष्ट होगा। सत् क्या है? जिस वक्त यह निश्चय त्रैकाल बना रहेगा कि आत्मा के सहारे शरीर खड़ा है और वास्तविक शरीर की कोई हस्ती नहीं है और आत्मा ही सत् है, जब ऐसा निश्चय हो जाता है तब मनुष्य परमेश्वर की भक्ति की तलाश में लगता है। उस वक्त उसे समझ आती है कि शरीर की पूजा कल्याणकारी नहीं और जब शरीर को छोड़कर रुह की तलाश उसने की तब उसकी कामनायें धीर-धीरे समाप्त हो जाती हैं और उसमें सत्य, शील, उदासीनता, निश्चलता इत्यादि देवगुण उत्पन्न हो जाते हैं। उस जीव के अन्दर जीवन शक्ति का अनुराग होता है। जैसे पहले वह शारीरिक सुखों के पीछे भाग रहा था अब वैसे ही परमेश्वर की तलाश में लग जाता है। महापुरुषों ने कहा है-

तन मन वारे नित ही जो मीता, सत् सरूप सोझी में आवे।
मिथ्या देह समर्पण करके, सत् आतम कथा लखावे।।

इस मिथ्या देह को लेकर अगर प्रभु मिल जायें तो इससे और क्या अच्छा है। एक व्यक्ति सन्त कबीर के पास गया और कहा कि मुझे रास्ता बताओ। उन्होंने कहा कि इत्वार को आना। जब वह इत्वार को आया तो कबीर साहब एक छुरी पत्थर पर तेज करने बैठ गये। उसने पूछा कि छुरी तेज करके क्या करोगे तो कबीर साहब ने कहा कि तुम्हारा सिर इससे काटना है, तब तुझे रब्ब का रास्ता मालूम होगा। उस व्यक्ति ने कहा कि अगर सिर देकर रास्ता

पता चलता है तो हमारा दूर से सलाम है। मुझे ऐसे रास्ते की जरूरत नहीं और भाग गया। सन्तों ने कहा है -

एह तन बिख की बेलड़ी, हर हीरों की खान।
तन दीजे जो हर मिले, तो सौदा सस्ता जान ।।

ऐ मूर्ख ! यह शरीर विष की बेल है। अगर यह बिख की बेल देकर हरि मिल जाये तो सौदा सस्ता जानो। कबीर साहिब ने कहा है -

कबीर तू ही कबीर, नाम तेरो कबीर ।
नाम रतन तब मिले, जब पहले तजें शरीर।।

किसी कामिल पुरूष ने कहा है -

मरते मरते मर गये , राजे राने मीर।
जीवित मरना जो मरे, सो कोई कामिल फकीर ।।

यानि ईश्वर के सिमरन से ही बड़ा सुख मिला जो बयान नहीं किया जा सकता। इससे तमाम कामनाएँ खत्म हो गई और अखण्ड शान्ति प्राप्त हुई। एक आँख के झपकने में सुरति ईश्वर में मगन होती है तो बहुत आनन्द प्राप्त होता है। महापुरुषों ने कहा है कि बुद्धि उस वक्त अक्षय सुख को प्राप्त होती है। जीवन शक्ति की अनुभवता में ही सुख है। ऐसा विचार करके महापुरुषों ने कहा है कि अन्धेरे की तरफ मत दौड़ो और इस संसार में जीवन रूपी ईश्वर की तलाश करो। ज्यों-ज्यों उसकी तलाश करोगे त्यो-त्यों ही आनन्द पाओगे। कबीर साहिब ने कहा है -

कबीर सोया क्या करे, सोए होए अकाज।
जिसके संग से बिछड़ा, वाही के संग लाग।।

एक अन्य स्थान पर कहा है :-

नींद निशानी मौत की, उठ कवीरा जाग।
और रसायन छाड़ के, नाम रसायन लाग।।

ऐ मूर्ख इन्सान ! तेरा सफर भी खत्म नहीं हुआ। कभी सिनेमा जा रहा है कभी थियेटर में। इस जीवन की कदर कर, यह बहुत मुश्किल से प्राप्त हुआ है, इसको ज़ाया (नष्ट) न कर। सत्पुरुषों ने उस आनन्दित अवस्था, आत्म अनुभवता की शहादत (साक्ष्य) दी है और इस माया के विषय में फरमाया है

कि बड़े-बड़े अमीर-गरीब जो लोग है उनको कमी तसल्ली प्राप्त नहीं हुई और वह अति कष्ट में रहे। जिन्होंने सत् को प्राप्त किया वे लोग सूली पर चढ़े। गुरु अर्जुन देव पर जब गर्म रेत के कड़छे पड़ रहे थे तो मियाँ मीर वहां आया, उसने कहा कि अगर आप कहें तो लाहौर और देहली की ईंट से ईंट बजा दूं। उस समय गुरु अर्जुन देव ने कहा -

तेरा भाना मीठा लागे ।
'नानक' नाम पदारथ मांगे।।

जब परमेश्वर को यह ही मंजूर है तो मुझे भी यही मंजूर है। वाह-वाह ऐसे लोगों की कुर्बानी कितनी ऊंची है। जिनको परमेश्वर का निश्चय है वे यही समझते हैं कि ईश्वर परम आनन्द है और वह अत्यन्त तकलीफ में भी आनन्द महसूस करते हैं। देखो, राजा मोरध्वज ने अपने पुत्र को अपने हाथ से काटकर अतिथियों को दिया और उस परम आनन्द का सबूत दिया। दधीचि ऋषि, राजा हरीशचन्द्र वगैरा ने भी उस परम आनन्द का सबूत दिया, उन्होंने रब्ब की कीमत डाली है। इधर क्या हालत है कि परमेश्वर के नाम पर एक जूं भी मार कर नहीं दे सकते और चाहते हैं कि रब्ब मिल जाये। रब्ब का मिलना आसान बात नहीं है। दुनियाँ परम दुःख है लेकिन वक्त गुजर जाने के बाद समझ आई तो बे-फायदा होगा। ईश्वर ही परम सुख है। विवेकी पुरुषों ने सिर-धड़ की बाजी लगाई और उस तरफ चले। उन्होंने सब प्यारी चीजें ईश्वर के लिए त्याग दीं।

तन मन धन अर्पण करे, मान मद त्यागे।
गुप्त आत्मा परगट होए, चित्त भगति में उठ जागे।।

सन्त दादू दयाल ने कहा है -

'दादू' दावा दूर कर, बिन दावे दिन कट्ट।
केते सौदा कर गये, इस पंसारी दे हट।
पूरा किसे ना तोलया, जिस तोलया तिस घट।

जो भी दुनियाँ में आए पूरा नहीं तोला। जब लोग दावा करते हैं कुरान, गीता को फौरन उठा लेते हैं। मगर उनकी कदर तो उनको है जो निर्दावा (निर्मोह) हुए हैं। इसका मकसद (मतलब) यह है कि रब्ब की चीज रब्ब के हवाले

करो। यह समझ लो कि अगर रब्ब की भक्ति नहीं कर सकते तो शरीर की पूजा से कुछ प्राप्त नहीं होगा। इस पिंजर यानी शरीर की भक्ति से बहुत से रोग प्राप्त होंगे। अगर रब्ब की भक्ति नहीं की जाएगी तो शरीर की पूजा से कुछ हासिल नहीं होगा। आपको चाहिए कि थोड़ी पूजा शरीर की करो और वक्त निकालकर जीवन-शक्ति की पूजा करो। गुरमुखों का यह ही रास्ता है। मर्यादा से खाओ, मर्यादा से पहनो। ऐसा करने से जीवन-शक्ति का कुछ पता लगेगा। रब्ब का निश्चय पैदा होगा। इस रास्ते पर चलो ताकि इस जीवन यात्रा को मुकम्मिल कर सको। यह ही जीवन का सार है। तमाम लोग शरीर के विकारों में लगे हुए हैं। विकारों से जीवन को पवित्र करो। बाहर की कोई चीज तंग नहीं करती। इसे मन के विकार ही तंग करते हैं। जो भी परमेश्वर की आज्ञा का पालन करेगा आनन्द पाएगा। ऐसी सुमति सबको धारण करनी चाहिए। ईश्वर सबको सुमति देवें।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! अहंकार का क्या स्वरूप है?

गुरुदेव : प्रेमी ! द्वन्द्व को महसूस करने वाली चीज अहंकार है।

प्रेमी : महाराज जी ! बुद्धि के आगे परदे कौन-कौन से हैं? गुरुदेव : प्रेमी ! बुद्धि के आगे यह परदे हैं **(1)** कर्ममयी सृष्टि (2) वासनामयी सृष्टि **(3)** गुणमयी सृष्टि। इनको आधिभौतिक सृष्टि, आधिदैविक सृष्टि और आध्यात्मिक सृष्टि भी कहते हैं। यह ही त्रिलोकी है। इन परदों को दूर करने वाला ही त्रिलोकी नाथ है। गुण से वासना प्रगट होती है। वासना से कर्म और कर्म से फल। शरीर, मन, बुद्धि यह तीन लोक है।

प्रेमी : महाराज जी ! बुद्धि वासना रहित कब होती है?

गुरुदेव : प्रेमी ! शरीर वासना का समुद्र है। आत्मा वासना व कर्म से न्यारा है। बुद्धि शरीर को समझ रही है और इसकी वासना को भी समझ रही है। जब तक आत्मा को नहीं समझती वासना रहित नहीं होती। जो साधन सत्पुरुषों ने आत्म अनुभवता को प्राप्त करने के बतलाये है उन्हें धारण करो, बुद्धि वासना रहित हो जाएगी।

प्रेमी : महाराज जी। सहज अवस्था किसे कहते हैं?

गुरुदेव : लाल जी। सुरति जब ऐसी अवस्था में दृढ़ होती है जिसमें सोते जागते गुण व दोष का असर (प्रभाव) न हो, ऐसे स्वरूप में वह दृढ होवे यह ही अवस्था ब्रहा ज्ञानी की है। ब्रहा ज्ञानी या तत्व ज्ञानी की अवस्था को ही सहज अवस्था कहते हैं।

प्रेमी : महाराज जी ! ध्यान किसे कहते हैं?

गुरुदेव : प्रेमी। ध्यान वाली चीज़ में गर्क हो जाना ध्यान है। ध्यान वाली चीज में जब बुद्धि लय होती है तब ध्यान अवस्था आती है।

प्रेमी : महाराज जी ! तीन ताप क्या है?

गुरुदेव : प्रेमी ! तीन ताप हैं - शारीरिक, मानसिक व निश्चक। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, यह गुण तीन तापों के कारण हैं। गुण का सरूप है मैं'। बुद्धि में जब तक मैं खड़ी है, गुण सहित होती है और जब गुण रहित होती है तब तापों से छुटकारा मिलता है।

प्रेमी : संसार का असली स्वरूप क्या है?

गुरुदेव : संसार का असली स्वरूप सुख की तलाश है।

वैराग्य वाणी

संसार की रचना में मन ना तृप्ते, कोट करे उपाए।
मान माया बहु संचित कीनी, तो भी धीरज नाए ।।
अधिक भयो परिवार जग माई, बहु बिध पाई वडयाई।
पर मन को न सन्तोष परापत, नित निरासा रहाई ।।
वाह वाह रचना यह जगत की मीता, कुछ कहन कथन नही आवे।
जाँ से पूछें सुख की साजन सोही दुःख दिखलावे ।।
जिस जन निर्मल कीरत पाई एक नाम पूरन भगवन्ता।
"मंगत" तिस जन शान्त परापत तत्त परस पुरख अनन्ता ।।

शरीर क्या ?

वाणी

अपने ताप का करो विचारा, जीवत में लयो काज सँवारा।
मानुष चोला पायो सुखरासी, निर्भय धाम लखो सुखरासी।
मूढ़मति में ना भरमाई, सतमती खोजो सुखदाई।
सतपुरुषों की सेव कमाओ, पल पल कीरत तिन की गाओ।
सुनो विचार परम सुखरासी, पल पल चित में कर निव्यासी।
निर्मल कर्म जो तिन की सीख, हिरदय राखो पाओ सुख रीत।
बारम्बार करो विचार, सतपुरुषों का जीवन सार।
जित बिघ पाई गुनिया छूट, मारग धर्म जो लखा अनूप।
इस विध जीवन अपना धार, जतन करें उतरें भव पार।
करनी तेरी तुझको ओट, पाप कुपथ की त्यागो खोट।
साची सीख हिरदय में धार, सुकृत मारग धर्म विचार।
आलस माही क्यों जन्म गंवाई, छिन छिन छीजे यह देह दुखदाई।
परम जतन हिरदय में घार, नित आनन्द सिमर करतार।
जिस मारग से जग में आया, उस मारग में रहो समाया।
यहां तो इस्थिर रहना नाहीं, विच मुसाफ़त न भरमाई।
साचा ठाकर प्रम हिरदय चेत, मोह माया की मिटे विखेप।
जीवन में खोजो सत सार, अन्त की बारी मिले छुटकार।
मन में धारो सत विवेक, सरज़नहार की राखो टेक।
सिमर सिमर पार्वे सुखसार, सतपुरुषर्षो की सुन यह पुकार।
बिपत रूप संसार में, जीव परम दुःख पाए।
"मंगत" बिपता तब मिटे, जब सत की प्रीत कमाए।।

प्रवचन

संसार से चला गया और इत्र सब यहां ही रह गये। कानों की इन्द्री जिसकी बलवान है वह चौबीस घण्टे ही अच्छे-अच्छे गाने सुनने का इच्छुक रहता है। अगर उसे अपनी बातें नहीं सुनानी तो वह दूसरे लोगों की बाते ही सुनता रहता है। हर इन्द्री अपने-अपने व्यवहार में बिचर रही है। इन इन्द्रियों में मर्यादा नहीं है। कोई लोग चन्द पैसों से गुजारा कर लेते हैं और कोई तो दो लाख रुपया खर्च करके भी भूखे रहते हैं। इसलिये यह शरीर भवदुस्तर है, मायावादी है। जिसको यह निश्चय है कि इन्द्रियों के भोग भोगना ही सुख है उसकी बुद्धि अभिमानी है। जबसे वह ज्यादा भोग भोग रहा है उसे आराम का नाम तक नहीं है। जैसे कि पुराने मरीज को होश नहीं होती है कि उसे क्या मर्ज है। लोग उससे पूछते है कि क्या सिर में दर्द है तो वह कहता है हॉ, सिर में दर्द है। अगर लोग कहते है पेट में दर्द है तो कहता है कि 'हाँ, पेट में दर्द है।' जो लोग सिगरेट, तम्बाकू, चरस, सिनेमा और थियेटर वगैरह से आराम चाहते हैं या दीगर नशों में आराम महसूस करते हैं वे मासूम लोग हैं उनको कुछ समझ नहीं है। इस त्वचा इन्द्री का क्या स्वॉग है? इन्सान इसको बड़े चाव से कपड़े पहनाता है। कपड़े में अगर जरा भी शकन (सिलवट) पड़ जाए तो भी तकलीफ महसूस करता है। जरा काज ही टेढ़ा बन जाए तो दर्जी को तंग करता है कि उसने ऐसा क्यों किया। आखिर इस दुविधा में रहने के बाद क्या निकला?

मुट्ठी बांधे आये जगत में, हाथ पसारे जाते हैं।
राजे राने गुणी सयाने, अन्त समय पछताते हैं।।

राजों ने अपनी फिल्म को ज्यादा सजाया और गरीबों को सजाने का कम मौका मिला। बुद्धि भी फिल्म है और इन्द्रियों से सुख चाह रही है। यह खतम हो जायेंगी और सुख यहाँ ही रह जायेंगे। दो भेद हैं, अहंकारवादी कहते हैं कि शारीरिक भोगों में सुख है लेकिन कमी रह गयी है। इसलिये वह उनके पीछे दौडता है और सोचता है कि ऐसा करने से शायद आराम मिले। इतनी उसको समझ नहीं कि यह इन्द्रियों के भोग सुख नहीं है। पश्चिम की नकल के लिए लोग बेताब हो रहे हैं। ऐसे लोगों की अकल यह ही कहती है कि जितने भी शारीरिक सुख हों, आराम हैं। वे एक-एक इन्द्री के लिए कई किस्म के भोग एकत्र करते हैं जिनकी गिनती भी मुश्किल है। इन लोगों के भोगों की भी कोई सीमा नहीं है। पहले जमाने में लोगों के पास एक

होता था और उसके फटने के बाद दूसरे की फिकर होती थी लेकिन आजकल अगर तमाम साल के लिए कपड़े मौजूद हों तो भी और कपड़े बनवाने की ख्याहिश बनी रहती है। हर शख्स (मनुष्य) इस शरीर के भोगों को फैलाकर आराम चाह रहा है। जो भी शरीर धार कर आया है उसी कैद में आया और गया। महापुरुषों ने निर्णय निकाला।

खाए खाए भूक समाई, पहने पहने अन्त नांगा जाई।
जीते जीते ओढक मरना, उठ ओ गुणियाँ आखिर चलना ।।

मरने के बाद मीठे दलाल कहते हैं कि खाता-पीता मरा है, वह भी नजूमी (ज्योतषी) पास बठाये रखता था कि मेरी उम्र बढ़ाने की कोशिश करो।
महापुरुषों ने कहा है -

जिस देह संग प्रीत लगाई, बहु रंग भोग भुगाई।
देखत में जरा परापत, अन्त राख हो जाई ।।

उम्र गुजर रही है (जीवन व्यतीत हो रहा है) हाड-मॉस ढीला पड़ रहा है। देखते-देखते ही मोतियाबिन्द हो गया है, लेकिन फिर भी शारीरिक सुखों की चाहना बनी हुई है। यह नहीं समझा है कि यह सुख हमेशा नहीं रहेंगे।

ना सुख इस्थिर जग में कोई, ना इस्थिर शरीर ।
यह ही कथा विचार के, मन होया दिलगीर।।

देखिये पहले मानव शरीर बड़ा कमजोर होता है। बच्चा होता है; चल-फिर भी नहीं सकता। देखते-देखते जवान हो जाता है और शरीर सुदृढ़ हो जाता है। फिर बुढ़ापा आ जाता है। जिस्म उठाया नहीं जाता। बुड्ढा कहता है कि मुझे रास्ता दिखाओ, मगर बच्चे उसको देखकर हंसते हैं, वह बच्चों को मारने की कोशिश करता है तो वे भाग जाते हैं। फिर बुड्ढा अफसोस करता है कि हाय! कभी मैं भी जवान था। जब इस फिल्म का विचार किया तो समझ आई कि –

सुख के यतंन अनेक किए, कोट करी तदबीर।
इस मन को धीरज आए न साजन, अन्त जाए दिलगीर ।।

बेशक कितने यत्न करो सुखों की कमी ही रहती है और अन्त प्यासे ही जाना पड़ता है।

आसा माहीं जग आए, गए निरासे अन्त ।
इस मन को शान्त ना मिली, जिन सिर छतर झुलंत ।।

जैसे एक राजा भर जाता है वैसे ही एक भिखारी भी मर जाता है। महापुरुषों ने कहा है-

तृष्णा रूपी लागा रोग, यह अत रहे तपताई।
एक पलक ना शान्ति आवे, इन्दर राज भी पाई।।

जब समझ आई कि तृष्णा की वजह से न राजघर में आराम है और न ही गरीब के घर आराम है। जब मनुष्य बूढा होता है आँखों से पानी बहने लगता है, कोई बात नहीं मानता। शरीर का हर अंग कमजोर हो जाता है तो अफसोस करता है, लेकिन जो विवेकी लोग है उनको वह वक्त पहले ही याद होता है। हर चीज के दोनों पहलू समझने वाला आदमी ही अच्छा है। शरीर के अन्त से जो इन्कारी है वह ही दुःखी है। लेकिन बुद्धिमान पुरुष अन्त को पहले देखते हैं।

पूँजी जॉ की स्वॉस है, सुखिया सो बेचैन ।
स्वाँस स्वॉस चल जात है, ओहद घटे दिन रैन ।।

श्वास ही असली पूँजी है। जीवन की तृष्णा जब पूरी नहीं हो रही तो कोई ऐसा उपाय किया जाए, जिससे आसानी से सफर तय (पूरा) हो जाए। अब दूसरा पहलू आया, वह ऐसी हालत है कि -

सुख साजन कहाँ है, जहाँ दुःख सुख ना प्रतीत।
जन्म मरण जाए आसा सकली, दिन रैन पुनीत ।।

जिन्होंने खुशी-गमी को एक जैसा समझा वे सन्तों के पास गये, क्योंकि मन के हाकिम सन्त लोग हैं। सन्तों ने बताया कि दुनियाँ की चीजों में शान्ति कहीं नहीं है।

जो देखन में आया, सोही बिपत लखाई।
इस मन की अग्नि ठण्डी ना होई, दिन दिन बढ़ती जाई।।

आपकी भटकना दिन-ब-दिन बढ़ रही है और भी तुम क्या चाहते हो तो उसने कहा

मन तृप्ति में वास करे नासे तृष्णा रोग।
आठ पहर रहवे प्रसन्नता यह मांगु लगन अरोग।।

जब सन्तों ने यह बात सुनी, उन्होंने समझा कि जिज्ञासु अच्छा है। लेकिन बीमारी दूर करना बड़ा मुशिकल है। सन्तों ने कहा बैरुनी (बाहर की) बीमारियों को छोड़ ।

उस सुख के माथे सिल पड़े, जो साहिब नाम विसराये।
बलिहारी उस दुःख के, जो साहिब नाम रटाये।।

जिज्ञासु ने कहा कि शरीर बेशक जाए मगर शान्ति मिले। उस वक्त सन्तों ने बतलाया कि सुख बाहर नहीं, वह तेरे अन्दर ही मौजूद है। तू अपने ख्याली सुखों को अन्दर से निकाल फेंक । संसारी सुख तेरे अन्दर नहीं है। यह तेरा महज ख्याल है और ईश्वरी सुख तो पहले ही तेरे अन्दर मौजूद हैं। जब परमेश्वर का निश्चय आया तू अपने सुख दूसरों को देने लगा। पहले दूसरों के सुख लूटने वाला डाकू बना हुआ था, लेकिन परमेश्वर के निश्चय के बाद अपने सुखों को बाहिर फेंकने लगा। फिर उसकी यह हालत हो गई।

अपना सुख नित वरतावे, पर दुःख सीस धराई।
आज्ञा माने साहिब की, तब आतम सुख लख पाई।।

पहले उसकी काग वृत्ति थी लेकिन अब हंस वृत्ति हो चुकी है। आजकल यह तरीका है कि जो भी गली-सड़ी चीज हो वह ही परमेश्वर के नाम पर दी जाती है, लेकिन सन्तों का तरीका यह है कि जो भी चीज अच्छी है वह परमेश्वर के अर्पण करते हैं।

जीवन के सुख निश्चय से त्यागे, तब ही आतम सुख पाई।
बिछुड़ा जन्म अनेक का, प्रम कृपा से परम धाम समाई।।

कई शक्लें धार के हजारों सुख भोगे। अब प्रतीत हुई कि तत्वों में सुख नहीं, बल्कि परमेश्वर में सुख है। जितना-जितना असली सुख की तरफ जा रहा है उतना ही प्रसन्न हो रहा है।

आतम सुख घर अनुभव होया, तृष्णा मिटा तुरंग।
राग द्वेष ठण्डा हुआ, मन रंगयो प्रेम के रंग।।

जीव को जब आत्म सुख प्राप्त हो जाता है वह फिर और किसी चीज की ख्वाहिश नहीं रखता, उसका तृष्णा का वेग खत्म हो जाता है। राग द्वेष समाप्त होकर उसका मन प्रेम में रंग जाता है।

आठ पहर मन लगन समाई, नाम की रसना खाई।
एक पलक ना व्यापे व्याधि, ऐसी शान्त लखाई।।

उस समय उसको हर वक्त सुख महसूस होता है और कभी दुःख नहीं होता

जिस सुख को सनकादक खोजे, शिव नित ध्यान लगाई।
सो सुख मन में परगट पायो, मिल साध संगत रंग लाई।।

बाबा नानक ने फरमाया है –

तीनों बन्ध लगाये के, सुन अनहद तान।
बजे नकारा घना सुन्न समाध में, लाल खड़े मैदान।।

इसी तरह श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा कि जब मोह कीचड़ से आजाद होगा तो अनदेखा और अनसुना आनन्द प्राप्त होगा। अगर कोई मुश्किल बात है तो वह अपने स्वभाव को सुधारना है। आदत को दुरुस्त करना ही मुश्किल है। इस शरीर यात्रा में किस तरह विचरना है? देखिये, जितनी शरीर की जरूरत बढ़ेंगी उतना ही दुःख ज्यादा होगा और जितनी कम होंगी उतना ही सुख प्रतीत होगा और शान्ति मिलेगी। मर्यादा के मुताबिक शरीर यात्रा करो। आप जब कोई काम करें, ख्वाहे ब्याह-शादी हो तो प्रधान निश्चय ईश्वरीय बना रहे।

अपनी आदत पर किस तरह विजय पा सकते हैं? संसार में बेकरारी बहुत है। अच्छे लोगों के लक्षण हर वक्त सामने रखो। अपने जीवन को ठिकाने लगाने के लिये सत्पुरुषों के आचरण का ध्यान रखें। अपना निश्चय ऐसा ही बनायें। ऐसे निश्चय के बाद बुद्धि बलवान हो जाती है। इस वक्त जमाने की हवा यह है कि अय्याशी और नुमायशी जिन्दगी बन चुकी है। प्रेम और सेवा अच्छे गुणों को छोड़ दिया है। आज़ज़ी और नम्रता खत्म हो चुकी है। लोग आजकल राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए हैं और दुःखी हो रहे हैं। असली खुशी को अगर चाहते हो तो अपने आपको सादा बनाओ, नशीली चीज़ों से परहेज करो। यह चीजें बुद्धि का नाश कर देती हैं। व्यापार ठीक तौर से करो। दूसरों की सेवा करो। सिर्फ शारीरिक उन्नति की खातिर ही कोशिश मत करो, बल्कि बुद्धि को बलवान करो। बुद्धि की खुराक हासिल करने की कोशिश करो। वह खुराक आपको सत्संग से मिलेगी। जिस ज्ञान को सन्तों ने बयान किया है उसको धारण करो। उसके अलावा जिन लोगों ने अपने अन्दर मानसिक विकार रखे और देवी-देवताओं से कल्याण चाहते हैं उनका कोई कल्याण नहीं कर सकता, वे अपनी कल्याण खुद कर सकते हैं। ऐ मानव ! जब तेरी बुद्धि ही कह रही है कि तूने फलों गलती की है या गलती कर रहे हो तो तुमको कोई बचाने वाला नहीं है। जो पंडित कहते हैं कि आप बेशक चॅगा मन्दा काम करें और गंगा स्नान कर आयें, पाप खुद-ब-खुद (स्वयं) दूर हो जायेंगे, वह गलत कहते हैं। मन के पाप नहाने से खत्म नहीं

होते हैं। मन की मैल श्रेष्ठ कर्तव्य और आचरण से दूर होती है, अगर ऐसा नहीं करेंगे तो अपने आपको खत्म करेंगे। अगर कोई जीव बावजूद समझाने के गलती करता है तो उसको माफी नहीं हो सकती। जैसा समझा है वैसा ही काम करो। विवेकी पुरुषों के पास जाओ और अपनी विचारधारा को पक्की करो। यह ही ठीक रास्ता है। आपके निश्चित कर्म भी हैं। आप जब अच्छी-बुरी बात से वाकिफ हो तो अपनी बिगड़ी को सुधारो। पाप कर्म पुण्य कर्मों से खत्म हो जाते हैं। आप क्यों हर वक्त संसारी उलझनों में खत्म हो रहे हो। दो घड़ी रोज महापुरुषों के पास जाओ और बुराइयों का त्याग करो तो आप बिगड़ता हुआ बहुत कुछ बना सकते हो। आजकल के व्यापारी बेकरार हैं। सोसाइटी हमेशा अन्धी रही है, लेकिन इस वक्त साधु लोग जो धर्म के रहनुमा थे, वे भी अन्चे हो चुके हैं।

गुरु और शिष्य लालची, दोनों दुःख को पाएँ।
डूबे लहर समुद्र में, बैठ पत्थर की नाएँ।।

गुरु शिष्य का सुधार नहीं चाहता है और चेला भी समझता है कि यह रिश्ता यूँ ही (ऐसे ही) एक दूसरे को ठगने का है, इसलिये सुधार हो नहीं सकता। अगर चोरी का माल गुरू के पास भी होगा तो दोनों गुरु और चेला खराब होंगे। अगर गुरु से चेला पूछता है कि गुरु जी! शराब को दवा की जगह इस्तेमाल (प्रयोग) किया जावे तो क्या बुराई है? इस पर गुरु कह देता है कि हाँ, अगर दवाई की जगह शराब पी जावे तो कोई हर्ज नहीं। इस तरह बुराइयों के मुत्तलक गुरुओं से चेले झूठ कराते हैं और फिर वे गुरु मिसालें (दृष्टान्त) भी दे देते हैं कि देखिये कृष्ण ने भी वक्त पड़ने पर झूठ मार दिया था। युधिष्ठिर ने भी वक्त पड़ने पर झूठ मारा, इत्यादि और फिर कहते हैं कि आप बेशक किसी वक्त झूठ मारो। चेले भी यह ही चाहते हैं कि इस किस्म की छूटें मिलनी चाहिए। जबान पर गुरु के धर्म की बातें करते हैं और अन्दर कपट है। यह मुल्क इसी वजह से दबा हुआ है। गुरु भी कहता है - "राम नाम जपना पराया माल अपना।" अगर दोनों गुरु और चेला सही रास्ते पर चलें तो सब कुछ ठीक हो जाए। आप देखिये कि बाली ने कृष्ण जन्म में रामचन्द्र जी का बदला लिया। इससे यह साबित (सिद्ध) होता है कि अपने कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। जब अवतारों को भी फल भुगतना पड़ा तो आपको कौन बचा सकता है। कर्मों के फल से छुटकारा नहीं होगा।

गुरुओ की नसीहत (उपदेश) पर चलकर अपना कल्याण करें। कोई देवी-देवता तुमको अपने कर्म फल से नहीं छुड़ा सकता। आप उनके नेक जीवन को समझे और उनके आदर्श को धारण करें। राम, कृष्ण, बुद्ध, कबीर, ईसा, नानक, वगैरह के जीवन आदर्श को अच्छी तरह समझें और उनकी राह पर चलकर उन्नति करें। जो देव-शक्ति तेरे अन्दर है यह ही तेरी सहायता करेगी। यह ही संसार का असली रूप है। इस जीवन यात्रा में तबीयत (स्वभाव) को सुधारो। स्वभाव के गुलाम मत बनो, स्वामी बनो। जब ईश्वर का विश्वास होगा तो आपकी बुद्धि सावधान हो जाएगी। अगर माथा टेकने से ही कल्याण हो जाता तो कृष्ण को अट्ठारह अध्याय गीता सुनाने की क्या जरूरत थी? सिर्फ इतना ही कह देता कि मुझे ही माथा टेको, तेरा सब कुछ ठीक हो जाएगा। कर्म की सजा से कोई भी नहीं बचा सकता। कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि गैर जानबदार (निष्पक्ष) होकर कर्म कर और तमाम कर्म मेरे सुपुर्द कर, इस तरह तू कर्मो की सजा (दण्ड) से बच जायेगा। दुनियाँ की चीजें आपको हर वक्त मजबूर कर रही हैं। आप लोग अपनी जिन्दगी का नाश कर रहे हैं। हमेशा एक उसूल वाला जीवन बनाना चाहिये। जिन्दगी को सादा बनाओ, कोशिश करो और खुराक सादा बनाओ। लिबास सादा रखो और लोगों की सेवा करो, अपने आपको सेवादार बनाओ। कुछ न कुछ समय निकालकर सत्पुरुषों का विचार सुनो तो खुद ही अपने जीवन के सही रक्षक बनोगे। ईश्वर सुमति देवें, जिससे सही रास्ते पर चलते हुए आप अपनी और दूसरों का कल्याण कर सकें।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : संसार कैसे खत्म होता है?

गुरुदेव : जब मन को शान्ति हो जाती है तो ससार खत्म हो जाता है। मन की चंचलता में संसार है। जब तक मन शक (संशय) में है, यह खड़ा नहीं होता। जब पूर्ण विश्वास होगा तब मन खड़ा होगा। मन ने जो पैदा किया है उसमें नहीं टिक सकता। मन उसमें टिकेगा जिससे यह पैदा हुआ है। मन तब टिकता है जब यह शरीर की खुशी-गमी को भूल जाये।

प्रेमी : महाराज जी! मन का आकार क्या है?

गुरुदेव : प्रेमी । आकार मन का कोई नहीं। मन और बुद्धि अहंकार का स्वरूप है। गलत और सही ताबीर निर्णय करने वाली चीज़ बुद्धि है। इन्द्रियों

की चेष्टा या याद करने वाली चीज मन है। जागते वक्त मन का स्थान नेत्रों में है। सोते वक्त कण्ठ में होता है। उस समय यह सारे संसार में व्यापा हुआ होता है। मन की याद की तमीज करने वाली शक्ति बुद्धि है। मन जो चीज देखेगा, चलायमान होगा। बुद्धि उसकी याद को समझकर चलायमान होगी। मन चाहता है, बुद्धि फैसला करती है। बुद्धि विशाल होवे तब मन को स्तम्भित कर सकती है। समर्पण भावना पैदा करके शरीर की अनानियत (अहंकार) को तोड़ो। शरीर का आसरा बुद्धि को है। बुद्धि उसके परायण हुई है। इस वास्ते शरीर का संग नहीं छोडती। शरीर आकारमयी है।

प्रेमी : महाराज जी ! क्या मन को रोका जाता है या यह खुद-ब-खुद रुक जाता है।

गुरुदेव : प्रेमी । मन स्वभाव करके चंचल है। पहले इसके बहाव को रोका जाता है। जब यह रुकने लग जाता है तो फिर खुद-ब-खुद रुक जाता है। मन इन्द्रियों के भोगों की वजह से चलायमान हो रहा है और बुद्धि के आसरे दौड़ रहा है। इन्द्रियाँ भोगों में दौड रही है। मन साक्षी होकर भोगों को ग्रहण करता है। मन बाल-बाल में (रोम-रोम में) व्यापा हुआ है। बुद्धि जिस कद्र पवित्र होती है उतनी ही मन और इन्द्रियों पवित्र काम करते हैं। जितनी बुद्धि खोटी होती है मन और इन्द्रियाँ उतने ही खोटे काम करते हैं। इन्सानी कालब (शरीर) में बुद्धि बलवान है। मजबूरी और मूखतारी को समझती है। दूसरी योनियों में महदूद है। नौ द्वार की वासना को छोड़े तो दसवां द्वार खुलता है। जब तक अमल और कर्म दुरुस्त न हों निजात नहीं हासिल हो सकती।

प्रेमी : महाराज जी ! मन सत् परायण कैसे होता है?

गुरुदेव : प्रेमी ! भय से मन सत् परायण होता है। इस वास्ते मौत का भय या गुरु का भय या ईश्वर का भय मनुष्य के वास्ते होना लाजमी है। ऐसे भय की दृढ़ता से भाव पैदा होता है। यानि अपनी जीवन उन्नति का विचार प्रकट होता है। और भाव से भक्ति और भक्ति से निर्मल प्रेम प्राप्त होता है। यह ही दृढ़ता मानसिक शान्ति के देने वाली है।

प्रेमी : महाराज जी ! मन को वश करने का साधन जरा खोलकर बतलाने की कृपा करें?

गुरुदेव : प्रेमी ! पहले गलत और सही हालात को समझो। जीवन के हालात को हर एक समझ रहा है, मगर सही नहीं समझ रहा है और सही न समझने के कारण गलत हालात को पकड़ रहा है। मन एक ऐसी चीज है कि जब तक गलत और सही का निर्णय न समझे, सही की तरफ नहीं जायेगा। मन को पकड़ने का तरीका ईश्वर परायण होना और नाम सिमरण है। इस तरीके को किसी महात्मा से प्राप्त करो और प्राप्त करके हृदय से धारण करो। सही निश्चय से इसको पकड़ो। उस तरीके को धारण करते-करते मन बस में हो जावेगा। मन को एक मिनट रोकने वाला पूर्ण अभ्यासी है, साधक है, ईश्वर को अनुभव कर लेता है। पाँच मिनट रोकने वाला पूर्ण सिद्ध है।

प्रेमी : महाराज जी। अन्तर्मुखी वृत्ति किसे कहते हैं?

गुरुदेव : प्रेमी। इन्द्रियों की चेष्टा से मन को असंग करना ही अन्तर्मुखी वृत्ति है। जब तक चेष्टा में खड़ा है अन्तर्मुखी वृत्ति नहीं हो सकती। साधना करने से मन इन्द्रियों से असंग होता है, तब वह अन्तर्मुख होता है। अन्तर सत् स्वरूप आत्मा प्रकाश कर रहा है। उसको अनुभव करने का साधन करें, तब मन इन्द्रियों की चेष्टा से असंग होकर अन्तर्मुखी होता है।

वैराग्य वाणी

रल मिल सन्तों आखया, भोगो नाम निज सार।
तरन तरावनहार है, जप जप लागें पार ।।
घड़ी घड़ी तन छीजता, ताँ सों करो विचार।
एक नाम चितार लो, जो जग जीवन सार ।।
आसा जीवन राख के भरमे राए और भूप।
जीवन में मरना मिले देखे काल सरूप ।।
साची संगत में मिलो प्रभ का करो विचार।
मौज पावें इस जन्म की, नाम लखें टकसार।।
मन का कुफल उघाड़ के पाप करो सब नाश।
रोम रोम में रम रहया, सो साहिब अबनाश ।।
सतगुर सेती प्रीत कर, जो खोले अन्तर पाट।
'मंगत' कहे विचार के, तब पावे सच वाट।।

शुद्ध आचरण सच्चा सुखदाता

वाणी

निर्मल प्रेम जब हर चरण चित्त आया, निश्चल भयो हरी दुर्जन माया।
नित नित प्रीति घरो प्रभु चरने, बिन हरी सिमरन नहीं पार्वे सुख निरणे।
एह मन झूठ वेख भरमाया, छिन छिन भरम में आवे जाया।
जब सत्संग सत मारग सूझा, गयो विकार हर प्रेम तत्त बूझा।
एक मनसा सत नाम विचारे, उठत बैठत एक सुरत निहारे।
नाम बिना धृग जीवन विचार, विख को भोग होवे नित छार।
एह संसार चक्र रहट की घड़िया, इक जावे खाली इक आवे भरया।
जन्मे मरे मर जन्म में आवे, यह लीला यह मन बरतावे ।
आवन जावन देख के हर जन भयो उदास।
खोजा साचे नाम को, मन की मिटी प्यास ।।
परम धाम मुकन्द अबनाशी, तिसको खोजे होवे निखासी।
इच्छया चक्र तब भरम विनासे, एक प्रीत रहयो हर चरण निवासे।
सो ही थांओं सो ही मूल पहचान, साचा ठाकुर जग जीवन जान।
अन्तर वसया बाहिर परगासे, सरब जीयाँ में करेविलासे।
तिसके परगास सब रचना देखे, तिसे विसार मत पड़ो भुलेखे।
हाड मांस का देवल साजा, तिसमें बसे आप गरीब निवाजा।
जो जन तिसकी कीरत गावे, मुक्त सरूप अभय पद पावे।
जिस सुख को बांछे मन मूढ़ा, सो सुख परसे होवे चरनी घूड़ा।
बिमल ज्ञान सारंग बानी, गुरमुख खोजे सत तत्त निर्वानी।
नित नित मन को अंकुश मारे, साचे मारग में प्रीत विचारे।
मरन काल से प्रथमें मर जीवे, अमर कथा सो गुरमुख पीवे।
अमरत खाये मन होए निहाल, सब जगत में देखा एको रछपाल।
गई पलीती करी हक पहचानी, एक नूर की विरध लखानी।
सत को खोजे सत रूप समाए, आनन्द सरूप यह मन हो जाए।
जॉ से बिछड़ा ताँही मेल मिलाया, पूरण आशा सब भरम मिटाया।
निमख निमख में नाम रस पीवे, एक प्रीत में जीवन जीवे।
आशा दीरघ रोग है जो मन को नित भरमाए।
'मंगत' ज्ञान परतीत से मन निश्चल रहयो समाए।

प्रवचन

शरीर रूपी ससार को धारण करके हरेक जीव शान्ति की तलाश कर रहा है। सांसारिक भोग पदार्थों में जीव उसकी तलाश कर रहा है। पर यह इसे प्राप्त नहीं हो रही अपितु यह उल्टा लाचार हो रहा है। ऐसे ही इसे तलाश करते-करते शरीर खत्म हो जाता है और जीव को दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है और कई जन्म, कई योनियों में जाना पड़ता है। यह मानव शरीर दुर्लभ है, इसी में ही यह इसे प्राप्त कर सकता है।

सत्पुरुषों ने फरमाया है कि हे जीव, तृप्ति या शान्ति जहाँ तू तलाश कर रहा है तुझे यह वहाँ नहीं मिल सकती। यह तो तेरे पास है और तू इसको इस शरीर में ही तलाश कर। इसको तलाश करने के उन्होंने साधन भी बताये हैं। जब कोई उन साधनों को धारण करता है और उसकी बुद्धि बलवान होती है तो वह देखता है कि नाना प्रकार के शरीर विचर रहे हैं और किसी वस्तु की तलाश कर रहे हैं। वस्तु को तलाश करते-करते शरीरों के अन्त हो रहे हैं। यह भी देखा कि इस शरीर रूपी फुलवाड़ी में भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर चक्कर काट रहे हैं। शरीर पाँच तत्वों के ही हैं लेकिन विचारधारा हर शरीर की भिन्न है। इसलिए हर शरीर अपने अलग ही वातावरण में घूम रहा है और दूसरे शरीरों के परिणाम से न तो शिक्षा ले रहा है और न लेने के लिए तैयार है। यह ही असली दुर्मति है। वास्तव में शरीर रूपी रथ को बुद्धि रूपी सारथी चला रही है। शरीर चाहे डाकू का है, चाहे देवता, पाँच तत्वों का ही है। अन्तर केवल बुद्धि का है जो शरीर को चला रही है। हर एक बुद्धि में अहंकार खड़ा है और शरीर सुखों की पूर्ति के लिए यत्न-प्रयत्न में लगा है। एक किस्म के वे लोग हैं जिनकी बुद्धि शरीर के सुखों के लिए नित्य छल-कपट कर रही है- अपने से भी और दूसरों से भी। वही राक्षस बुद्धि है। इसे ही नास्तिक बुद्धि कहते हैं। ऐसी बुद्धि दूसरों के हक छीनकर खुश होती है। दूसरों के सुखों का हरण कर खुशी मनाती है और जायज-नाजायज काम करना अपना हक समझती है। इसलिए उसका दण्ड राजदण्ड है। दूसरे प्रकार के वे लोग हैं जो अपने ख्याली मन घडन्त देवते बना-बना कर उनकी पूजा करते हैं, ग्रहों की पूजा, जन्तर-मन्तर आदि करते हैं। वे गंगा स्नान को धर्म समझते हैं, लेकिन ऐसी पूजा या स्नान से पाप तो घटता नहीं

बल्कि स्वार्थ एवं अन्धकार और बढ़ जाता है, जिससे जैसा प्यासा और निराश आया था वैसा ही निराश और प्यासा चला जाता है। तीसरी प्रकार की वह बुद्धि है जिसे शरीर के सुख अच्छे नहीं लगते, बल्कि यह समझती है कि शरीर के सुख नित्य रहने वाले नहीं बल्कि बदलने वाले हैं, इसलिए छल-कपट को छोड़कर सत्यवादी बनने का यत्न करती है। इस मानव चोले में उसकी भावना उत्थान की ओर होती है और इसलिए वह प्रभु को याद करती है। ऐसी बुद्धि वालों को परमार्थ के बिगड़ जाने का भय लगा रहता है। वे कभी स्वार्थ पूर्ति की ओर कदम बढ़ाते हैं और कभी सन्तों के डेरे की तरफ जाते हैं, तो कभी सिनेमा घर की तरफ। उसके लिये परमेश्वर का मसला ही अलग है।

चौथी प्रकार के वे लोग हैं जिनकी बुद्धि में शरीर के सुखों का लालच तो लगा हुआ है और अपने सुखों की खातिर यत्न भी कर रहे होते हैं, लेकिन दूसरों को न तो हानि पहुंचाते हैं और न उनको दुःख देते है, बल्कि सुखों की खातिर सन्तों के पास जाते हैं और दान-पुण्य भी करते हैं। इनकी बुद्धि पल्टी जा सकती है। जिनकी बुद्धि यह भांप रही है कि शरीर कुछ नहीं, सुख क्षणिक हैं और जीवन यात्रा को समझ रही है, उसको जिज्ञासु बुद्धि कहते हैं। उसी ने जीवन कर्त्तव्य को समझा है। उसकी बुद्धि निर्मल है। वे ही अपने सुख का त्याग दूसरों के लिए करते हैं। अन्तिम श्रेणी में वे लोग आते हैं जिनकी बुद्धि दर्पण की भाँति स्वच्छ है। उनकी बुद्धि दुनियाँ के सुखों को छोडकर परमेश्वर परायण होती है। उस समय उनके अन्दर सत् अनुराग पैदा होता है तथा ईश्वर-प्राप्ति हेतु सही श्रद्धा पैदा होती है। फिर वे कहते हैं -

मृतक को सरजीवित किया, तुम सा दाता न कोय।
पल पल जस तेरा गाऊं, तब जीवन सफला होय ।।
जन्म से पहले तू संग साथी, अन्त संग तू ही जासी।
इस जीवन की तू रक्षा कीनी, नित तोहे संग बिलासी ।।
तुम ही संगी तुम ही साथी, तुम पल पल होत सहाई।
'मंगत' परम प्रीत से, प्रभु तेरी कीरत गाई ।।

जब जीव को यह निश्चय हो जाए कि ईश्वर के बिना उसका न कोई हितेषी है और न मित्र तो तब दुर्मति का पर्दा हट जाता है। ऐसा भगत जब ईश्वर की भक्ति करता है तब उसके मुखारबिन्द से ऐसे शब्द फूटने लगते हैं-

ज्यों ज्यों प्रभ का नाम चित बासे, तृष्णा रोग विनासे।
गरभ गुबार का बन्धन टूटे, धारे सहज उपासे ।।
तृष्णा नासी मन तृप्त समाया, सकल दोष होए दूरे।
'मंगत' परम प्रीत से, पाये दरस हजूरे ।।

जब ईश्वर का रंग लगा तो ठण्डक प्राप्त हो गई और ससार अदृश्य हो गया। सब महापुरुषों ने ऐसा ही समझाया है।

ऊंच शिखर देख के दाने नित प्यासे रहाये।
नीवीं थाई नीर बसे, नित निर्मल शांत समाये ।।
तज अभिमान गरीबी पाओ, करो जीवन सुखकारी।
'मंगत' विच गरीबी पूजिये, पावे वड जागीरी ।।

इसलिए अभिमान की गर्दन तोड़ो। नम्रता धारण करो। फिर धीरे-धीरे तेरे अन्दर परम शान्ति का बोध हो जावेगा, अभिमान तुझे ईश्वर से विमुख किए हुए है। कबीर साहेब फरमाते हैं-

देवन को अन्न दान है, लेवन को सतनाम ।
तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान ।।

सत्संग द्वारा इस शरीर को सुगन्धित करो ताकि बुरे विचारों की दुर्गन्ध दूर होवे।

दीन गंवाये दुनी संग, दुनी ना चाली साथ।
पैर कुल्हाड़ा मारिया, गाफल अपने हाथ ।।
अपना सुख नित ही वरताओ, पर दुःख सीस धराओ।
साची आज्ञा प्रभ की जानो, ते लाभ जीवन का पाओ।।

सदा परमेश्वर विश्वासी होकर शुद्ध आचरण को धारण करो और अपने आपको निर्मल बनाओ।

सोना मनों विसार के, मारग धर्म में जाग।
साहिब दा फरमान सुन, लख लेखा वडभाग।।
सोना मनों विसार के, जागन की कर चौंप।
एह दम हीरा लाल है, तू गिन गिन हर को सौंप ।।

कर्म के चक्कर में फसा हुआ ही तो तू शरीर लेकर आया है। कर्म अच्छे न हुए तो तू राजा के घर पैदा होकर भी रोटी से वंचित रहेगा और कर्म ही तेरे वैरी बन जायेंगे। दुःख जब आता है अपनी जगह बना लेता है। इसलिये इस शरीर, जो "जीवित भी माटी, मोया भी माटी" के समान है, के सुखों से पहले ही तू किनारा कर ले. एक सच्चे उसूल पर डट जा और शुभ कर्मों को करता जा। फिर तू यह परवाह न कर कि दुनियों क्या कहती है। शुद्ध आचरण वाला जीवन व्यतीत करता हुआ शाश्वत सुख को प्राप्त करने का यत्न कर। ज्यों-ज्यों इस मार्ग पर चलने वाला होगा त्यों-त्यों तेरे जन्म-जन्म के बन्धन टूट जायेंगे। फकीरों की यह ही प्रार्थना है, यह सदा आशीर्वाद बन जायगी और इनके शरीर अन्त होने पर भी तेरी रहबरी करेगी।

वैराग्य वाणी

अपरम सुख हरजन ने पाया, मन खेद समी भये दूरे।
नित आनन्द में मगन समाया, घर पायो शब्द हजूरे।।
प्रेम की साखी हरजन जानी, नित जीवित सीस उतारी।
अखण्ड प्रीत पाई प्रम चरणी, सब दुर्मत मेद निवारी।।
प्रेम में जीना प्रेम में मरना, मन रसना नाम की खाई ।
एको देव की पूजा सूझी, जो सरब ठौर रमनाई।।
नित ही चरण प्रीती मागूँ, और आस ना कोई।
अमृत नाम तेरा प्रभ निर्मल, नित नित हिये परोई।।
साची भीख मांगू प्रभ दाते, नित तन मन सेवा धारी।
'मंगत' नाम रते जो गुरमुख, तिन चरण जाऊँ बलिहारी।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी, जब ईश्वर की शक्ति के बगैर एक पत्ता भी नहीं हिल सकता तो फिर अच्छे-बुरे कर्मों की जिम्मेदारी इन्सान पर क्यों? गुरुदेव : प्रेमी, यह सुनी-सुनाई बात है, निश्चय नहीं है। क्योंकि जब ईश्वर को कर्त्ता मान लिया तो अपना आप नहीं रह सकता। जब अपने कर्त्तापन को त्याग कर हर काम प्रभु आज्ञा में समझकर किया जावेगा तब ही कर्म की कैद से मुखलसी (छुट्टी) हो सकती है। जब तक खुद को

मानता है खुद ही भोगना पड़ेगा।

प्रेमी : महाराज जी। क्या सूरज, नदियों जो निष्काम सेवा कर रहे हैं, जैसा कि मिसाल दी जाती है तो क्या इनकी भी मोक्ष हो जाती है?

गुरुदेव : प्रेमी, शरीर और प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड का स्वरूप एक ही है। जैसे शरीर में पाँच तत्व काम कर रहे हैं वैसे ही बाहर यह चक्कर चल रहा है। निश्चय शक्ति से मनन शक्ति प्रगट होती है और मनन शक्ति से पाँच तत्व प्रगट होते हैं। जब तक निश्चय शक्ति निर्वाण को प्राप्त न होवे तब तक पाँच तत्व प्राकृतिक रूप से प्रगट और लय होते रहते हैं। ऐसे ही सब खेल चल रहा है। निश्चय शक्ति जब सत् स्वरूप में निश्चल होती है तब संकल्प रूप मन और पाँच तत्वों के कर्म रूप लय हो जाते हैं। पाँच तत्व स्वयं निश्चय शक्ति का संकल्प हैं। इस वास्ते तत्वों की मुक्ति निश्चय शक्ति की लीनताई से ही होती हैं जैसे एक शरीर की गति है वैसे ही तमाम ब्रह्माण्ड की गति है। चूंकि संसार की गति अद्भुत है इस वारते केवल सत् स्वरूप का बोध प्राप्त करने का यत्न करें, जिससे अपना ब्रह्माण्ड कल्याण को प्राप्त होवे। एक आत्मा के बगैर तमाम शक्तियाँ उत्पत्ति और प्रलय के चक्कर में घूम रही हैं। आत्मा के साक्षात्कार होने से तमाम शक्तियां लय हो जाती हैं। यह ही निर्णय तमाम जीवों और तमाम शक्तियों का वास्तविक स्वरूप है। ईश्वर सुमति देवे।

प्रेमी : महाराज जी, जिन्दगी कैसे चलानी चाहिये ?

गुरुदेव : प्रेमी जी, फर्ज वाली जिन्दगी बनाओ, गर्ज (स्वार्थ) वाली न बनाओ। प्रेमी : महाराज जी, फर्ज वाली जिन्दगी किसे कहते हैं?

गुरुदेव : प्रेमी जी, शरीर और शरीर के सुखों को प्राप्त करके सुख भोगने की जो लालसा लेकर जिन्दगी बिताता है वह गर्ज वाली जिन्दगी जानो। इसके उलट फर्ज वाली जिन्दगी चलाने वाला इन्सान सब कुछ करके दूसरे जीवों के दुःख में अपने सुख अर्पण करता है या यूं कहो कि वह इन्सान जो फर्ज वाली जिन्दगी बिताता है वह अपने कार्य प्रभु आज्ञा में सौंपता हुआ निमित्त मात्र अपने जीवन की क्रिया करता है और हर वक्त प्रभु विखे अपने आपको समर्पण करता चला जाता है।

कर्तापन अभिमान त्याग से ही जीवन में शान्ति

अमर वाणी

नित अनमत में मूढ़ अनजाना, सरनागत तुप पार भगवाना।
कर किरपा मोहे करो उद्धार, करूं दण्डवत मैं बारम्बार ।
सरब कला तू ही समरथ्थ, राख लें प्रभ दे के हथ्थ।
और आस न कोई भरवासा, तुध चरणों का नित हूं दासा।
बारम्बार प्रभ करूँ पुकार, होवो दयाल सत सरजनहार।
मूढ़मति अज्ञान को नासो, सत तत ज्ञान अन्तर परगासो ।
करम बखेड़ मन मिटे अन्धकार, घट अन्तर होते ज्योति उजयार।
करूं बन्दना तुच चरन जगदीश, नित हरयो मेरे मरम सन्देश।
निर्मल कीरत पाऊँ पद विश्वास, अति कलेश दुर्मत होए नास।
जनम मरण का संकट अत जाये, अविगत रूप तेरा मेल मिलाए।
अनंक संशे में नित हूं घेरा, दीन दयाल काटो भव फेरा।
अजर अमर अवनाशी तुध धाम, करुणाकर दीजो बिसराम।
तेरी ओट प्रभ तेरा आधार, पूरन पुरख तू सत करतार।
बखशनहार तू पार मुरारी, सरब जीवों पर किरपा धारी।
अचरज़ महिमा कर तू परगासा, जल थल अन्दर करें निवासा।
काल करम न तोहे व्याप, अपनी गत मित आपे जाप ।
आद अन्त तू ही सत एक, नित ही राखाँ तेरे चरनी टेक।
अवगत लीला धारी संसार, सरब के अन्तर करें पसार।
आपे खेल आपे नित खेलें, अपना रूप आपे नित मेलें।
सत सरूप तेरा सब रंग, नित लाख चौरासी गावें परसंग।
मानुष देव आदि सब ध्यायें, अवगत प्रेम के नित गुण गायें।
त्राहेमान तेरी सिफत आपार, हो दयाल मन दियो आधार।
सकल बिपत से होए खुलास, निर्मल ध्यान से करूँ अरदास ।
नित बन्दूँ पद कॅवल अपारी, नमो नमो नित हूं निमस्कारी।
अपरम अपार तू ही पुरखोत्तम, करूँ बन्दना बारम्बार।
'मंगत' भयो सरनागति, प्रभ दीजो चरण आधार।

प्रवचन

यह जीव शरीर रूपी संसार को धारण करके नाना प्रकार के सुख, दुःख प्राप्त करता हुआ सारे ब्रह्माण्ड में विचर रहा है। लेकिन ससार का रूप यह है कि जैसा निराश और प्यासा आया था वैसा ही निराश और प्यासा यहाँ से वापिस जाता है। जितनी देर यह जीव इस ससार में विचरता है, यह समझता है कि दूसरे मेरे से ज्यादा खुशहाल हैं। यह ही पागलपन-मूर्खताई है। यह निश्चय गलत है। सत्संग द्वारा ही पता लगता है कि असन्तोष की हालत सबके अन्दर मौजूद है। इस गैर तसल्ली वाली हालत को दूर करने के लिए नित्य नवीन प्रयोग करता हुआ और ख्याली मन घड़न्त पुलाव पकाता हुआ चला जाता है। समझदार वही है जिसने पहले इस बात को जान लिया है कि जो चीज प्राप्त है वह असन्तोषजनक है और जो चीज मन से निकल रही है वह भी नाशवान है। वास्तव में जो जहाँ खड़ा है हिल रहा है और यह रोग प्रति क्षण बढ़ता जा रहा है। यह रोग तृष्णा है। ज्यों-ज्यों यह जीव नये-नये प्रयोग करता है तृष्णा की अग्नि और प्रचण्ड होती जाती है। मनुष्य जन्म की उच्चता इसलिए है कि इसमें यह सही खोज करके जीवन का सही निर्णय कर सकता है।

जो देखन में आवे साजन, सो ही तृखत समाए।
राजे राने गुनी सयाने, नित ही ताप तपाए।।
आसा लेके जग आये, चले निरासे अन्त ।
अस्वर्ज रचना यह जगत की, करे जीव तृखन्त ।।

पहले भी तू नहीं था, आखिर में भी तू नहीं रहेगा, बीच में तू है इसलिए इस यात्रा को तू समाप्त कर। सत्पुरुषों ने मनुष्य को बुद्धि के अनुसार इसे चार भागों में बाँटा है।

(1) बेहोश बुद्धि- जिसे अपना कुछ पता नहीं।]
(2) मदहोश बुद्धि- जो जानकर भी गाफिल (उपेक्षा करता) है।
(3) बाहोश बुद्धि-जो समझता है और उसके अनुसार चलने की कोशिश करता है।
(4) कुल होश बुद्धि-जो अपने आपको समझ लेता है और अपनी यात्रा शीघ्र समाप्त करके दूसरों को यात्रा तय करने में सहायता देता है। पहली हालत में शरीर धारण करके अनेक प्रकार की सम्पत्ति जुटाता है, लेकिन

माटी कहे कुम्हार से, तू क्यों रोंदे मोहे।
इक दिन ऐसा आयगा, मैं रौदूंगी तोहे ।।
जो जन्मे सो निश्चय विनासे, यह काल चक्कर गरमाए।
मुरख गफलत धार के, नित्त ही नित्त दुःख पाए।।
जो वस्तु देखन में आवे, सो ही नाश सरूप ।
जिसके संग बहु सुख बाँछे, सो ही मन्द मन्द रूप ।।
जाग गुनी उठ जाग तू, जीवन कर विचार।
अन्तर्यामी बोध कर, जो घट-घट करे पसार ।।

हे मानव । पिंजरे (शरीर) की पूजा में मत लीन हो जा। पिंजरे के बनाने वाले की सोच कर। कुसत्वादी न बन, सत्यवादी और सत् परायण होकर सत् की खोज कर। महापुरुष इस पिंजरे और संसार की सही तस्वीर को हर वक्त याद रखते हैं। कबीर साहेब ने कहा है –

पुंजे उपजे पुंज समाई, नैना देखत यह जग जाई।
**काया जले ज्यों काठ का तूला, केस जले ज्यों घास का पूला। **
चले जुवारी दोय हथ झाड़।

एक दिन यह पिंजरा भी कष्ट देने वाला हो जाएगा और फिर कुछ बन न सकेगा। इस पिंजरे में से क्या निकलेगा। सारे सुख घड़ी में दुःख रूप में बदल जायेंगे। इसलिये समझ ले कि शरीर के सुखों में सब सुख नहीं है।

अरब खरव धन होये प्रापत, तो भी तृखावन्त ।
इस मन को नहीं धीरज प्रापत, बिन सिमरे भगवन्त ।।
तन के सुखिये बहु मिले, मन का मिला ना कोय।
मन का सुखिया जो मिले, तो पार निस्तारा होय ।।

मन की खोज जरूरी है। लेकिन मादावाद, प्रकृतिवाद, भोगवाद से ऊँचा होकर ही बुद्धि सही तरह सोच सकती है। (1) मादावादी और भोगवादी सब शरीर के पुजारी हैं। (2) ईश्वर पुजारी बाहोश बुद्धि वाले लोग हैं।

इस तन को सुख अधिक दिये, पर मन ना पाये परतीत।
नित नित त्रिखा दूनी होवे, रहे आठ पहर भयभीत।।
मुट्ठी बाँधे आये जगत में, हाथ पसारे जाते हैं।
राजे राणे गुनी सयाने, अन्त समय पछताते हैं।।

जब शरीर के सुखों को एकत्र करते-करते जीव थक गया तो जीवन का तजुर्बा गलत सिद्ध हुआ और पता चला कि शरीर के सुख, सुख नहीं। जब ऐसा पता लगा तब जाकर सत् की खोज में लगा और जब सत् को अनुभव

किया तो शरीर नाश रूप प्रतीत हुआ।

चित्त रूप जग देखा सारा, मनुओं साँग बनाई।

बिन सिमरे मन धीरज ना आवे, रहे त्रिखा अधिकाई।।

जब शारीरिक सुखों का निश्चय टूटा तब ईश्वर की श्रद्धा पैदा हुई अर्थात् ज्यों-ज्यों अभिमान नष्ट होता जाता है इसे ठण्डक मिलने लग जाती है। जब शरीर का निश्चय टूटा इसकी काया पलटी। इसके मन में पर-सेवा, पर-हित पैदा होने लगे और वह अपने सुख दूसरों को अर्पण करने लगा। अब इसे सत् की पहचान शुरू हुई और अब इस शरीर के अन्दर इसका मन ठण्डक अनुभव करने लगा। न जीने की इच्छा रही, न मरने का भय रहा। अब पूर्ण परमेश्वर को समझकर पूर्ण हो गया यानी पैदा तो प्यासा हुआ था अब तृप्ति आ गई। इसलिए आप गुणी पुरुषों की सेवा में निवेदन है कि मनुष्य जन्म पाकर बुद्धि ऐसी बनाये कि अपने सुखों की खातिर दूसरों के सुख हरण करने वाले न बनें, बल्कि अपनी सही रक्षा करें ताकि इन्सान कहला सकें। अगर आपको सुखों की चाहना न रहे और दूसरों को सुख देने वाले बन जायेंगे तो सच्चे ईश्वरवादी हो जायेंगे। जो अपने सुखों की खातिर दूसरों के सुख का हरण करने वाला होता है वह ही राक्षस कहलाता है। जो दरम्यानी स्थिति में भी बुद्धि को कायम रखते हैं उनके अन्दर शान्ति आने लग जाती है। अच्छा काम करते-करते शायद तुम स्वयं भी अच्छे हो जाओगे। सत् पुरुषों के वचनों पर चलकर शायद तेरा जीवन भी सही हो जाए, नहीं तो मन रोगी और तन सोगी होगा।

दूसरा ठण्डक प्राप्ति का तरीका ईश्वर को कर्त्ता-हर्ता मानना और अपने आपको अकर्ता मानना है। जिस वक्त बुद्धि अकर्त्ता भावना पर खड़ी होगी उस वक्त अनुभव होगा कि ईश्वर शुद्ध है। जब तक कर्म द्वन्द्व तुम्हारे अन्दर है उस वक्त तक अकर्त्ता नहीं बन सकता। जितने सत्पुरुष हुए हैं उन्होंने पहले भक्ति को अपनाया और कर्तापन अन्धकार से निवृत्ति पाई।

विद्या द्वारा जो चीज हासिल होती है उसको निध्यासन द्वारा कमाओ तब जाकर अनुभवता होगी। असत् चीज का मोह त्यागने से सत् का निश्चय पक्का होगा। अपने कर्त्तापन को तोड़ने की खातिर ईश्वर को कर्ता मानो। सन्यास का अर्थ है कर्म द्वन्द्व के पंजे से निकल जाना, यानि जिस अवस्था को पहचानकर शरीर के भेदों से रिहाई मिले और बुद्धि स्वतन्त्र हो। जब

तक अन्तःकर्ण विखे अनुभव न हो आप जो कुछ कहेंगे शक में कहेंगे। जब तक साक्षात्कार हालत नहीं होती तब तक बुद्धि कर्म अभिमान में चलायमान रहती है। जीव मद में गिरफ्तार होकर दुःख-सुख के चक्कर में घूमता रहता है। कोई ही विवेकी पुरुष इससे छूटने का यत्न करता है। पहला मद इस जीव को शरीर का है, दूसरा मद बुद्धि का। ये विचार आपकी सेवा में प्रमु आज्ञा से रखे गये हैं। ईश्वर आपको सुमति देवें ताकि आप गुरमुख सज्जन इन विचारों को अपनाकर जीवन में असली ठण्डक हासिल कर सकें और अपने सही स्थान को प्राप्त कर सकें।

वैराग्य वाणी

साची शरधा पाए प्रभ सेती, जीवन भयो अनुरागी।
सुख दुःख तिसका हुकुम पछाना, सत मारग सुरता लागी।।
सरब शकत का सो प्रकाशक, सरब जीयाँ आधारा।
पल पल बन्दूँ पार स्वामी, त्याग देही अहंकारा ।।
दीन गरीबी रसना खाई, प्रभ नाम पायो सुख पूर।
जनम मरण का बन्धन टूटा, घट परगट मये हजूर।।
साची भगती मन निर्मल कीना, मिल साध संगत गत पाई।
'मंगत' अन्देसा चित का नास्यो, प्रभु भेटे घर में आई।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी, मन को वश में करने का क्या उपाय है?

गुरुदेव : पहले जीवन के सही और गलत हालात को समझो। जीवन के हालात को हर एक समझता है, मगर सही नहीं समझ रहा और सही न समझने के कारण गलत हालात को पकड़ रहा है। मन ऐसी चीज है कि जब तक गलत और सही का निर्णय न समझे यह सही की तरफ नहीं जायेगा। मन को पकड़ने का तरीका ईश्वर के परायण होना है। इस तरीके को किसी महात्मा से प्राप्त करके हृदय में धारण करो, सही निश्चय से इसे पकड़ो। उसी तरीके को धारण करते करते मन वश में हो जायेगा।

प्रेमी : महाराज जी ! जिस शहर में हमने बहुत सा समाँ जिन्दगी का सुख से गुजारा है, क्या शहर पर मुसीबत आने पर भाग जाना इखलाकी जुर्म नहीं? उम्र के लिहाज से या सेहत की वजह से अगरचे इन्सान शहर में

रहकर उसकी हिफाजत में पूरा हिस्सा नहीं ले सकता, तो भी शहर में हाजिर रहकर लोगों को ढांढस देना क्या सेवा नहीं?

गुरुदेव : प्रेमी जी, मनुष्य का फर्ज है कि जिस जगह सब जीवन आराम से गुजारा होवे, उसकी यथाशक्ति रक्षा करे ओर जो-जो जीव हमसाया (पड़ौसी) के रूप में होवें, उनकी हर तरीके से सेवा करे। तब ही जीवन स्थिति सुख रूप होती है। अगर हर तरफ से मज़बूर हो जावे, यानि राजा तक भी विरोध करने लगे तो अपने सत् आचरण की रक्षा के वास्ते आश्रम छोड़ना कोई दोष नहीं।

प्रेमी : महाराज जी ! क्या शरीर के जीवित रहने की कोई खास उम्र होती है या नहीं।

गुरुदेव : प्रेमी जी, शरीर की उम्र कोई खास लिखी नहीं होती। कर्म के मुताबिक शरीर बनता है और कर्म के मुताबिक ही बिगड़ता है। कोई खास मियाद बिगडने की नहीं है और वास्तव में शरीर ही कर्म रूप है। इसको क्षणभंगुर कहा गया है, यानि एक पलक में नाश होने वाला। इस वास्ते जो भी समय जीवन यात्रा का गुजरे पवित्र भाव से गुजारना चाहिये। यह ही लाम इस नाशवान शरीर का है।

प्रेमी : महाराज जी, कहते हैं कि स्वप्न में मरे हुए के दर्शन करना हानिकारक है, इसका क्या अर्थ है? क्या ऐसा होना दुरुस्त है ?

गुरुदेव : प्रेमी, यह सब अपने मन की कल्पना है। मरे हुए का शरीर तो भस्म हो गया है और जीव अपनी वासना अनुसार खबर नहीं किस कालब (शरीर) में विचर रहा है। इस जगह जो स्वप्न में दर्शन हुए हैं यह महज अपने मन का संकल्प है, अच्छी तरह से विचार कर लेवें। ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

प्रेमी : महाराज जी ! ईश्वर का पूरा विश्वास आपका पहला उपदेश है। क्या अपनी जान बचाने के खातिर एक जगह से दूसरी जगह भागते फिरना इस ईश्वरी विश्वास में कमी पैदा नहीं करता, जब यह मालूम है कि मौत टल नहीं सकती?

गुरुदेव : प्रेमी जी ! ईश्वर का विश्वास दृढ रखने वाला हर वक्त निर्भय रहता है और न ही जान बचाने की उसको लालसा होती है। सब होना या न होना वह प्रभु आज्ञा में देखता है और धीरज में रहता है।

प्रेमी : महाराज जी, सत्संग का क्या स्वरूप है ?

गुरुदेव : प्रेमी, सत्संग का स्वरूप है कि जहाँ इकटठे होकर असल और नकल हालात का निर्णय होवे। सत् और असत् तथा आत्म और अनात्म का पूरा-पूरा निर्णय होवे, उसे सत्संग ही जानें।

प्रेमी : महाराज जी, पापों में महापाप क्या है ?

गुरुदेव : प्रेमी, किसी जीव को दुःख देना महापाप है। प्रेमी : महाराज जी, पुण्यों में महापुण्य क्या है ?

गुरुदेव : प्रेमी, किसी को सुख देना महापुण्य है।

प्रेमी : महाराज जी, गृहस्थ अच्छा है या फकीरी ?

गुरुदेव : प्रेमी, दोनों में रोना ही है, इबादत इलाही (ईश्वर भक्ति) में ही आनन्द है।

प्रेमी : महाराज जी, जिन्दगी और मौत किस शक्ति के हाथ में है ?

गुरुदेव : प्रेमी, यह दोनों मन के हाथ में हैं।

प्रेमी : महाराज जी, क्या गुरु के शरीर की पूजा करने से उन्नति हो सकती है?

गुरुदेव : प्रेमी जी, गुरु के शरीर की पूजा से कोई फायदा नहीं। गुरु के उपदेश पर अमल करने और उनके वचनों को मानने से उन्नति हो सकती है।

प्रेमी : महाराज जी, दुःख का कारण क्या है ?

गुरुदेव : प्रेमी, शरीर और शरीर से सम्बन्धित पदार्थों में ममता ही दुःख का मूल कारण है।

प्रेमी : महाराज जी, मन बड़ा विकराल है, इससे किस प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है ?

गुरुदेव : प्रेमी, मन ही इसका अपना मित्र है और मन ही शत्रु है। चाहे इसको विषयों की तरफ लगा दो चाहे करतार की तरफ। यह एक समय में एक ही काम करेगा। दोनों हालतों में मन, इन्द्रियाँ बुद्धि ये ही रहती हैं, सिर्फ इनका स्वभाव बदल जाता है। स्वभाव बदलने के वास्ते वैराग्य और अभ्यास हैं। और कोई भी साधन ऐसा नहीं है जिसके द्वारा यह ठिकाने पर पहुंच सके। इस तरह विचार करते रहा करो किसी ठिकाने पर पहुंचना है तो।

मन के दोष सब दूर भये।
जब नाम प्रभु का गाये ।।

वाणी

प्रभ का नाम जिस गुनी ध्यायो, तीन लोक का जस तिस पायो।
प्रभ के नाम की अतुल वडियाई, शास्त्र सिमरत बेद ध्याई।
सिद्ध मुनी नित करें पुकारा, प्रभ का नाम जग जीवन सारा।
दुर्लभ भाग जो नाम ध्याई, तिसके चरन तों नित बल जाई।
सकल दोष से निर्मल हुआ, प्रभ के नाम में जो जीवित मुआ।
अपनी आप करी सम्भाल, सिमर के नाम प्रभ दीनदयाल ।
ऐसा निर्मल नाम चितारो, भव सिन्धु से उतरे पारो।
गुर सिख्या यह सीख लखाओ, नाम प्रभु का अन्तर घ्याओ।
तन मन का अभिमान त्यागो, गुर किरपा से मारग लागो।
सत मारग में होये परबीना, नाम अखण्ड अन्तर्गत चीन्हा।
भाव भगत से करी अरदास, परगट भयो घर पुरख अबनास।
इच्छया नास धीरज को पाई, प्रभ के नाम की लखी प्रभताई।
जनम जनम की तपन भई दूर, सिमर स्वामी आलख हजूर।
भव बन्धन सब फँदा काटा, अन्तर्गत में भयो रंगराता।
द्वन्द्व त्याग भया निर्दोष, निर्मल नाम पाया तत्त मोख ।
साजन सिमर स्वामी अपना, भरम ना भूली देख जग सपना।
रचना राचनहारा जोई, तिसकी शोभा मन लियो परोई।
करे उद्धार प्रभ पारगरामी, रख्या कीजे नित अन्तर्यामी।
हो सरनाई पूरण प्रभ चरना, सकल स्वामी दोष सब हरना।
मन के दोष सब दूर भये, प्रभ नाम का गायो गीत।
'मंगत' अन्तर्मुख हो परसया अलख शब्द पुनीत ।।

प्रवचन

जीव शरीर रूपी संसार को धारण करके शारीरिक सुखों की पूर्ति के लिए यत्न-प्रयत्न करता रहता है। ज्यों-ज्यों वह यत्न करता है त्यों-त्यों उसका शरीर नाश की तरफ बढ़ता चला जाता है। आखिर शरीर और उसके सुख दोनों ही गायब हो जाते हैं। इसलिए देखना यह है कि जिस सुख की चाहना जीव अन्दर से करता है उसका वास्तविक स्वरूप क्या है और दुःख जो इसे प्राप्त हो रहा है, वह क्या है? आम आदमी अपने अन्दर दुःख का ख्याल न करके दूसरों के सुखों को देखते रहते हैं, जिससे उनके अन्दर सुखों की चाहना चौबीस घंटे बढ़ती जाती है और अधीरता उसे विचलित करती रहती है।

तृष्णा तुल नहीं कष्ट है मीता, जो पलक ना धीरज देई।
राजे राणे गुनी स्याने, नित संकट को लेई ।।

तृष्णा को मिटाने के लिए वे बड़े-बड़े आडम्बर रचते हैं। धन-दौलत, माल, तृष्णा तुल नहीं कष्ट है मीता, जो पलक ना धीरज देई। राजे राणे गुनी स्याने, नित संकट को लेई ।। तृष्णा को मिटाने के लिए वे बड़े-बड़े आडम्बर रचते हैं। धन-दौलत, माल, मुलक और परिवार में बढ़ोतरी करते हैं। मगर जीव फिर भी आठ पहर जलता ही रहता है। छोटे लोगों की हालत को छोडो, उनकी हालत तो ऐसी ही है। बड़े-बड़े इन्द्र राज पाने वाले भी तपते रहते हैं। यह भयंकर रोग ऐसा लगा है कि कायर भी पैसा चाह रहा है और सूरा भी। क्या मूर्ख क्या बुद्धिमान, क्या धनी क्या दरिद्री सब प्यासे और निरासे ही नजर आयेंगे। इस दौड़-धूप में पिंजरे (शरीर) खत्म हो रहे हैं। गुणी पुरुषों ने काल चक्कर के फेर को देखा तो उन्हें इस बीमारी का पता लगा। उन्होंने गहरी खोज की तो देखा कि शारीरिक सुखों की बहुतायत या ऐश्वर्य इस रोग को काट नहीं सकते। यह रोग ऐसा लगा है जैसे विष वासक नाग अपने अन्दर जल रहा है। यही हाल हर एक जीव का है। क्योंकि तृष्णा की आग सबके अन्दर उठ रही है, वह हर एक जीव को जला रही है। यह रोग दृश्यमान संसार की नाना प्रकार की चीजों को घुन की तरह खा रहा है। इस बीमारी के समझ आने पर मनुष्य के अन्दर सोच शुरू हुई। फिर उसने सोचा कि जिस शक्ति के आधार पर यह ब्रह्माण्ड खड़ा है उस सत्ता की खोज कर। फिर उसने सोचा कि वह कौन सा तत्व है जिसको ईश्वर कहते हैं, जिसके अन्दर ख्वाहिश नहीं है और जिसको परिपूर्ण कहते हैं। इन भावों को धारण करके ज्यों-ज्यों जीव ने शरीर की चेष्टा से अपने आपको ऊपर उठाने का यत्न किया, त्यों-त्यों बुद्धि उस तत्व को अनुभव करने लगी और उसे अपने

अन्दरूनी रोग का पता लगने लगा। सन्त कहते हैं कि - शरीर के सुखों को मर्यादा के अन्दर रखो और साधारण रहो ताकि इसकी तन्दुरुस्ती के कारण ईश्वर की प्रधानता का पता चले, जो सच्ची खुशी है। "लाल दास गोविन्द भज" इससे पहले कि शरीर खिजा (नाश) को पहुचे और इस दुर्लभ जीवन के अन्दर देह अभिमान का नाश हो जावे और परम शान्ति अन्दर आ जावे। जब तक बुद्धि ईश्वर परायण नहीं होती तब तक ऐसा होना असम्भव है।

जिस सुख को सनकादक खोजे और खोजें गुणी ज्ञानी।
सो सुख पावें निज घर भीतर, नित प्रभ की सेव पछानी।।

शारीरिक सुखों का परिणाम है रंज, गम। चालीस तोले हीरे मोती बाबे नानक के सामने बाबर ने रखे तो नानक ने कहा -

नानक बोले सुन बाबर मीर, तुमसे मांगे सो एहमक फकीर।
नानक मांगे ईश्वर दीदार, जिसदे अनखुट भरे भण्डार ।।

फरीद जी भी कहते हैं -

'फरीदा' मन अपना मुंज कर, कौने बह के कुट।
भरे खजाने साहिब दे, जो चाहे सो लुट ।।

यह रोग ऐसा लगा हुआ है कि अक्लमन्द और मूर्ख, धनी और दरिद्री, कायर और शूरवीर सब ही प्यासे रहते हैं और इन्सानी पिंजर यूं ही खत्म हो जाते हैं। गुणी पुरुषों ने काल चक्र के फेर को देखा तो वह बीमारी को भांप गये और समझ गये कि शारीरिक सुखों की अधिकता इस रोग को काट नहीं सकती उन्होंने विचार किया कि जिस शक्ति के आधार पर यह ब्रह्माण्ड खड़ा है क्यों न उसकी खोज की जाये ताकि परिपूर्ण ईश्वरीय स्वरूप निर्लेप शक्ति के बोध से पूर्णतायी प्राप्त हो। इसलिये शरीर की चेष्टा से ऊपर उठकर शरीर के प्रेरक तत्व को अनुभव करने की कोशिश की और ज्यूँ ही बुद्धि उस तत्व को अनुभव करने लगी उस समय आन्तरिक रोग का पता लग गया। रोग का पता चल जाने पर विचारवान बुद्धि ने शरीर के सुखों को मर्यादा के अन्दर लाना शुरू कर दिया ताकि शरीर सावधान रहे। क्योंकि इसकी तन्दरुस्ती के कारण ही ईश्वर या जीवन शक्ति की प्रधानता का पता चलता है, जो सच्ची खुशी है। इससे पहले कि शरीर का विनाश हो जाये, अच्छा यही होगा कि इस दुर्लभ जीवन में ही देह अभिमान का नाश हो जावे और

परम शान्ति अन्तर निवास करने लगे। लेकिन जब तक बुद्धि ईश्वर परायण नहीं होती तब तक ऐसा होना असम्भव है। इसलिए सत्पुरुषों ने पहले अपने आपको ईश्वर परायण बनाया। उन्होंने जाना कि सुख प्राप्त होने और न होने, दोनों हालतों में दुःख है। तब उन्होंने फैसला किया कि ऐसा दुःख बेहतर है जो शान्ति देने वाला हो। कबीर साहब ने फरमाया-

उस सुख के माथे सिल पड़े, जो नाम साहिब बिसराए।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल पल नाम रटाए।।

इसलिए असली जागृति, पूर्णता और स्वतन्त्रता ईश्वर प्राप्ति होने में ही है। शुरु में कष्ट करना पड़ता है, क्योंकि अपने स्वभाव को बदलना कष्टदायक है। आहार और व्यवहार की शुद्धि, तोहमात (भ्रमों) का त्याग, मांस, मदिरा इत्यादि नशीले पदार्थों का त्याग जरूरी है ताकि शुद्ध और सरल विचार ही मन में जागृत हों, दैवी व्रत्तियाँ बढ़ें और ईश्वर निश्चय पैदा हो, जो सरब शान्ति के देने वाला है। यह ख्याल रहे कि अपने सुख ही अन्त में अपने लिए दुःख रूप होते हैं। इसलिए दूसरों को सुख दोगे तो वह सुख खुद-ब-खुद लौटकर तुम्हारी तरफ आवेगा। कर्मों का तिनका-तिनका संग्रह कर पहाड़ बन जाता है। इसलिए श्रेष्ठ कर्म करें ताकि कल्याण की राह सरल हो जाये। ईश्वर सबको सुमति देवे।

कूड भरोसा छाड के, जप लो सिरजनहार।
'मंगत' कहे विचार के, यह जीवन सुखसार ।।

अमर वाणी

परम तत्व निर्वाण पछानो, जो नित आनन्द की खान।
काल कर्म जाए कल्पना, नित सुरति होये गलतान।।
अपना आप परम तत्त निर्मल, नहीं दोष प्रापत पाई।
अन्तर में अन्तर्गत बोधें, सब दूजा भाव मिटाई।।
शुद्ध स्वरूप नाद घट परसे, अवगत कथा अपारी।
आशा तृष्णा सब बन्धन चूके, तत् जीवन भेद विचारी।।
जीवत में देह ममता त्यागे, तब परसे पद कल्याना।
अनन प्रीत घट नाम कमावे, सत् मारग गुरमुख जाना ।।
अखण्ड प्रेम से पूजा कीनी, घट पार पुरख अविनाशी।
'मंगत' देह में निरदेह सूझा, ब्रह्म शब्द निर्वासी ।।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी। गति किसको कहते हैं ?

गुरुदेव : प्रेमी ! वासना से निर्वास होना, यह असली गति है। जब सत् स्वरूप परमेश्वर चित्त में दृढ़ हो जाता है संसार की इच्छा, कामना खत्म हो जाती है। कर्म बन्धन टूट जाते हैं। सब कुछ कर्ता हर्ता उस प्रभु को मानता है। अपनी 'मैं' भावना बिल्कुल निकल जाती है यानि अहंकार खत्म हो जाता है, उस अवस्था को गति कहते हैं। ऐसी गति तो जीव अपने आप ही कर सकता है। अगर खुद वासना की गिरफ्तारी में है तो दूसरों को गति कौन दे सकता है। गति पैसे, पाइयाँ, लौंग इलायचियाँ द्वारा कैसे हो सकती है। हर एक जीव को सुख-दुख अपने शुभ-अशुभ कर्मों अनुसार मिलता है इसलिए करनी मलीन होने पर तेरी गति तेरे बच्चे, भाई-बन्धु या पण्डित कैसे करा देंगे? जब तक अपने कर्म साफ नहीं, तीर्थों का भ्रमण, देवी-देवताओं का पूजन, पिण्ड आदि गति नहीं दे सकते। प्रेमी! जाकर सत् विश्वास द्वारा सिमरण, ध्यान, सेवा, सत्संग करो जिनसे चित्त ठण्डा रहे। जो पुराने वहम, तोहमात में फंसा रहता है उसकी कभी गति न होगी। न कोई उसकी गति कर सकता है। ईश्वर विश्वासी लोग सत् कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं। निर्मल चित्त से ईश्वर की याद में रहना, संसार को नित असत् मानना, उस महाप्रभु को कर्ता हर्ता जानकर नित सब जीवों से प्रेम करना यह ही सत् भाव जीव को गति देने वाले हैं। ऐसा हर एक प्रेमी को विश्वास होना चाहिए। जो जिन्दगी में कुछ नहीं करते उनके वास्ते आगे परमात्मा ने गति देने वाला दफ्तर नहीं खोल रखा है। इस वास्ते अपनी गति आप करनी होगी। दूसरे के भरोसे रहने वाला कभी सुखी नहीं होता। ईश्वर आपको सत् बुद्धि देवें।

सुखों को बाँटने में शान्ति

वाणी

किस बिध गावाँ नाम प्रभ तोरा, मनमुख भरम अधिक चित्त चोरा।
कहा नहीं मानत दूत अभिमानी, मिथ्या भरम में लीन समानी।
अपने जीवन का घातक होई, करनी मलीन में नित नित रोई।
देख देख सब काल तमाशा, तो भी धारयो कूड़ भरवासा।
देखत में सब संग त्यागे, मोह अगन तो भी चित्त लागे।
सब कुछ ओढ़क छोड़के जाना, मिथ्या में तो भी गलताना।
मन्द करनी से सरे न काजा, अनक सयानफ कलप समाजा।
मोह अगन नित जीव जलावे, मूल लाभ कछु नहीं पावे।
सरब का सरजनहार स्वामी, अन्धमत वैर में ले बिसरामी।
सबका पालनहार विशम्बर, करे गुमान नर धारे आडम्बर।
अन्तकाल सब राख हो जाई, तुच्छ जीवन बहु मान धराई।
अन्त नेथावां सब जग चाले, जीवत में बहु गाम सम्भाले।
स्वारथ के बहु साथ बनाये, अन्तकाल होये कौन सहाये।
छिन छिन रंग अनेक को देखे, अन्धमत मूढ़ा पड़े भुलेखे।
सरब जतन भयो दुःख की खानी, कौन लखावे मारग सुखदानी।
अन्तर बाहर नित भरमाई, भरम का बाँधा ठौर नहीं पाई।
बख्शनहार तूं आप स्वामी, हरयो पाप भरम दुःख जामी।
अपना रंग आप लखाओ, अन्मत राखे जतन ना भाओ।
तेरे दर का भया भिखारी, दीजो गरीबी दान अपारी।
किरपा करी प्रभ आन के, दीनो सुफल विचार।
'मंगत' परसे दीनता, प्रभु सिमरण और उपकार।।

प्रवचन

मनुष्य अपनी कमी को पूरा करने के लिए जन्म लेता है लेकिन जिन्दगी के सफर को सफर ख्याल न करके अक्सर अपने शारीरिक सुखों की पूर्ति में लग जाता है और बजाए शान्ति के अशान्ति और नाश को प्राप्त होता है। हर मनुष्य पाँच ज्ञान इन्द्रियों और पाँच भोग इन्द्रियों द्वारा अपने सुखों की पूर्ति चाहता है। लेकिन जिस शरीर के सुखों की खातिर इतने यत्न-प्रयत्न करता है वह शरीर और उसके कर्म पल-पल बदल रहे हैं। इसलिये जहां एक तरफ पूर्ति होती है वहाँ दूसरी तरफ अपूर्णता पैदा होती चली जाती है। मनुष्य की बुद्धि सुखों की पूर्ति की चाहना करके उसी प्रकार सोचने लगती है और जीवन की असली तड़प को समझने से असमर्थ रहती है।

जिस तन का सुख जिया लोचे बारम्बार भरमाई।
सो तन छिन में राख समाये जीव परम दुःख पाई।।

इसलिए हर मनुष्य अपनी कामनाओं की चेष्टा की खातिर नित-नित चोले बदलता और चौरासी के घेरे में चक्कर लगाता है। यह ही संसार का स्वरूप, इसलिए जीवन के सफर को समझना ही हर मनुष्य का फर्ज है। है विकारों के अधीन होकर आम संसारी लोगों को तो अपनी असली बीमारी का पता ही नहीं लगता। अपितु जीव के अन्दर चूंकि भाव बने रहते हैं इसलिए उनमें से कोई शुभ भाव उसको उसकी नादानी से जगा देता है यानि जिस शरीर की खातिर वह सुख चाहता था वह शरीर और उसके सुख छिनभंगुर ही हैं इसलिए जो शक्ति इसको प्रकाशित कर रही है केवल वह ही चितारने योग्य है और बाकी माया और भ्रम ही है।

सब महापुरुषों के जीवन का सार और सन्तों का उपदेश यही है कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपने सुख-दुःख ईश्वर विखे समर्पण करता चला जावे और अपनी स्वार्थ बुद्धि का पूर्णतया त्याग कर दे, यानी अपने सुखों को दूसरों की सेवा में लगाकर असली शान्ति का अनुभव करे ताकि तेरे अन्दर से विकारों की अग्नि ठण्डी होकर पूर्ण परमेश्वर का निश्चय दृढ़ हो जावे और तेरे अन्दर न जीने की इच्छा रहे, न मरने का भय रहे। यह समझ लेना चाहिए कि जिसने पूर्ण परमेश्वर को समझ लिया वह खुद भी पूर्ण हो गया और जिस कमी को मनुष्य पूरा करने के लिए इस जन्म में आया था वह पूरी हो गई और जन्म-मरण का रोग भी जाता रहा।

सार निर्णय यह है कि अपने सुखों को दूसरों की सेवा में लगाने और सत्पुरुषों के वचनों पर अमल करने से और अच्छी संगत के मेल-जोल से बुद्धि विवेक को अपनाकर अपने शरीर की पूजा के बजाए शरीर के सिरजनहार को पल-पल विखे चितारने लगती है। इससे विकारों की अग्नि ठण्डी होती है और मनुष्य अपनी जिन्दगी के सफर को खत्म करने का यत्न करता है। ईश्वर करे ऐसे शुभ विचार हर मनुष्य के अन्दर जाग्रत हों ताकि वह अपने कल्याण की राह ढूंढ सके।

प्रश्नोत्तर

प्रेमी : महाराज जी ! भव सागर क्या है ?

गुरुदेव : प्रेमी ! शरीर के भोग ही भव सागर हैं।

प्रेमी : महाराज जी ! यह शरीर कैसे संसार हो सकता है ?

गुरुदेव : प्रेमी ! संसार अनेक जीवों का मजमुआ (समूह) है। जैसे अनेक तन्दी करके कपडा बना है वैसे ही अनेक जीवों करके संसार बना है।

प्रेमी : महाराज जी ! बैकुण्ठ किसे कहते हैं ?

गुरुदेव : बैकुण्ठ मन की अवस्था है। जितनी मन में वासनायें हैं उतना ही नरकी मन है। जितनी मर्याद है उतना ही स्वर्गी मन है। निर्वास मन बैकुण्ठ है।

प्रेमी : महाराज जी ! दुःख सुख का क्या स्वरूप है ?

गुरुदेव : प्रेमी ! इच्छा का होना परम दुःख है। सभी इच्छा, अच्छी है या बुरी, दुःख का ही समूह है। सुख का रूप ही इच्छा रहित होना है। जब तक अन्दर कर्तापन मौजूद है तब तक वासना अन्दर खड़ी है, तब तक मलीनता ही मलीनता है और दुःख ही दुःख है। सत्पुरुषों ने शान्ति देने वाली चीज की तलाश की। शान्ति हकूमत और दौलत में नहीं है इनमें तो हैरानगी और परेशानी है। शरीर के सुख अपूर्ण हैं क्योंकि शरीर बनने और बिगड़ने वाली चीज है। इसमें, इसलिये, कैसे सुख हासिल हो सकता है? प्रेमी : महाराज जी। माया का स्वरूप क्या है ?

गुरुदेव : प्रेमी ! हर एक का शरीर ही माया है। आकारमयी चीजें माया का स्वरूप हैं। माया ही भ्रम है।

प्रेमी : महाराज जी ! सर्व शक्तिमान किसे कहते हैं ?

गुरुदेव : प्रेमी। सर्व शक्तिमान के मानी ला-जरूरत के हैं, जो अपने आप में पूर्ण है। मिलना, बिछड़ना भी जरूरत है वह इससे भी परे है।

प्रेमी : महाराज जी। अविद्या क्या है ?

गुरुदेव : प्रेमी। जो चीज वास्तव में नहीं है और निश्चय में उसे मान रहा है वह अविद्या है।

प्रेमी : महाराज जी ! विद्या का स्वरूप क्या है ?

गुरुदेव : प्रेमी ! जो चीज जैसी है वैसा उसको जानना विद्या है।

प्रेमी : महाराज जी ! ज्ञान का क्या स्वरूप है ?

गुरूदेव : प्रेमी ! ज्ञान बजातेखुद (स्वयं) कोई चीज नहीं है। वह एक हालत या असलियत का बयान है। जब असलियत मालूम हो गई, ज्ञान गायब हो गया। केवल वहां तेरा स्वरूप ही रहेगा। दूसरी चीज वहां नहीं रहती हैं वहां कहने वाला कौन, सुनने वाला कौन ?

प्रेमी : महाराज जी ! आस्तिक का क्या स्वरूप है ?

गुरुदेव : प्रेमी ! जिस वक्त जीव यह समझता है कि शरीर अपूर्ण है, शरीर के सुख भी अपूर्ण हैं, इस वास्ते ऐसी चीज प्राप्त की जाए, जो पूर्ण हो, उस वक्त वह आस्तिक है।

वैराग्य वाणी

जॉ के मन वैराग है, वहाँ प्रेम करे परगास।
बिरह अगन में जल गये, अनक पाप दुःख नास ।।
बिना प्रेम न हर मिले, न उपजे आनन्द ।
तृष्णा अगनी में जले, बिना प्रेम जम फंद।।
प्रेम उपजावन का, यह निर्मल विचार ।
आपा मेटे हर जपे, उपजे प्रेम की सार ।।
गद्गद होवे हरी चरण में, नैनों विगसे नीर।
एक तृष्णा हरी नाम की, मेटे जम की पीड़।।
प्रेम पाये गुरुदेव से, जाँ मन ज्ञान का रंग।
'मंगत' परसे जो गुनी पाये, अजर धाम परसंग।।

ॐ आरती ॐ

तू पारब्रह्म परमेश्वर, तीन काल रछपाल।
नित् पाऊँ शरनागती, सत् चरन कँवल दयाल।।
तू नित पतित उद्धार है, पूरन प्रभ जगदीश।
मोह माया संकट हरो, दीजो ज्ञान संदेश।।
नित ही तेरे चरन की, मन में रहे परीत।
तूं दाता दातार है, पुरुखोत्तम सुखरीत।।
पवन पानी बैसन्तर, धरती और आकाश।
सबको सरजनहार तूं, आद पुरख अबनाश।।
घट - घट व्यापक तूं परमेश्वर, सरब जियाँ आधार।
अनमत कूकर को राख लें, किरपा निद्ध करतार।।
काल करम जाए दूषना, खल बुद्धि हरो अज्ञान।
सत श्रद्धा पाऊँ चरण की, अखण्ड प्रेम चित ध्यान।।
दीनानाथ दयाल तूं, पल पल होत सहाये।
कीरत साचे नाम की, मन तन आए सहाये।।
अन्तर का सब खेद हरो, दीजो सत विश्वाश।
शरणागत हूँ मंधमती , घट अन्तर करो परकास।।
अन्तरगत सिमरन करूँ, निरन्तर धरूँ ध्यान।
घट घट में दर्शन करूँ, आद पुरख भगवान।।
तूं साचा साहिब सरब परकाशी, शबद रूप आखण्ड।
गुनी मुनी उस्तत करें ,तन मन पाएँ आनन्द।।
होवें दयाल हूँ सत परमेश्वर, देवें धीर अपार।
निमख निमख सिमरण करूँ, चित चरण रहे आधार।।
काया अन्तर परतख होवें, नाद रूप विस्माद।
पल पल कीजूँ आरती, तन मन तजूँ वियाध।।
जग आवन सुफला होवे, तेरी आज्ञा मन में ध्याऊँ।
अन्तरगत करूँ आरती, भव दुस्तर तर जाऊँ।।
अन्धमत मूढ़ा नित प्रती, तेरे चरनी करे पुकार।
'मंगत' माँगे दीनता, सत् धर्म सुख सार।।
अन्धमत मूढ़ा नित प्रती, तेरे चरनी करे पुकार।
'मंगत' माँगे दीनता, सत् धर्म सुख सार।।

"समता – मंगल"

समता धरम हृदय रसे, बिख ममता होवे नाश।
सत सरूप परमात्मा, जल थल पाऊँ प्रकाश।।

सब जीवों से प्रेम हो, तन मन सेवा धार।
समता साधन पाये के, नित परसाँ जय-जय कार।।

सत् करम सत् निश्चय, निर्मल पाऊँ विचार।
'मंगत' समता धार के, जीत चलो संसार।।

सत कर्म सत निश्चय, निर्मल पाऊँ विचार।
'मंगत' समता धार के, जीत चलो संसार।।